शिक्षाप्रद कहानियाँ

लेखक

डॉ. कुलदीप कुमार

अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स

दिल्ली

प्रकाशक
अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स
8/25, विजय नगर, दिल्ली-9
88024 51208

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2017

आइ.एस.बी.एन. : 81-87322-98-5

मूल्य : 95/- ₹ मात्र

नील एडवर्टाइजिंग
दिल्ली - 110009

भूमिका

कहानियाँ बच्चों के लिए अवश्य लिखी जाती हैं, पर कहानियों को लिखना और समझना कोई बच्चों का खेल नहीं होता, उसके लिए बड़ी विद्वत्ता अपेक्षित होती है।

लिखने और समझने के लिए ही क्या, कहानी को कहने तक के लिए भी बड़ी कुशलता अपेक्षित होती है। यही कारण है कि कहानी को कई बार सुनने/पढ़ने/जानने के बाद भी उसे ठीक से कहने का कार्य सैकडों/हजारों में से कोई एक-दो लोग ही ठीक से कर पाते हैं। कहानी सुन/पढ़ सब लेते हैं, पर उसे ठीक से कहना सबके बस की बात नहीं होती। कहानी का एक-एक वाक्य ही नहीं, एक-एक शब्द भी बहुत सुगठित होता है। यदि उसे कहने में जरा-सी भी लापरवाही हो जाए, जरा-सा भी कुछ अपनी तरफ से जोड़ या छोड़ दिया जाये तो वह बिगड़ जाती है, रस भी भंग हो जाता है, अतः उसे कहने में भी बड़ी सावध ानी रखनी पड़ती है।

कहानी के लेखक को तो वास्तव में ही बहुत विद्वान् होना चाहिए, उसे 'सर्वशास्त्रकलाविद्' होना चाहिए। उसे वास्तु, ज्योतिष, अर्थ, समाज, राजनीति, आयुर्वेद, साहित्य, व्याकरण, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान आदि लगभग सभी शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए, अन्यथा उसकी कहानियों में इनके विरुद्ध कथन आने से अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे।

कहानी शिक्षा का भी सबसे सशक्त माध्यम है। प्राचीन काल में सभी शास्त्रों की शिक्षा कहानियों के माध्यम से दी जाती थी। बड़े से बड़े अज्ञानी को भी हमारे पूर्वजों ने कहानियों के माध्यम से सहजतापूर्वक समझाने में सफलता प्राप्त की है। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' इसी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कहानी में जो रोचकता नाम का अद्भुत गुण होता

है, वह किसी का भी हृदय–परिवर्तन करने में जादू जैसा कार्य करता है।

कहानियों के सुनने/पढ़ने से स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा रहता है, क्योंकि इनसे व्यक्ति का मन प्रसन्न हो जाता है, उसके सारे दु:ख–दर्द, चिंता–फिक्र, तनाव–अवसाद आदि दूर हो जाते हैं।

प्राचीन काल में तो सोने से पहले कहानी सुनने की प्रथा ही थी, क्योंकि इससे नींद भी अच्छी आती है। दु:स्वप्न नहीं आते शुभ स्वप्न आते हैं। आज इस प्रथा के छूटने से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।

परिवार में एकता और स्नेह का वातावरण बनाये रखने में भी कहानियों का अद्भुत योगदान होता है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक ज्ञाताज्ञात लाभ कहानी सुनने–समझने से होते हैं। अत: हम सबको खूब कहानियाँ सुननी–सुनानी चाहिए। बस, इतना ही ध्यान रहे कि ये कहानियाँ सुकथा ही हों, कुकथा नहीं।

'शिक्षाप्रद कहानियाँ' नामक इस कृति में डॉ. कुलदीप कुमार ने लगभग 100 महत्त्वपूर्ण सुकथाओं, कहानियों का लेखन किया है। ये सभी कहानियाँ प्राचीन हैं, नई नही हैं और इनमें बड़े ही महत्त्वपूर्ण जीवन–मूल्य भरे हुए हैं। इनसे उनका अपना जीवन बदला है, अत: वे इन्हें जन–जन तक पहुँचाना चाहते हैं। ये कहानियाँ उन्हें मैंने अवश्य सुनाई होंगी, पर इनकी प्रस्तुति में उनका अपना भी योगदान है। सभी लोग उनकी इस कृति से लाभान्वित हों – यही मेरी मंगल कामना है।

– (प्रो.) वीरसागर जैन

आत्मकथन

मेरा जन्म साधारण परिवार में हुआ। मेरे दादाजी संस्कृत अध्यापक थे। मेरे पिताजी भी संस्कृत अध्यापक हैं। मेरी माताजी तीसरी-चौथी कक्षा पास थीं। उन्होंने बचपन में मुझे बहुत कहानियाँ सुनाई थीं। तभी से मुझे कहानियाँ सुनने का बड़ा शौक था। लेकिन, उस शौक की, वास्तविक पूर्ति सन् 2001 में मेरे गुरुजी प्रो. वीरसागर जैन जी ने की जब मैंने उक्त सन् में जैनदर्शन विभाग की आचार्य कक्षा में प्रवेश लिया। गुरुजी ने छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से ऐसी प्रेरणा प्रदान की कि मेरा जीवन ही परिवर्तित हो गया। मैं एक सब्जी-विक्रेता से सहायकाचार्य बनकर गुरुजी के बराबर में बैठ गया। पता नहीं उन कहानियों में ऐसी क्या शक्ति थी, जिसका राज मुझे आज तक समझ में नहीं आया।

हमारे देश में प्राचीनकाल में कथा-कहानियों के माध्यम से विद्या-अर्जन कराया जाता था, जिसका स्पष्ट प्रमाण विष्णुशर्मा द्वारा रचित 'पञ्चतन्त्र' आज भी हमारे समक्ष उपिस्थत है। उसमें पशु-पक्षियों की कहानियों के माध्यम से तत्कालीन राजकुमारों को न केवल राज-काज की ही शिक्षा प्रदान की गई है, अपितु जीवन जीने की कला, जीवन की सार्थकता को भी समझाया गया है।

प्रस्तुत लघु पुस्तिका में मैंने गुरुजी द्वारा सुनाई गई कहानियों को ही लिखने का प्रयास किया है। यदि इन कहानियों को पढ़कर एक व्यक्ति भी अपने जीवन को सार्थक बनाता है तो मैं अपने इस लेखन को सफल समझूँगा।

– कुलदीप कुमार

विषयानुक्रमणिका

1.	सहायता ही धर्म है	1
2.	सबसे बड़ा कर्तव्य परोपकार	2
3.	गुणग्राही बनना चाहिए	4
4.	पाप का मूल	6
5.	किसी का बुरा करना अज्ञानता है	8
6.	परोपकार ही जीवन है	10
7.	एकता में बल है	12
8.	अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत	13
9.	स्वर्ग और नरक	15
10.	खुद को जानो	16
11.	जो बोता है, वही काटता है	19
12.	लालच बुरी बला है	22
13.	द्वेष नहीं करना चाहिए	24
14.	कबूतर की बुद्धिमानी	26
15.	सफलता की चाबी मेहनत	28
16.	सब पत्थर हैं	30
17.	भय और आशा	32
18.	विचित्र स्वभाव	33
19.	आपसी फूट के कारण पिटे	36
20.	सत्य का बल	39
21.	करनी का फल	42
22.	निराश नहीं होना चाहिए	44
23.	अपेक्षा समझना जरूरी	45
24.	सच्ची विद्वत्ता	47

25.	जात-पात छिपती नहीं	49
26.	दया का महत्त्व	51
27.	व्यर्थ की जिज्ञासा	56
28.	तृष्णा का अन्त बुरा	57
29.	जैसे को तैसा	61
30.	मान कषाय	63
31.	त्यागात् शान्ति	66
32.	अध्ययन का उत्कष्ट उदाहरण	69
33.	यथार्थ का अवबोध	71
34.	घमण्ड का फल	72
35.	भलाई व्यर्थ नहीं जाती	74
36.	दु:खों को हमने स्वयं पकड़ा है	78
37.	वास्तविक दान	81
38.	अमर फल	85
39.	सच्ची सीख	86
40.	महान् शत्रु	87
41.	सच्ची भक्ति	91
42.	जाकी रही भावना जैसी	92
43.	यथार्थ भी व्यवहार भी	94
44.	प्रेम की कैंची उधार	97
45.	अनुभव जरूरी	101
46.	प्रायश्चित्त का फल	104
47.	सत्य की जीत	107
48.	मित्र का लक्षण	110
49.	परोपकार का फल	115
50.	लोभ बुरी बला है	121
51.	सच्चा भक्त कैसा हो?	126
52.	भूत-भविष्य की चिन्ता क्यों?	127
53.	उपदेशदाता का आचरण कैसा हो?	130

54.	विद्या का महत्त्व	131
55.	मोह मार्जन	136
56.	कर्म ही आवरण है	137
57.	भगवान् कहाँ हैं?	137
58.	मनुष्य की आयु	138
59.	ज्ञान का प्रभाव	139
60.	हलका लेकिन बहुत भारी	140
61.	आत्मान्वेषण	141
62.	मनोनिग्रह	162
63.	सबसे शीतल क्या है?	144
64	श्रम ही सौं सब मिलत है, बिन श्रम मिले न काहि	146
65.	किसका कैसा नाता रे	148
66.	शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम्	151
67.	सियार की चतुराई	154
68.	मुक्ति का उपाय	155
69.	स्वयं से बातचीत	158
70.	मानसिक प्रदूषण	160
71.	वर्तमान में जीने की कला	161
72.	जो होता है, अच्छा होता है	162
73.	संयम	163
74.	तुम मुझे नकटा कहते!	163
75.	बुद्धि का कमाल	164
76.	जेब कटने की पार्टी	165
77.	कान दो क्यों होते हैं?	166
78.	पढ़ने का चश्मा	167
79.	लॉटरी निकलने का दुःख	168
80.	बचपन के संस्कार	168
81.	उलटवासी	169
82.	आकांक्षा और शांति	170

83.	सुख कहाँ और कैसे	172
84.	स्वावलम्बन का पाठ	174
85.	दानवीर कर्ण	176
86.	सेवा मन का पवित्र भाव	179
87.	जैसी करनी वैसी भरनी	180
88.	गुरुनिष्ठा	185
89.	मन ही राक्षस है	187
90.	तेरा साई तुझमें	191
91.	वास्तविक बल	192
92.	संतोष और आनन्द का रहस्य	195
93.	विचित्र प्रयोग	198
94.	सुनो सबकी करो मन की	200
95.	संतोष ही सुख का मूल है	203
96.	धर्म का सहारा	204
97.	मूर्ख कौन	205
98.	नारी का सम्मान	208
99.	मूल स्वभाव को समझना जरूरी	210
100.	मनुष्य की अद्‍भुत श्रेणी	213

१. सहायता ही धर्म है

एक बार कुछ विदेशी यात्री भारत भ्रमण के लिए आए। उन्होंने भारत के अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का भ्रमण किया।

भ्रमण करते-करते एक दिन वे एक महात्मा के पास पहुँचे। महात्मा ध्यान मग्न थे। उनके सामने बहुत से साधक बैठे हुए थे। वे यात्री भी वहीं बैठ गए। कुछ समय बाद महात्मा ने अपनी आँखें खोली और सामने बैठे लोगों को देखा। इसके बाद कुछ साधकों ने अपनी-अपनी जिज्ञासाएं महात्मा के समक्ष रखी। महात्मा ने उन सभी जिज्ञासाओं का समाधान बड़ी ही शान्त मुद्रा में उनको बताया।

यह देखकर उन विदेशी यात्रियों के मन में भी जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होंने भी अपनी जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने कहा महात्मा जी! हम पिछले कई दिनों से भारत-भ्रमण कर रहे हैं, जहाँ भी जाते हैं वहाँ पर लोगों के मुख से यही सुनते हैं कि धर्म करना चाहिए, धर्म ही सब कुछ है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, लेकिन हमारे यहाँ तो ये धर्म नाम की कोई चीज होती ही नहीं तो बताइए फिर भला हम इसे कैसे करें?

यह सुनकर महात्मा मन्द-मन्द मुस्कुराए, फिर बोले- ऐसा नहीं हो सकता, ऐसी तो इस सृष्टि में कोई जगह ही नहीं है, जहाँ धर्म नहीं हो। शायद तुम्हें कोई भ्रम है।

इसके बाद महात्मा बोले- अच्छा आप मुझे एक बात बताइए, अगर आप कहीं जा रहे हों, और आपके सामने कोई दुर्घटना हो जाए , किसी व्यक्ति को चोट लग जाए, उसका रक्त बहने लगे तो आप क्या करेंगे?

महात्मा की बात सुनकर यात्री बोले- सर्वप्रथम हम उसका उपचार करेंगे, उसको चिकित्सालय पहुँचाएंगे, उसके घरवालों को सूचना

देंगे और उससे सम्बन्धित जो भी आवश्यक कार्य होगा वो सब करेंगे।

यह सुनकर महात्मा बोले- यही तो धर्म है। और धर्म क्या है? सबसे बड़ा धर्म यही है।

यह सुनकर यात्री बोले- लेकिन, हमारे यहाँ तो इसे HELP (सहायता) कहते हैं। पर अब समझ में आ गया कि सहायता ही धर्म होता है। और वे सब प्रसन्न मन से अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान कर गये।

इस प्रसंग से हमें यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि सबसे बड़ा धर्म होता है, प्राणीमात्र की सहायता करना। कहा भी जाता है कि-

कृतिनोऽपि प्रतीक्षन्ते सहायं कार्यसिद्धये।
चक्षुष्मानपि नालोकाद्विना वस्तूनि पश्यति॥

अर्थात् चतुर व्यक्ति भी कार्य को सिद्ध करने के लिए सहायक की अपेक्षा रखता है। आँख वाला व्यक्ति भी प्रकाश के बिना पदार्थों को नहीं देख पाता है।

२. सबसे बड़ा कर्तव्य परोपकार

बात उस समय की है जब हमारे देश में मुगलों का साम्राज्य था। राजस्थान के प्रसिद्ध शहर जयपुर में एक व्यक्ति रहता था। एक दिन जब वह व्यक्ति अपने काम में लगा हुआ था, तो उसके पास एक युवक आया और कहने लगा महोदय, ये लीजिए अपने बीस हजार रूपये आपने बुरे समय में मेरी सहायता की थी और अब मैं इन्हें लौटाने में सक्षम हूँ अतः कृपया आप ये पैसे रख लीजिए। मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

यह सुनकर वह व्यक्ति ध्यानपूर्वक युवक को देखते हुए बोले- माफ करना, लेकिन मैंने तो आपको पहचाना नहीं और न ही मुझे ये याद आ रहा है कि- मैंने कभी कोई पैसे आपको दिये थे।

यह सुनकर युवक आश्चर्यचकित होते हुए बोला- आप याद कीजिए एक बार आप चिकित्सालय में गए थे, मैं बहुत बीमार था। मेरे पास पैसे नहीं थे। डॉक्टर ने तुरन्त बीस हजार रूपये जमा करने के लिए कहा था। मैं बहुत हताश, परेशान था, क्योंकि अगर समय रहते पैसे जमा न होते तो मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं था। उस समय आपने ही पैसे जमा करके मेरे प्राणों की रक्षा की थी। आप कहते हैं कि- मुझे तो याद ही नहीं है।

यह सुनकर व्यक्ति अपने बीते दिनों के बारे में सोचने लगा। और थोड़ी ही देर में उसे याद भी आ गया कि ऐसी घटना हुई थी और मैंने रूपये दिए थे। लेकिन कुछ देर सोचने के बाद वह बोला- मित्र, हाँ मुझे याद आ गया कि मैंने रूपये दिए थे। परन्तु यह तो मनुष्य का स्वाभाविक धर्म/कर्तव्य है कि वह मुसीबत में पड़े हुए प्राणी की सहायता करे। अतः अब आप इन पैसों को अपने पास ही रखें। हाँ, इतना जरूर करें कि अगर आपको भी कोई जरूरतमन्द व्यक्ति मिले तो ये रूपए आप उसको दे दें और अगर आपके पास भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए तो आप भी उस व्यक्ति को यही कहें कि वह भी आगे इसी प्रकार किसी जरूरतमन्द की सहायता करे। बस यही हमारा कर्तव्य है, धर्म है।

यह सुनकर वह युवक उनसे अत्यन्त प्रभावित हुआ और हकीकत में ही एक दिन उसे एक जरूरतमन्द व्यक्ति मिला और उसने उन रूपयों में बीस हजार रूपये और मिलाकर उस व्यक्ति की मदद की और उसे भी वही सलाह दी जो उस व्यक्ति ने उसे दी थी। धीरे-धीरे ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या हो गई और बहुत सारे पैसे भी इकट्ठे हो गए फिर उन सबने एक चिकित्सालय का निर्माण किया। वहाँ पर आज भी निःशुल्क चिकित्सा प्रदान की जाती है।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हम सबको निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए। यही सबसे बड़ा धर्म है। इसलिए कहा भी जाता है कि-

स्वाच्छन्द्यफलं बाल्यं तारुण्यं रुचिरसुरतभोगफलम्।
स्थविरत्वमुपशमफलं परहितसम्पादनं च जन्मफलम्॥

अर्थात् बचपन का फल स्वच्छन्दता है, जवानी का फल आनन्ददायक सम्भोग है, वृद्धावस्था का फल शान्ति है और जन्म लेने का फल दूसरे का हित करना है।

३. गुणग्राही बनना चाहिए

गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।
क्षीरवारिसमाहारे हंसः क्षीरमिवाखिलम्॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य का जन्म हुआ तो इसकी प्रबल इच्छा हुई कि क्यों न मैं इस सृष्टि को देखूँ। बस फिर क्या था? निकल पड़ा मनुष्य इस सृष्टि को देखने के लिए जैसे ही उसने अपनी यात्रा शुरु की तो सर्वप्रथम इसने देखा कि- एक वृक्ष की डाल पर बैठकर कोयल अपने मधुर कण्ठ से कुछ गा रही थी। कोयल का मधुर गान सुनकर यह बहुत ही आनन्दित हो उठा और बड़े ही मनोयोग से उसको सुनने लगा और खूब प्रसन्न हुआ, लेकिन अन्त में बोला- हे कोयल! काश तू काली न होती तो कितना अच्छा होता।

इसके बाद आगे बढ़ते हुए उसने बाग में गुलाब के फूल को देखा। और बहुत ही हर्षित होते हुए उसके निकट जाकर उसकी भीनी-भीनी खुशबू का आनन्द लेने लगा लेकिन अंत में बोला- हे गुलाब! काश तेरे साथ ये काँटे न होते तो कितना अच्छा होता।

इसके बाद वह और आगे बढ़ा तो उसने समुद्र की ओर देखा और उसमें उठती हुई लहरों, तैरती हुई मछलियों आदि को देखकर प्रफुल्लित होने लगा, लेकिन अंत में चलते हुए बोला- हे समुद्र! काश तू खारा न होता।

घूमते-घूमते रात्रि का समय हो गया। संयोगवश उस दिन शरदपूर्णिमा थी। चन्द्रमा अपनी 16 कलाओं से शोभायमान होकर शीतल चाँदनी बिखेर रहा था। वातावरण अत्यंत ही रमणीय था। यह सब देखकर वह बहुत ही हर्षोलषित हुआ और आनन्द मनाने लगा, लेकिन संयोगवश उसी समय उसकी दृष्टि चन्द्रमा पर पड़ गई और वह उदास हो गया तथा कहने लगा- हे चन्द्र देवता! काश तेरे अंदर यह काला दाग न होता तो तू कितना अच्छा होता?

इसी प्रकार भ्रमण करते हुए उसने प्रकृति की असंख्य अमूल्य निधियों को देखा, लेकिन अपनी प्रकृतिवशात् उसने उन सभी में कोई न कोई कमी निकाली और सभी को कहता गया कि काश तेरे अंदर यह न होता तो कितना अच्छा होता।

यह सब देखकर प्रकृति की वे सभी अमूल्य निधियाँ सूर्य, चंद्रमा, नदी, समुद्र, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, वर्षा, हवा, धूप-छाँव आदि सभी एकत्रित हुए और एक स्वर में कहने लग- अरे! मनुष्य। अरे ओ प्रकृति के सुन्दरतम प्राणी जरा हमारी भी बात सुनता जा तूने अपनी तो खुब सुना दी और सभी एक स्वर में बोले- कितना अच्छा होता कि- काश तेरे अंदर ये दूसरों में कमी देखने की आदत न होती तो तू प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट रचना होता।

मित्रों! यह कहानी किसी और की नहीं है, अपितु यह कहानी हम सब की है। और उक्त कहानी हमें यह शिक्षा देती है कि- हमें गुणों की ओर ध्यान देना चाहिए। अच्छाइयों को देखना चाहिए। इस सृष्टि में सर्वगुण सम्पन्न तो शायद ही कोई वस्तु हो। अतः हम सबको गुणग्राही बनना चाहिए। और स्वयं को सुधारना चाहिए। कहा भी जाता है कि-

अरे! सुधारक जगत् के चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत् है, पहले इसे सुधार।।

४. पाप का मूल

बहुत समय पहले की बात है। हमारे देश में एक बहुत ही सत्यप्रिय, धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और प्रजा के सुख-दुख को अपना ही समझने वाले राजा थे। एक दिन वह चिन्तन करने लगे कि आखिर में ऐसा कौन-सा कारण है कि मनुष्य न चाहते हुए भी पाप कार्य करने को मजबूर हो जाता है? यह जानने के लिए वे बहुत ही उत्सुक हो गए और सोचने लगे कि इस समस्या का समाधान कैसे हो? यह सोचते-सोचते वे अपने राजगुरु के पास गये और अपनी जिज्ञासा का समाधान उनसे पूछा।

यह सुनकर गुरुदेव बोले- राजन्, इस समस्या का समाधान तो आपको वनवासिनि ज्ञानमती ही बता सकती हैं, अतः आप उनके पास जाइए। ज्ञानमती ज्ञान के साथ-साथ रूप और यौवन से भी सम्पन्न थीं।

इतना सुनना था कि राजा तो चल दिए वन की ओर तथा पहुँच गए ज्ञानमती के पास और रख दी उनके सामने अपनी जिज्ञासा। यह सुनकर ज्ञानमती बोली- राजन्, आपकी जिज्ञासा का समाधान तो आपको मिल जाएगा, लेकिन इसके लिए कुछ दिन आपको यहीं रहना पड़ेगा।

यह सुनकर राजा बोला- लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता है? मेरे बिना राज-काज के कार्य कौन सम्पन्न करेगा? वहाँ पर तो अव्यवस्था हो जाएगी।

तब ज्ञानमती बोली- चाहे जो भी हो वह आपकी समस्या है, बस मैं तो इतना जानती हूँ कि अगर आपको अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहिए तो कुछ दिन यहाँ अतिथि बनकर रहना ही पड़ेगा इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

अब राजा सोचने लगे आखिर करूँ तो क्या करूँ? काफी देर सोच-विचार कर अन्त में उसने निर्णय किया कि ठीक है मैं यहाँ रुक जाता हूँ। और उन्होंने अपने राजमहल में भी सूचना भिजवा दी कि मैं

किसी आवश्यक कार्य से कुछ दिन के लिए राज्य से बाहर हूँ। मेरी अनुपस्थिति में राजकार्य सुचारू रूप में चलना चाहिए।

इस दौरान ज्ञानमती राजा की खूब सेवा-सत्कार करती, उनसे खूब ज्ञान-ध्यान की बातें करती। इस संसार और शरीर की नश्वरता के बारे में तत्त्वचर्चा करती। लेकिन धीरे-धीरे राजा ज्ञानमती के रूप और यौवन पर मोहित हो गए। कहाँ तो वे ये जिज्ञासा लेकर आए थे कि मनुष्य पापकार्य करने के लिए क्यों मजबूर हो जाता है?

बस फिर क्या था? एक दिन उन्होंने अपने मन की बात ज्ञानमती को बता दी और उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रख दिया। यह सुनकर पहले तो ज्ञानमती को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और तुरन्त ही बोली- हे! राजन्, आपको तो अपनी जिज्ञासा का उत्तर शीघ्र ही मिल गया।

यह सुनकर राजा क्रोधित होते हुए बोला- यह मेरा उत्तर कैसे हो सकता है?

तब ज्ञानमती बोली- पाप का मूल होते हैं- विकारी भाव। और वे विकारी भाव आप में भी उत्पन्न हो चुके हैं। और इन विकारी भावों में सबसे बड़ा होता है- लोभ। जोकि आपके अन्दर स्पष्ट दिख रहा है। कहाँ तो आप यहाँ ठहरने तक को तैयार नहीं थे और कहाँ आज आप मुझे रानी बनाने तक तैयार हैं। ये लोभ और आसक्ति ही मनुष्य को कुमार्ग की ओर खींचकर ले जाते हैं और बुद्धि को भ्रष्ट कर देते हैं, जिससे मनुष्य न चाहते हुए भी पापकार्य में प्रवृत्त हो जाता है। और यही आपकी जिज्ञासा का समाधान है और कुछ नहीं। इसलिए कहा भी गया है कि-

परस्वे परदारेषु न कार्या बुद्धिरुत्तमैः।
परस्वं नरकायैव परदाराश्च मृत्यवे॥

यह सुनकर राजा बहुत ही शर्मशार हुआ और ज्ञानमती को प्रणाम कर राजमहल की ओर प्रस्थान कर गया।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि- लोभ ही सभी समस्याओं का मूल है, इसी के कारण हम करणीय- अकरणीय सब कुछ कर जाते हैं चाहे वह प्रकृति के विपरीत ही क्यों न हो? अत: हमें लोभ नहीं करना चाहिए। कहा भी जाता है कि- **लोभ पाप का बाप है।**

५. किसी का बुरा करना अज्ञानता है

महाराष्ट्र के एक बहुत बड़े व्यापारी थे। पशुओं का व्यापार करते थे। पशुओं को खरीदते भी थे और बेचते भी थे। एक बार वे पशुओं का व्यापार करने किसी दूसरे प्रदेश में गए। जहाँ पशुओं का मेला लगा हुआ था। भाग्यवशात् वहाँ पर उनको पशुओं को बेचने पर बहुत अच्छा मुनाफा (लाभ) हुआ।

उन्होंने मुनाफे से मिले रूपयों में से आधे रूपयों से बहुत ही अच्छा अरबी घोड़ा खरीदा और आधे रूपए सम्भालकर अपनी पतलुन की जेब में रख लिये। और अपने घर की ओर प्रस्थान कर गये।

रास्ते में बारिश शुरू हो गई, वह भीगने लगा। उसके सारे वस्त्र गीले हो गए। वह सर्दी से ठिठुरने लगा। मन ही मन वह बादलों को कहने लगा- हे बादलों रुक जाओ, लेकिन बादल और भी तेजी से बरसने लगे। वे कहाँ उसकी सुनने वाले थे।

इस सबसे व्यापारी को बहुत कष्ट हुआ। अब वह बादलों का और तो कुछ बिगाड़ नहीं सकता था, लेकिन मन ही मन उनको कोसने लगा और गालियाँ बकने लगा। बादलों पर भला इस सबका क्या असर होना था, वे तो निरन्तर बरसते रहे। लेकिन उसी क्षण वहाँ एक घटना घटी।

अचानक एक पास की झाड़ी से बड़ी जोर की आवाज आई- 'ठहर जाओ' जो भी धन-दौलत तुम्हारे पास है वह मुझे दे दो, वरना गोली मार दूँगा। स्पष्ट था कि अवश्य ही यह कोई चोर-लुटेरा था। अब व्यापारी की तो सिट्टी-पिट्टी गुम। लुटेरे ने कई बार व्यापारी को रूपये

देने के लिए कहा, लेकिन व्यापारी लोभवशात् रूपये देने में आना-कानी करने लगा।

अन्त में लुटेरे ने 'टिगर' दबा दिया। यह देखकर व्यापारी ने तो सोच लिया कि बेटा! अब तेरा बचना मुश्किल है। और डर के कारण उसने अपनी आँखें बन्द कर ली। जैसे बिल्ली को देखकर कबूतर आँखें बन्द कर लेता है।

काफी देर बाद तक जब गोली नहीं चली तो व्यापारी ने पुनः धीरे-धीरे डरते हुए अपनी आँखें खोली तो सामने का नजारा देखकर वह हैरान हो गया और खुश भी होने लगा। लुटेरा बार-बार बन्दूक चलाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन बन्दूक थी कि चल ही नहीं रही थी। और अन्त में थक-हार कर लुटेरा वहाँ से भागने की सोचने लगा। उसे डर हो गया था कि कहीं व्यापारी उसको पकड़कर रक्षकों को न सौंप दे। अतः वह वहाँ से दुम-दबाकर भाग गया। तब व्यापारी ने चैन की सांस ली और घोड़े पर सवार होकर अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ कर दी।

जानते हो! इस मुसीबत से व्यापारी को छुटकारा किसके कारण मिला? उसी बारिश के कारण जिसे थोड़ी देर पहले तक व्यापारी भला-बुरा कह रहा था। क्योंकि बारिश के कारण ही बन्दुक का बारूद गीला हो गया था।

इसके बाद व्यापारी के मन में यह चिन्तन चलने लगा कि आखिर यह सब कमाल हुआ कैसे? लेकिन थोड़ी देर बाद ही उसकी समझ में सारी बात आ गई। और अब वह उसी बारिश का बार-बार धन्यवाद देने लगा।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अपने थोड़े से कष्ट के कारण बिना सोच-समझे एकदम कुछ भी भला-बुरा नहीं कहना चाहिए। इसीलिए शास्त्रों में भी कहा जाता है कि-

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम्पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

६. परोपकार ही जीवन है

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जब मनुष्य इस पृथ्वी पर आया, तो सर्वप्रथम उसकी जिज्ञासा हुई कि मैं इस दुनियाँ को देखूँ। यह सोचकर वह इस दुनिया को देखने निकल पड़ा।

घूमते-घूमते सर्वप्रथम उसे जल के दर्शन हुए। वह अपने लहर रूपी पैरों को आगे बढ़ाकर शायद कह रहा था कि- हे पत्थरों, पहाड़ों, पेड़, पौधों! तुम सब मेरे मार्ग से हट जाओ। मुझे देर हो रही है, न जाने कितने ही पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और मनुष्य मेरी राह देख रहे होंगे, वे प्यास से व्याकुल हो रहे होंगे। मेरी जरा-सी देरी के कारण उनकी आशारूपी किरण बुझ जाएगी, उनके प्राणों पर महासंकट आ जाएगा। अतः तुम सब मेरे मार्ग से हट जाओ और मुझे अपने कर्तव्य का पालन करने दो।

तत्पश्चात् मनुष्य आगे बढ़ा। चलते-चलते उसे मिट्टी मिली। वह उसे ध्यान से देखने लगा। मिट्टी पानी से निवेदन कर रही थी कि- हे! जल देवता आप मुझे शीघ्र ही गाँवों की ओर ले चलो न जाने कितने ही पशु-पक्षी, मनुष्यादि भूख से प्रताड़ित होकर मेरी राह देख रहे होंगे, क्योंकि मुझे उनके लिए खेतों में अन्न उगाना है, फल उगाने हैं, सर्दी-गर्मी से परेशान न जाने कितने स्त्री-पुरुष परेशान हो रहे होंगे। मुझे उन सबके लिए कपास उगानी है। न जाने कितने ही मनुष्य मकान न होने के कारण सर्दी, गर्मी और बरसात आदि से परेशान ही रहे होंगे। मुझे उनके लिए ईटें और घर बनाने हैं। और भी बहुत सारे काम मुझे करने हैं, अतः आप मुझे शीघ्र ले चलो।

इसके बाद मनुष्य और आगे बढ़ा तो उसे किरण के दर्शन हुए। वह बादलों और पहाड़ों से कह रही थी कि- तुम सब मेरे मार्ग से हट

जाओ। मैं एक क्षण भी लेट नहीं हो सकती। अगर मैं लेट हो गयी तो न जाने अन्धकार के कारण कितने प्राणी ठोकर खाकर इधर-उधर गिर जायेंगे, काँटों, झाड़ियों में उलझ जायेंगे और भी बहुत सारी परेशानियाँ उत्पन्न हो जाएंगी। अतः आप सब मुझे जाने दो।

इस प्रकार वह जितना भी आगे बढ़ता, उसे जो भी मिलता पेड़-पौधे, हवा, बरसात, पहाड़ आदि वे सब किसी न किसी कार्य में तथा दूसरों की भलाई में लगे हुए थे।

यह सब देखकर मनुष्य ने मन ही मन सोचा कि- इस सृष्टि में यह बड़ी ही अनोखी बात है कि सब अपने-अपने काम और परोपकार में लगे हुए हैं। केवल एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो केवल अपने बारे में ही सोचता है, अपना ही स्वार्थ साधता है। वह किसी के काम नहीं आना चाहता। यह सोचकर उसे बड़ा दुःख हुआ। और उसने उसी क्षण मिट्टी, पानी, हवा और किरणादि सभी को अपना गुरु मान लिया। उनसे प्रेरणा लेकर वह भी परोपकार के कार्य करने लगा।

उक्त कहानी से हमें यह प्रेरणा मिलती है कि- मनुष्य को सबसे ज्यादा परोपकारी होना चाहिए, क्योंकि वह अपने बुद्धि बल से बहुत कुछ कर सकता है। असम्भव को भी सम्भव बना सकता है।

हमारी समस्त प्रकृति ही हमें परोपकार करने की प्रेरणा देती है। इसीलिए कहा भी गया है कि-

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।

अर्थात् वृक्ष परोपकार के लिए फल देते हैं नदियाँ परोपकार के लिए बहती है, गाएं परोपकार के लिए दूध देती हैं। यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है, परोपकार के बिना शरीर की कोई सार्थकता नहीं होती।

७. एकता में बल है

सौराष्ट्र (गुजरात) के एक गाँव में एक व्यापारी के पाँच पुत्र रहते थे। एक बार वे पाँचों धन कमाने के उद्देश्य से बम्बई चले गए। वहाँ पहले ने एक, दूसरे ने दो, तीसरे ने तीन, चौथे न चार और पाँचवें ने पाँच लाख रूपये कमाए। तथा पाँचों अपना-अपना धन लेकर अपने गाँव की ओर चल दिए।

उन दिनों यातायात के साधन आज जैसे तो होते नहीं थे। या तो बैलगाड़ी होती थी या घोड़ा-गाड़ी (ताँगा) होती थी या लोग पदयात्रा करते थे। वे पाँचों भी पैदल ही चल दिए। मार्ग में एक बहुत गहन जंगल पड़ता था। वहाँ से गुजरते हुए लोग डरते थे, क्योंकि वहाँ एक बहुत ही क्रूर डाकू रहता था। और वह लोगों को लूटता था। जब ये पाँचों भाई वहाँ से गुजर रहे थे तो वह एक पेड़ पर छिपकर बैठा था। उसने दूर से ही इन पाँचों को देख लिया और अनुमान लगा लिया कि हो न हो इनके पास बहुत धन है। वह इनको लूटने की योजना बनाने लगा। योजना बनाते-बनाते वह सोचने लगा कि- मैं तो अकेला हूँ और ये पाँच हैं मैं इनसे मुकाबला कैसे करुँ। वह यह सब सोच ही रहा था कि वे पाँचों चलते-चलते उस पेड़ के नीचे पहुँच गए जिस पर डाकू बैठा हुआ था। पेड़ की छाया देखकर और थकावट के कारण उन्होंने सोचा क्यों न थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर लिया जाए? और वे सब पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे।

विश्राम करते-करते सभी आपस में वार्तालाप करने लगे। और किन्हीं घर-गृहस्थी की बातों के कारण उनमें तू-तू, मैं-मैं हो गई। कलह इतनी बढ़ गयी कि अन्त में पाँचों अलग-अलग मार्गों पर चल दिए, जिससे कि आपस में बात ही न हो सके।

अब डाकू ने मन ही मन विचार किया कि अरे! ये तो बहुत अच्छा हुआ। मेरी समस्या का समाधान तो इन्होंने स्वयं ही कर दिया।

अब इनको लूटने में कोई परेशानी नहीं होगी। और उसकी योजना सफल भी हो गयी। उसने पाँचों को अलग-अलग लूट लिया।

जब पाँचों लुट चूके तो परस्पर विलाप करने लगे। उनमें सबसे बड़ा भाई बड़ा ही बुद्धिमान था। वह सोचने लगा जब तक हम पाँचों एक साथ थे तब तक किसी की हिम्मत नहीं हुई हमें लूटने की जैसे ही हम अलग-अलग हुए हमारे साथ यह घटना घट गयी। उसने तुरन्त भाइयों से कहा सुनो! रोने-धोने से कोई फायदा नहीं होने वाला है, थोड़ा दिमाग से काम लो। हम पाँच हैं और डाकू एक। अगर हम पाँचों मिल जाएं तो अपना सारा धन डाकू से वापस ले सकते हैं। इसीलिए बुजर्गों ने कहा भी है कि- **एकता में बहुत बल होता है।**

यह बात बाकी सभी भाइयों की समझ में आ गयी और वे सभी मिलकर डाकू के पीछे भाग लिए।

जब डाकू ने यह सब देखा तो वह घबरा गया और सोचने लगा अरे! ये पाँचों तो फिर एक हो गये। उसकी तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई। और वह सारा धन वहीं फेंककर नो-दो ग्यारह हो गया।

तब पाँचों भाइयों ने अपना-अपना धन उठाया और चैन की सांस ली और हँसते-मुस्कराते अपने घर चले गए।

यह कहानी हमें यह शिक्षा प्रदान करती है कि- हम सबको मिल-झुल कर रहना चाहिए और मुसीबत के वक्त बुद्धि से काम लेना चाहिए।

८. अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गई खेत

विश्व में कहावतों और सुभाषितों का अपना विशेष महत्त्व है। जो सदियों से चली आ रही हैं और वर्तमान में भी जीवन्त हैं, देखने में ये साधारण-सी प्रतीत होती हैं, लेकिन इनके हृदय में बड़ी-बड़ी शिक्षाएं

भरी होती हैं, जो कि एक अनपढ़ व्यक्ति का भी बड़े ही सरल तरीके से मार्गदर्शन करती हैं। जो मानवमात्र में जीवन जीने की कला को विकसित करती हैं। उक्त शीर्षक के सन्दर्भ में हमारे शास्त्रों में एक कहानी प्रचलित है।

उत्तर भारत के किसी गाँव में भुवन नाम का एक किसान रहता था। उसकी पत्नी का नाम था कस्तूरी। उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। भाग्यवशात् उसी समय उनके घर के पास ही एक नेवले का भी जन्म हुआ लेकिन उसका जन्म होते ही उसकी माँ परलोक सिधार गयी। अत: किसान व उसकी पत्नी ने जब यह देखा तो वे नेवले को अपने घर ले आए और अपने पुत्र की तरह ही उसका भी पालन-पोषण करने लगे। वह भी उनके परिवार का एक अंग बन गया। दोनों बालक खूब खेलते और आपस में खूब स्नेह करते।

एक बार किसी कार्यवशात् किसान को कहीं बाहर जाना पड़ा। उसी समय उसकी पत्नी भी जल लेने कुएं पर चली गई। घर में दोनों बालक थे। उसी समय न जाने कहाँ से एक काला जहरीला साँप घर में घुस आया। नेवले ने जब यह सब देखा तो वह बालक की सुरक्षा के लिए तैयार हो गया और इसे अपना कर्तव्य समझकर साँप के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जिससे उसका मुख खून से लथपथ हो गया। और वह एक रक्षक की तरह आकर दरवाजे पर सो गया। वह खुश भी बहुत था; क्योंकि उसने बालक की रक्षा कर उसकी जान बचाई थी। इसलिए वह नींद में ऐसे दिख रहा था जैसे हँस रहा हो।

उसी समय कस्तूरी का भी घर में प्रवेश हुआ। और उसने जैसे ही प्रवेश द्वार पर नेवले को नींद में भी हँसते हुए देखा तो तुरन्त उसकी दृष्टि उसके मुख पर गई मुख खून से सना हुआ था और उसने तुरन्त यह निर्णय कर लिया कि जरूर इसने मेरे बालक को खा लिया है। और बिना कुछ भी सोचे-समझे सिर पर रखा हुआ घड़ा उस नेवले पर पटक दिया। जिससे नेवला थोड़ी देर तो छटपटाया लेकिन कुछ ही क्षण बाद वह मर गया।

इसके बाद कस्तूरी अन्दर गई और उसने देखा कि उसका बालक तो आराम से चैन की नींद ले रहा है। लेकिन उसके पास मृत साँप के टुकड़े पड़े हुए हैं। यह सब देखकर अब उसे यह समझने में भी देर नहीं लगी कि जरूर घर में साँप आया था और वह मेरे बालक को खाना चाहता था तथा नेवले ने साँप से मेरे बालक की रक्षा की है। अब वह रोने-चिल्लाने लगी और कहने लगी, हे! भगवान् ये मैंने क्या कर दिया? अपने पुत्र के रक्षक। पुत्र समान नेवले को ही मार दिया। हे! राम नी अब मैं क्या करुँ? लेकिन अब वह कर भी क्या सकती थी? इसीलिए कहा जाता है कि- **अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।**

इस कहानी से हमें वैसे तो कई शिक्षाएं मिलती हैं, लेकिन दो मुख्य शिक्षाएं मिलती हैं-

1. कोई भी कार्य सोच-समझकर करना चाहिए।
2. हमें अपने कर्तव्य को समझना चाहिए।

९. स्वर्ग और नरक

बहुत समय पहले की बात है। दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में एक प्रसिद्ध सन्त रहते थे। संयोगवश एक बार उनके पास राजा का एक सैनिक आया और उनसे पूछने लगा 'आचार्य! सारी दुनिया में स्वर्ग और नरक की चर्चा होती रहती है, क्या ये होते भी हैं या नहीं?'

आचार्य ने ध्यानपूर्वक उसको ऊपर से नीचे तक देखा और पूछा, ''तुम काम क्या करते हो?''

उसने उत्तर दिया- ''जी, मैं राजा का सैनिक हूँ और देश की रक्षा करता हूँ।''

आचार्य ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, 'क्या कहा तुमने, तुम सैनिक हो? लेकिन शक्ल से तो तुम कोई भिखमंगे दिखाई देते हो! तुम्हें

जिस किसी ने भी भर्ती किया हो, वह अवश्य ही कोई महामूर्ख होगा।'

इतना सुनना था कि सैनिक आगबबूला हो गया और उसका हाथ कमर पर बाँधी हुई बन्दूक की ओर गया। यह सब देखकर आचार्य बोले, 'अरे! तुम्हारे पास तो बन्दूक भी है। लेकिन चलाओगे कैसे! तुम्हें चलानी भी आती है क्या?

इन शब्दों ने उसकी क्रोध रूपी अग्नि में घी का काम किया। और उसने तुरन्त बन्दूक आचार्य की छाती पर तान दी। तभी आचार्य बोले, 'लो नरक के दरवाजे खुल गए!'

आचार्य के ये शब्द उसके कानों तक पहुँचे भी न थे कि उसने अनुभव किया कि छाती पर बन्दूक तनी देखकर भी यह आचार्य बिलकुल शान्त और निर्भय बैठा है। उनका यह आत्मसंयम देखकर वह बड़ा विचलित हो गया। देखते ही देखते उसकी क्रोधाग्नि बिलकुल शान्त हो गई और उसने अपनी बन्दूक वापस कमर में टाँग ली। आचार्य ने यह सब देखा और बोले, 'लो, अब स्वर्ग के द्वार खुल गए!'

१०. खुद को जानो

इस संसार में यह एक बहुत ही विचित्र और आश्चर्यजनक सत्य है कि हममें से अधिकांश व्यक्ति ऐसे होंगे जो इस दुनिया-जहान की वस्तुओं को अच्छी तरह से जानते हैं और अगर नहीं जानते हैं तो जानने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। चाहे उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े? और आजकल तो संचार के ऐसे-ऐसे साधन उपलब्ध हो गए हैं कि वह कहावत चरितार्थ हो गई है कि- 'दुनिया मेरी मुट्ठी में।' लेकिन फिर भी मनुष्य की यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती और वह लगा रहता है जानने में वह यह महसूस करता रहता है कि अभी कुछ बाकी है, जो मैंने नहीं जाना, और इस इच्छा की पूर्ति बड़े ही आसानी से हो सकती है। बस स्वयं को जानना है कि मैं कौन हूँ? और सब कुछ करते हुए भी हम यह काम नहीं करते जिससे कि हमें अपने अन्दर हमेशा

अधूरापन महसुस होता रहता है।

अभी आप किसी से भी पूछिए कि आप कौन हैं? वह तुरन्त जबाब देगा मैं रामलाल हूँ, श्यामलाल हूँ, घनश्याम हूँ, राम हूँ, कृष्ण हूँ इत्यादि। पहली बात तो यह है कि क्या तुम वही राम हो जो दशरथ के पुत्र थे। तो जबाब होगा नहीं मैं वो तो नहीं हूँ। अरे! भले आदमी ये नाम तो लोकव्यवहार चलाने के लिए हमारे माँ-बाप ने रख दिए, क्योंकि इनके बिना भी काम नहीं चलेगा। इसलिए ये भी आवश्यक हैं लेकिन हम सबसे बड़ी भूल हो जाती है कि हम यहीं तक सीमित होकर रह जाते हैं।

इससे आगे कुछ जानने का कोई प्रयत्न ही नहीं करते, और अपने मूल से ही भटक जाते हैं, जोकि बहुत ही भयानक है। आप सोच सकते हैं कि जिस मकान की नींव ही कमजोर हो जाए तो उसका क्या हश्र होता है? इस प्रसंग में एक दृष्टान्त याद आ रहा है, जो इस प्रकार से है।

किसी शहर में एक बहुत धनी स्त्री रहती थी। उसने एक कार खरीदी और उसको चलाने के लिए ड्राइवर रखा। एक दिन वह घूमने निकली। थोड़ी दूर चलने के बाद उसने देखा कि- उसकी पड़ोसन पैदल जा रही है, उसके मन में तुरन्त विचार आया कि क्यों न इसे अपनी गाड़ी में बिठा लिया जाए। अपनी गाड़ी और शान-शोकत दिखाने का इससे अच्छा अवसर और कहाँ मिलेगा? उसने तरुन्त ड्राइवर को आदेश देकर गाड़ी खड़ी की और उसे बुलाकर गाड़ी में बिठा लिया। यात्रा पुनः प्रारम्भ हो गई। अभी वे कुछ ही दूर चले थे कि उस स्त्री ने देखा सामने से उसकी कोई दूर की बहन आ रही है। उसने फिर वैसा ही किया और उसे भी गाड़ी में अपने साथ बिठा लिया। यात्रा फिर शुरू हुई, लेकिन फिर थोड़ी दूर चलने पर उसे अपने स्कूल के दिनों की एक सहेली दिखाई दे गई और उसने फिर वही किया और उसे भी अपने पास बिठा लिया। पिछली सीट अब भर चुकी थी। यात्रा फिर शुरू हो गयी, लेकिन थोड़ी ही दूरी पर उसे फिर कोई जानने वाली महिला मिल गई और

ड्राइवर को आदेश दे दिया कि इसे अपनी बगल वाली सीट पर बिठा लो। उसने वैसा ही किया और उसे भी बिठा लिया। अब गाड़ी में कोई सीट खाली नहीं थी।

यात्रा पुनः प्रारम्भ हो गई और संयोगवशात् उसे फिर एक महिला दिखाई दी और उसने तुरन्त ड्राइवर को आदेश दिया कि गाड़ी रोको और उस महिला को भी गाड़ी में बिठा लो।

यह सुनकर ड्राइवर बोला- मेम साहब! अब तो गाड़ी में जगह ही नहीं है, इसमें पाँच व्यक्ति ही बैठ सकते हैं। अब या तो आप गाड़ी से उतर जाओ या इनमें से किसी एक को उतार दो, तभी इनको बिठाया जा सकता है।

यह सुनकर मेम साहब बोली- भला ये कैसे हो सकता है? तभी उसके मन में विचार आया कि क्यों न ड्राइवर को ही नीचे उतार दिया जाए। और उसने ऐसे ही किया। ड्राइवर को नीचे उतार दिया और उस सीट पर महिला को बिठा दिया।

लेकिन, अब समस्या यह उत्पन्न हो गई कि गाड़ी को कौंन चलाए? उनमें से तो किसी को गाड़ी चलानी ही नहीं आती थी।

मित्रों! उक्त दशा केवल उस धनी स्त्री की ही नहीं है, अपितु यह तो हम सब की दशा है। हमारा आत्मा रूपी ड्राइवर जो हमारे अन्दर विद्यमान है, उसे तो हमने एक साइड कर रखा है और मित्र रूपी शत्रुओं-क्रोध-मान-माया-लोभादि को अपने अन्दर बिठा रखा है। और वो ही हमें चला रहे हैं, वो ही हमारे ड्राइवर बने हुए हैं। अतः हम सबको अपने असली ड्राइवर को जानना चाहिए, जिसको जाने बिना हमारी यात्रा सम्भव ही नहीं है। कहा भी जाता है कि-

''कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः॥''

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह इन सबको त्यागकर अपने आत्मस्वरूप का विचार करो कि मैं कौंन हूँ। जो आत्मज्ञान से रहित अज्ञानी हैं, वे ही घोर नरक में पकाए जायेंगे।

११. जो बोता है, वही काटता है

बात त्रेता युग की है। एक बार नारद मुनि जंगल में विचरण कर रहे थे। उन्होंने मूल्यवान् गहने और वस्त्रादि धारण कर रखे थे।

उस जंगल में रत्नाकर नाम का एक प्रसिद्ध डाकू रहता था। उसका काम था वहाँ से गुजरने वाले यात्रियों का लूटना। अत: वह उस मार्ग में छिपकर बैठा था। जैसे ही नारद जी उसके सामने से निकले उसने आदेशात्मक भाषा में कहा- ठहर जाओ, तुम्हारे पास जो भी कीमती वस्त्र-आभूषण आदि हैं, वे सब मेरे हवाले कर दो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो अपनी जान से भी हाथ धो बैठोगे।

यह सुनकर नारद जी रुक गए और बोले- ये सब वस्तुएं तो मैं तुमको सहर्ष दे दूँगा, मुझे इन क्षणभंगुर वस्तओं के लिए अपने प्राण गँवाने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन, इससे पहले मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि तुम इन सबको लेकर क्या करोगे?

यह सुनकर रत्नाकर हँसने लगा और बोला- तुम बड़े मूर्ख हो। करूँगा क्या? मेरे घर में भरा-पूरा परिवार है। माँ-बाप हैं, भाई-बहन हैं, पत्नी है, बच्चे हैं। इन सबको ऐशोआराम मिलेगा। इन वस्तुओं को बेचकर बहुत सारा धन मिलेगा उससे मैं उन सबके लिए इष्ट वस्तुओं को खरीदूँगा और उन्हें दे दूँगा। जिससे वे सब सुखपूर्वक जीवन-यापन करेंगे। और मैं क्या करूँगा यही मेरा कर्तव्य है।

यह सुनकर नारद जी बोले- ये सब तो तुम मेहनत करके धन कमा कर भी कर सकते हो, इसके लिए किसी को लूटने-खसूटने की क्या जरुरत है? ये काम जो तुम कर रहे हो यह तो बड़ा ही गलत काम है।

यह सुनकर रत्नाकर बोला- वो सब मेहनत-वेहनत मुझसे नहीं

होती और सुनो, गलत है तो गलत सही मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, मेरा समय खराब मत करो और भी कोई आएगा मुझे उसे भी लूटना है, शाम तक बहुत सारा माल एकत्रित करना है इसलिए तुम जल्दी करो वरना, मुझे गुस्सा आ गया तो देख लेना मैं क्या करूँगा, शायद तुम्हें इसका अन्दाजा भी नहीं है।

यह सुनकर नारद जी बोले- अच्छा भाई! तुम गुस्सा मत करो मैं जानता हूँ तुम्हारा गुस्सा बहुत ही खतरनाक है। लेकिन, मैं हाथ जोड़कर एक विनती करना चाहता हूँ कि तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर और दे दो फिर मैं तुमसे कुछ नहीं पूछूँगा।

कुछ देर सोचकर रत्नाकर बोला- अच्छा ठीक है, लेकिन ये ध्यान रखना कि समय अधिक नहीं लगना चाहिए। नारद जी ने तुरन्त पूछा- तुम्हें यह तो पता है कि ये सब जो तुम कर रहे हो वह गलत काम है और गलत काम की सजा भी एक न एक दिन अवश्य ही मिलती है। मुझे बस तुमसे यह पूछना है कि- तुम जिन परिवार वालों के लिए ये सब करते हो भगवान् न करे कल को तुम्हें अगर सजा मिल ही जाए तो क्या वे सब भी तुम्हारी इस सजा के भागीदार होंगे कि नहीं? क्या वह सजा तुम्हें अकेले ही भोगनी, पड़ेगी या थोड़ी बहुत वे भी भोगेंगे।

यह सुनकर रत्नाकर बोला- ये सब तो मैंने कभी सोचा ही नहीं।

नारद जी बोले- तो ऐसा करो तुम उनसे पूछ कर आओ। फिर मैं तुम्हें ये सारे गहने-वस्त्रादि दे दूगाँ।

इतना सुनते ही रत्नाकर बोला- आप मुझे मूर्ख समझते हो क्या? बहुत अच्छी योजना बनाई आपने मैं पूछने जाऊँ और आप यहाँ से नो-दो ग्यारह हो जाओ।

यह सुनकर नारद जी बोले- नहीं-नहीं ऐसा नहीं है। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। और हाँ अगर तुम्हें मेरा यकीन नहीं है तो ये लो रस्सी और मुझे सामने वाले वृक्ष से कसकर बाँध दो।

तत्पश्चात् रत्नाकर ने वैसा ही किया। बाँध दिया पेड़ से नारद जी को और चल दिया घर की ओर। घर पहुँचकर उसने घर के सभी सदस्यों को एकत्रित किया और पूछा- तुम सबको यह तो मालुम ही है कि तुम जो ये ऐशो-आराम की जिन्दगी जी रहे हो, इस पर धन खर्च होता है, वह मैं लोगों को लूटकर लाता हूँ। क्योंकि अगर मैं महनत-मजदूरी से भी कमा करके लाऊँ तो इतना ऐशो-आराम तुम लोगों को नहीं मिल सकता। मेरा प्रश्न तुम लोगों से बस इतना-सा है कि कल को अगर मुझे मेरे इस कुकृत्य की सजा मिलने लगे तो क्या तुम सब भी उसमें हिस्सेदार बनोगे या नहीं?

इतना सुनते ही सब लोग एक-दूसरे की ओर देखने लगे और अन्त में क्रमशः सभी ने एक स्वर में उत्तर दिया कि क्यों हम क्यों सजा भोगेंगे? ऐसा तो कहीं होता ही नहीं इस सृष्टि का ही नियम है कि- जो बोता है वही काटता है, तो भला हमारी क्या औकात कि हम सृष्टि के विरुद्ध जाए। और घर का मुखिया होने के नाते ये तो तुम्हारा उत्तरदायित्व है। अतः हम सबको इससे कुछ लेना-देना नहीं।

इतना सुनते ही रत्नाकर की तो जैसे आँखें खुल गई और तुरन्त भागा वहाँ से नारद जी की ओर। जाकर गिर गया उनके चरणों में और माँगने लगा माफी। यह सब देखकर नारद जी बिना कहे ही सब कुछ समझ गए और उसे प्रेमपूर्वक उठाते हुए बोले- शान्त हो जाओ वत्स! इस दुनिया का वास्तविक स्वरूप यही है। मुझे यहाँ प्रसिद्ध कवि मैथिलिशरण गुप्त की पंक्ति याद आ रही है जिसे मैं यहाँ लिखे बिना रह नहीं पा रहा हूँ-

मत व्यथित हो पुष्प! किसको सुख दिया संसार ने?
स्वार्थमय सबको बनाया जगत् के व्यवहार ने॥

तत्पश्चात् रत्नाकर ने पुनः नारद जी के चरण-कमलों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और बोले- हे पूज्यवर! अब आप ही कोई सुमार्ग बताए जिससे इस कुमार्ग से हटकर सुमार्ग की ओर अग्रसर हुआ जाए।

बतलाते हैं कि नारद जी ने रत्नाकर को फिर ऐसा सद्‌मार्ग बतलाया कि उसने वहीं संकल्प ले लिया कि वह कभी कोई गलत काम नहीं करेगा। हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलेगा। और नारद जी से उसे ऐसी सत्प्रेरणा मिली कि वह डाकू रत्नाकर से ऋषि वाल्मीकि बन गये। और संस्कृत भाषा के सर्वप्रथम महाकाव्य 'रामायण' की रचना की। जोकि आज राष्ट्रीय-अन्ताराष्ट्रीय और विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में विश्वविख्यात है।

१२. लालच बुरी बला है

मध्य प्रदेश की चम्बल घाटी में एक गाँव था। वहाँ पर चार डाकू रहते थे। एक दिन उन्होंने एक साहूकार के यहाँ डाका डालने की योजना बनाई और रात्रि का इन्तजार करने लगे। जैसे ही रात हुई उन्होंने साहूकार के यहाँ सेंध लगाई और अपनी योजना को अंजाम दे दिया। बहुत धन मिला उसे लेकर वे एक पहाड़ी गुफा में चले गये, क्योंकि प्राप्त धन का बँटवारा भी करना था और रात भी बितानी थी। अतः यही तय हुआ कि रात्रि में यहाँ आराम कर लिया जाए और प्रातः धन का बँटवारा करके सब अपना-अपना हिस्सा लेकर अपने-अपने घर चले जायेंगे।

वे वहाँ विश्राम करने लगे, लेकिन किसी को भी नींद नहीं आई। एक तो उन्हें यह डर था कि कहीं पकड़े न जाए दूसरी बात यह थी कि कहीं उनका ही कोई साथी धन लेकर नो-दो-ग्यारह न हो जाए। अतः जैसे-तैसे उन्होंने कहा भाई पहले इस धन को बाँट लो।

तत्पश्चात् उनमें से एक बोला- मित्रों! मुझे तो बहुत जोरों की भूख लगी है। भूख के मारे पेट में चूहे डांस कर रहे हैं और हो न हो तुम सब की भी यही दशा होगी। रही बँटवारे की बात तो धन तो हमारे ही पास है। अभी नहीं तो घण्टे दो घण्टे में बँट ही जाएगा। उससे पहले अगर थोड़े-बहुत भोजन का इन्तजाम हो जाए तो बहुत ही अच्छा हो।

यह सुनकर बाकी के तीनों भी बोले- मित्र बात तो तुम्हारी सोलह आने सही है, भूख तो हमें भी सता रही है, लेकिन इस निर्जन वन में भोजन आए कहाँ से?

तभी उनमें से एक बोला- मित्रों इस पहाड़ी के दूसरी ओर एक कस्बा (शहर) है और वहाँ पर स्वादिष्ट भोजन की अनेक दुकानें हैं। क्यों न वहाँ से भोजन मँगा लिया जाए। यह सलाह सबको अच्छी लगी। और उन्होंने उसी मित्र को जिसने भोजन की बात शुरू की थी आवश्यक धन देकर भोजन लाने के लिए भेज दिया।

वह डाकू पहाड़ी पार करके बाजार में पहुँच गया। पहले तो उसने भर पेट भोजन किया। इसके बाद उसने उन तीनों के लिए भी भोजन पैक करवा लिया और पैसे देकर जैसे ही चलने लगा उसके मन में विचार आया कि क्यों न इस भोजन में जहर मिला दिया जाए, जिससे वे तीनों मर जाए और सारा धन मुझे मिल जाए। यह सोचकर वह मन ही मन बहुत हर्षित हुआ और मन ही मन यह भी सोचने लगा कि अगर वे सब मुझे खाने को कहेंगे तो मैं यह कह दूँगा कि मेरे से भूख बरदाश नहीं हो रही थी। इसलिए मैं तो वहीं खा आया। और उसने उस खाने में जहर मिला दिया तथा चल दिया गुफा की ओर।

लेकिन नियति कुछ और ही थी जैसा विचार इसके मन में आया था वैसा ही विचार उन तीनों के मन में भी आ गया कि क्यों न इसको मार दिया जाए? जिससे हमारे हिस्सों में कुछ बढ़ोत्तरी हो जाए। और तीनों ने यह निश्चित कर लिया कि जैसे ही वह भोजन लेकर गुफा में घुसे हम तीनों लाठियों से उस पर प्रहार कर देंगे। और उन्होंने किया भी वैसा ही। जैसे ही तीनों ने एक साथ उस पर प्रहार किया उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

अब इत्मीनान की साँस लेकर बैठे तीनों भोजन करने अभी वे भोजन कर ही रहे थे कि उनके उदरों में उठने लगी पीड़ा। धीरे-धीरे शरीर में जहर की मात्रा बढ़ने लगी। और देखते ही देखते वे तीनों भी वहीं ढेर हो गए।

लालच के वशीभूत होकर चारों ने अपने प्राण गवाँ दिए। और वह धन वहीं पड़ा रह गया। जिसके लिए यह सब हुआ।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें कभी भी अतिलोभ नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका अन्त बुरा ही होता है। कहा भी जाता है कि- **लोभाच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम्।**

१३. द्वेष नहीं करना चाहिए

प्रसिद्ध मैंट्रो शहर कलकत्ता में एक पॉश कॉलोनी है। उसमें बहुमंजिलि इमारतें बनी हुई हैं। एक दिन दो कुत्ते कहीं से घूमते-घामते आए। उन्होंने देखा इमारतों के बीच में गहरी छाया है और शीतल हवा चल रही है, गरमी के दिन थे। अत: उन्होंने सोचा क्यों न यहाँ आराम कर लिया जाए? और वे दोनों वहाँ आराम करने लगे। उन्हें गहरी नींद आ गई और वे शान्ति से नींद में सोते हुए खराटे भरने लगे।

उसी समय वहाँ एक घटना हुई और वह घटना यह हुई कि जिस इमारत के नीचे वे सो रहे थे उसकी ऊपरी मंजिल से किसी ने एक रोटी फेंक दी। और जैसे ही वह रोटी नीचे गिरी और पट की आवाज हई। तो आवाज सुनते ही दोनों ने अपनी-अपनी आँखें खोल दी। आँखों ही आँखों से दोनों कहने लगे मेरी-मेरी। दोनों खडे हो गए और एक साथ झपट पड़े। अब रोटी तो एक ही थी। इतनी बुद्धि उन बेचारों में थी नहीं कि आधी-आधी कर लें और शान्ति से खा लें।

फलस्वरूप वे दोनों भिड़ गए और खूब लहूलुहान हो गए। अन्त में वह रोटी किसी एक के हाथ आई और उसने उसे खा लिया।

इसके बाद वे दोनों वहीं आकर उसी प्रकार शान्तिपूर्वक ऐसे सो गए जैसे कुछ हुआ ही नहीं? यह दृष्टान्त बहुत बड़ी शिक्षा प्रदान करता है वर्तमान सन्दर्भ में।

आज ऐसी भयानक एवं विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है कि- लोग बात-बात पर गुस्सा करते दिखाई देते हैं। जरा-जरा सी बात पर बड़े तो क्या छोटे-छोटे बच्चे तक न जाने क्या-क्या कर देते हैं? जिसकी जानकारी हमें प्रतिदिन विभिन्न समाचार पत्रों व विभिन्न संचार-साधनों से मिलती रहती है। पढ़कर, सुनकर और देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि आखिर हो क्या गया है इस संसार में जो इतनी भयंकर स्थिति आ गई है? और अगर हम इसके मूल में जाकर देखें तो मालूम होता है कि इस प्रतिस्पर्धा के युग में सभी एक-दूसरे से द्वेष करते हुए दिखाई देते हैं। और इसी द्वेष का प्रतिफल है- गुस्सा, क्रोध जिसके दर्शन हर किसी में सुलभ है। यहाँ कोई यह कह सकता है कि आखिर गुस्सा भी करना पड़ता है। हमारे यहाँ दण्ड-व्यवस्था का भी विधान किया गया है, उसमें गुस्सा भी करना ही पड़ता है। हाँ यह बात ठीक है, लेकिन यह भी हमारे यहाँ विधान किया गया है कि- **'कोपोऽस्तु क्षणभङ्गुरः, विद्वेषो न कदाचन।'** अर्थात् गुस्सा ऐसा होना चाहिए कि आया और गया। इसके लिए एक दृष्टान्त भी दिया जाता है कि- 'अतिथि कौंन-सा अच्छा लगता है? कि जो आया और गया। अगर अतिथि ज्यादा दिन टिक जाए तो फिर वो अतिथि नहीं रहता। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि-

श्वसुरगृहनिवासः स्वर्गतुल्यो नराणाम्,
यदि वसति दिनानि त्रीणि पञ्चाथ सप्त।
दधिमधुघृतशाकक्षीरसारप्रवाहः तदुपरि,
दिनमेकं पादरक्षा प्रयोगः॥

अतः वही गुस्सा ठीक होता है, जो थोड़ी देर के लिए आया और फिर चला गया। लेकिन जब यही गुस्सा बड़ा हो जाए तो द्वेष का रूप धारण कर लेता है, जो कि बड़ी ही खतरनाक स्थिति उत्पन्न कर देता है। अतः हमें कभी भी द्वेष नहीं करना चाहिए। एक बात और है कि आपके द्वेष करने से शायद ही दूसरे का कुछ बुरा हो चाहे न हो, लेकिन उस द्वेष के कारण द्वेष करने वाला स्वयं अन्दर ही अन्दर कुलबुलाता रहेगा। शान्त नहीं रह सकेगा। और अपने ही अन्दर अनेक

भयंकर बीमारियों को जन्म दे देगा। अतः हमें कभी भी किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए।

१४. कबूतर की बुद्धिमानी

उत्तर भारत के एक गाँव में गेंहू का एक खेत था। एक बार उस खेत में एक कबूतर-कबूतरी के जोड़े ने घोंसला बनाया। उनके साथ दो बच्चे भी रहते थे।

सूर्योदय होने के बाद कबूतर और कबूतरी दाना चुगने उड़ जाते थे और उनके बच्चे वही घोंसले में प्रेमपूर्वक रहते थे। वे दोनों बीच-बीच में आकर अपनी चोंच से उन बच्चों को भी दाने चुगा जाते थे, क्योंकि वे दोनों अभी उड़ने में समर्थ नहीं थे कि स्वयं उड़कर जाएं और दाना चुग सके।

कुछ दिनों के बाद गेंहू की फसल पक गई। खेत के मालिक ने सोचा क्यों न अब फसल को काट लिया जाए। और यही विचार करते हुए वह खेत को देखने आया। उसके साथ दो लोग और भी थे। अतः वह उनसे विचार-विमर्श करने लगा कि फसल अब तैयार है, इसे काट लेना चाहिए। मैं ऐसा करता हूँ कि कल ही मजदूरों को भेजकर इसे कटवा देता हूँ। इतना कहकर वह चला गया।

शाम को जब कबूतर और कबूतरी वापस अपने घोंसले में आए तो दोनों बच्चों ने सारी बात उन दोनों को बतलाई।

यह सुनकर कबूतरी बड़ी ही चिन्तित और व्याकुल हो गई। और कबूतर से कहने लगी, अब तो हमें यह स्थान शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए, कहीं दूसरे स्थान पर अपना घोंसला बना लेना चाहिए।

यह सुनकर कबूतर बोला- तुम सब चिन्ता मत करो। अभी एकदम हमें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। मेरा ऐसा मानना है कि- कल तो यह खेत बिलकुल नहीं कटने का।

अगले दिन वे दोनों फिर अपनी दिनचर्या के अनुसार दाना चुगने निकल गए। और शाम को जब वापिस आए तो उन्होंने देखा सचमुच ही खेत आज नहीं कटा था। लेकिन, बच्चों ने उन्हें बताया कि खेत का मालिक आज दिन में फिर आया था, और साथियों से कह रहा था मैंने मजदूरों को खेत काटने के लिए कहा था और उन्होंने हाँ भी कर ली थी। लेकिन फिर भी उन्होंने पता नहीं क्यों खेत नहीं काटा।

अतः मैं अब कल अपने रिश्तेदारों को खेत काटने भेजूँगा। इतना सुनना था कि कबूतरी ने घबराकर कबूतर से कहा कि अब तो हमें यह स्थान अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।

यह सुनकर कबूतर बोला– तुम बिल्कुल भी चिन्ता मत करो। कल भी यह खेत नहीं कटने वाला। मुझे इसका पूरा विश्वास है। और सचमुच अगले दिन भी खेत नहीं कट सका। लेकिन जब शाम को कबूतर–कबूतरी अपने घोंसले में लौटे तो उनके दोनों बच्चें बड़े चिन्तित और व्याकुल थे। कबूतर ने जब उन दोनों से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा– आज खेत का मालिक पुनः आया था। और कह रहा था कि, मैंने अपने रिश्तेदारों से भी खेत काटने को कहा था लेकिन 'हाँ' कहने के उपरान्त भी वे खेत काटने नहीं आए। अब कल मैं स्वयं आकर ही खेत काँटूगा।

यह सुनकर कबूतरी ने कबूतर से पूछा, क्या अब भी हमें यह स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर चले नहीं जाना चाहिए? कबूतर बोला– नहीं अब हमें जरा–सी भी कोताही नहीं करनी चाहिए। तुरन्त यह स्थान छोड़ देना चाहिए।

यह सुनकर कबूतरी बोली– लेकिन एक बात बताओ कि तुम्हें पहले कैसे मालुम था कि यह खेत नहीं कटेगा?

कबूतर बोला– भाग्यवान्! श्रीमती जी! बड़ी ही साधारण और सरल–सी बात है कि कोई भी व्यक्ति तब तक किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकता जब तक वह दूसरों के आश्रित रहता है। उचित

समय तभी आया समझो जब व्यक्ति अपना कार्य स्वयं रुचि और निष्ठापूर्वक आरम्भ करे। अब तक उनके बच्चों के पंख भी उड़ने में सक्षम हो गए।

इस कहानी से हमें दो शिक्षाएं मिलती हैं कि एक तो हमें बुद्धिपूर्वक काम करना चाहिए और दूसरी यह कि स्वावलम्बी बनना चाहिए। अर्थात् अपना कार्य स्वयं करना चाहिए।

१५. सफलता की चाबी मेहनत

दक्षिण भारत के किसी प्रान्त के एक गाँव में एक किसान रहता था। उसके एक लड़का था। जिसका नाम था– रामदेव। जब वह अल्पायु का ही था तो उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया। संयोगवश कुछ वर्षों के उपरान्त उसके पिता को भी किसी भयंकर बीमारी ने घेर लिया। जब उसके पिता को यह आभास हो गया कि अब इस बीमारी का कोई इलाज सम्भव ही नहीं है और मेरा मरना निश्चित है तो उसने अपने बेटे को अपने पास बुलाकर कहा– देख बेटा! रामदेव मैं तो अब तुझे अकेला छोड़कर इस संसार से जा रहा हूँ। तुझे देने के लिए मेरे पास न तो धन–दौलत है और न ही कोई जमीन–जायदाद। मैं तो बस तुझे एक अमूल्य और जीवनोपयोगी बात बता सकता हूँ।

यह सुनकर रामदेव फूट–फूट कर रोने लगा और पिता की बात भी सुनता रहा।

किसान ने कहा– बेटा! आज से चींटी तेरी गुरु है। जैसा वह कहे, वैसा ही करना। इतना कहते ही किसान के प्राण–पखेरू उड़ गए और वह इस दुनिया से सदा के लिए विदा हो गया। इसके बाद पिता के शरीर की सभी अन्तिम क्रियाएं सम्पन्न कर रामदेव सीधा चींटी के पास चला गया और बोला– चींटी–चींटी! आज से तू मेरी गुरु है। बता, मैं क्या करुँ?

अब भला चींटी क्या जबाब देती। वह तो चुपचाप अपने काम में लगी रही और मेहनत करती रही। इससे रामदेव इतना तो समझ गया कि मुझे भी मेहनत करनी चाहिए और उसने मन ही मन दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं भी आज से खूब मेहनत करूँगा। लेकिन एक बात उसकी समझ में नहीं आई कि आखिर मैं क्या काम करुँ? और वह इसी ऊहापोह में सो गया। क्योंकि रात बहुत अधिक हो गई थी।

अगले दिन वह प्रातःकाल ही आवश्यक क्रियाएं निबटाकर पुनः चींटी के पास पहुँचा और कहने लगा- चींटी-चींटी! तू मेरी गुरु है। कृपा करके बता न मैं क्या काम करुँ, जिससे कि मुझे सफलता मिले।

अब भला आप तो जानते ही हैं कि- चींटी क्या बोलती? वह अपने नन्हें से मुंह में गेहूँ का दाना उठाती और अपने निवास स्थान पर ले जाती। बार-बार वह यही करती जाती।

यह देखकर रामदेव सोचने लगा कि जरूर इसमें कोई न कोई राज है जो मेरी समझ में नहीं आ रहा है। और वह सोचने लगा। और सोचते-सोचते उसके समझ में आ गया कि मुझे भी मेहनत करके खेत में गेहूँ उगाने चाहिए।

इसके बाद रामदेव अपने घर गया। पिता के हल को उठाया और जोड़ दिया दोनों बैलों को तथा चला खेत की ओर। उसने खूब मेहनत से खेत में हल चलाया, बीज बोया, पानी दिया, रखवाली की और अन्त में फसल की कटाई की। लेकिन, जब दाने निकले तो उनकी मात्रा उसकी अपेक्षा से बहुत ही कम थी। इससे वह थोड़ा निराश भी हो गया।

अगले दिन रामदेव फिर चींटी के सम्मुख गया और बोला, चींटी-चींटी! तू मेरी गुरु है। मैंने खेत में खूब मनोयोग से मेहनत की, लेकिन मुझे अपेक्षित फल प्राप्त नहीं हुआ। बता, अब मैं क्या करुँ?

चींटी की तो अब भी वही स्थिति थी। भला वह क्या बोलती? लेकिन आज वह एक दूसरे काम में व्यस्त थी। वह अपने छोटे से मुंह

में अपने से भी बड़ा गेहूँ का दाना लेकर एक दीवार पर चढ़ रही थी। वह दाना बार-बार उसके मुंह से छूटकर नीचे गिर जाता था। लेकिन, चींटी थी कि हार मानने को तैयार ही नहीं थी। दाना फिर नीचे गिरता और वह फिर उसे उठाती और दीवार पर चढ़ने लगती। और अन्त में वह अपने कार्य में सफल हो गई।

यह सब देखकर रामदेव समझ गया कि एक बार मेहनत करने से यदि सफलता न मिले तो हमें निराश होकर अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिए। पुनः पुनः प्रयास करना चाहिए। अन्त में हमें सफलता अवश्य ही मिलेगी।

अगले दिन सूर्योदय से पहले ही रामदेव पहुँच गया खेत में। और उसने फिर हल चलाया, बीज बोया, पानी दिया और धीरे-धीरे फसल तैयार हो गई। फिर उसने खेत की कटाई की। और अबकी बार जो दाने निकले उन्हें देखकर तो रामदेव हैरान हो गया। क्योंकि अबकी बार दाने उसकी अपेक्षा से भी दस गुना अधिक थे। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

असफलता मत रोक मुझे तु, हट जा दूर निराशा।
तुझमें इतनी आग नहीं है, जितनी मुझ में आशा।।

१६. सब पत्थर हैं

बहुत समय पहले की बात है। एक बार दक्षिण भारत की एक रियासत में एक महात्मा आए। रियासत के राजा ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। और अन्त में राजा बोले आइए महात्मा अब मैं आपको अपनी रियासत की सम्पत्ति दिखाता हूँ। राजा मन-ही मन बड़े प्रमुदित हो रहें थे कि महात्मा मेरी सम्पत्ति को देखकर बड़े खुश होंगे और मुझे कोई अच्छा आशीर्वाद देंगे।

राजा ने पहले उन्हें अपना सारा महल दिखाया, अस्तबल दिखाया, खेत-खलिहान दिखाए और ये सब दिखाने के पश्चात् वे उन्हें अपने कोषागार में ले गए। वहाँ पर उन्होंने महात्मा को सोना-चाँदी, हीरे, पन्ने, मोती, नीलम आदि बहुमूल्य सम्पदा तथा रत्नों का संग्रह दिखाया। यह सब देखकर महात्मा बोले- राजन् इन पत्थरों से आपको कितनी आमदनी होती है?

यह सुनकर विस्मित होते हुए राजा बोला- महात्मन् आप इन बहुमूल्य वस्तुओं को पत्थर कह रहें है। और रही बात आमदनी की तो इनसे आमदनी तो क्या होगी, बल्कि इनकी रक्षा हेतु उल्टा मुझे इन पर बहुत-सा धन व्यय करना पड़ता है। दुनिया भर के कर्मचारी रखने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर मैं इनको सुरक्षित रख पाता हूँ।

इतना सुनते ही महात्मा बोले- तब ये बहुमूल्य कैसे हुए? मैंने तो इनसे भी कीमती पत्थर देखे हैं।

यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित होते हुए बोला- 'अच्छा'! क्या आप मुझे भी उन बहुमूल्य पत्थरों के दर्शन करा सकते हो?

महात्मा बोले- 'हाँ' क्यों नहीं? आप अभी चलें मेरे साथ मैं अभी आपको उन पत्थरों के दर्शन कराता हूँ। इतना सुनते ही राजा चल दिए महात्मा के साथ।

महात्मा राजा को घुमाते-फिराते महल के नजदीक ही बसे हुए एक गाँव में ले गए। गाँव में एक साधारण-सा मकान था। वे राजा को मकान के अन्दर ले गए।

जैसे ही उन्होंने मकान में प्रवेश किया तो देखा सामने ही एक औरत पत्थरों की चक्की से गेहूँ पीस रही थी और मधुर गीत गा रही थी।

तब महात्मा बोले- राजन! यही है वे कीमती पत्थर, जिनसे यह महिला गेहूँ पीस रही है, और पीसते-पीसते जितनी यह हर्षित हो रही है उसका तो कुछ अन्दाजा ही नहीं लगाया जा सकता। और एक आपके

पत्थर हैं, जो एक ही स्थान पर पड़े हुए हैं, वे टस से मस नहीं हो सकते, लेकिन ये पत्थर इस औरत की जीविका तथा आत्मिक शान्ति के आधार बने हुए हैं।

अतः हे राजन्! अब आप ही बताइए कि कौन-से पत्थर कीमती हैं? निःसन्देह ये पत्थर उन पत्थरों से बहुमूल्य हैं।

यह सुनकर राजा की समझ में सारी बात आ गई और उन्होंने महात्मा के चरणों में अपना सिर रखते हुए कहा कि- महात्मन् आज आप ने मेरी आँखें खोल दी। मैं आजीवन आपका अत्यन्त आभारी रहूँगा।

१७. भय और आशा

भय (डर) और आशा (कुछ मिलने की चाह) -ये दो ऐसे शब्द हैं, जिनसे न केवल मनुष्य अपितु पशु-पक्षी भी अछूते नहीं रहते। इस सन्दर्भ में शास्त्रों में कहानी कही जाती है, जो इस प्रकार है-

एक थी बिल्ली और एक था चूहा। चूहा एक सोने के पिंजरे में बन्द है। पिंजरे के द्वार पर अलीगढ़ की प्रसिद्ध कम्पनी का मजबूत ताला लगा हुआ है, जिसको खोलना असंभव नहीं तो कठिन बहुत है, जिसे बिल्ली तो कदापि नहीं खोल सकती। पिंजरे में चूहे की मनपसन्द चीजें काजू, बादाम, अखरोट आदि अनेक वस्तुएं रखी हैं, लेकिन खाना तो दूर वो बेचारा उनकी तरफ देख भी नहीं पा रहा है।

चूहे के पिंजरे से लगभग 50 मीटर की दूरी पर बिल्ली खड़ी है। उसके सामने भी उसकी मनपसन्द वस्तुएं खीर, दूध, मलाई आदि रखी हैं, लेकिन उसकी भी वही स्थिति है, वह कुछ भी खा नहीं पा रही है। आप जानते हैं ऐसा क्यों हो रहा है?

ऐसा इसलिए हो रहा है कि- चूहे को तो डर है कि अगर मैं खाने लगा तो बिल्ली कहीं मुझे न खा जाए। बिल्ली को यह आशा है कि जाने कब ये चूहा मेरे हाथ लग जाए और मैं इसे चट कर जाऊँ।

अतः दोनों ही नहीं खा पा रहे हैं।

यही स्थिति कमोवेश कहीं न कहीं हम सबकी भी होती है। जो हमारे पास होता है, उसका हमें डर लगा रहता है कि कहीं यह खत्म न हो जाए। और जो हमारे पास नहीं होता है, उसे प्राप्त करने की आशा में हम लगे रहते हैं। अतः जो हमारे पास होता है हम आजीवन उसे भी नहीं भोग पाते।

१८. विचित्र स्वभाव

एक थी चिड़िया और एक थी चूहिया। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों साथ ही रहतीं, साथ खातीं, साथ खेलतीं और साथ ही घूमने-फिरने जाती। चिड़िया थी सरल स्वभाव की और समझदार भी बहुत थी और वह हमेशा चूहिया का हित चाहती थी। समय-समय पर उसे समझाती भी रहती थी।

लेकिन चूहिया थी बिल्कुल उसके विपरीत स्वभाव की। वह चिड़िया की बात सुन तो लेती, लेकिन न तो वह उसकी बातों को मानती थी। उल्टा उसी को कोई न कोई अतर्कसंगत तर्क (जबाब) दे देती थी।

एक दिन उन दोनों की जंगल में पिकनिक मनाने की योजना बनी। और निकल पड़ी दोनों पिकनिक के लिए। चिड़िया ने बातों ही बातों में उसे इशारे से समझा भी दिया था कि- देख बहन जंगल का मामला है। अतः हम दोनों को बड़ी ही सावधानी से अपनी यात्रा करनी है। चूहिया ने स्वीकृति में अपनी गर्दन भी हिला दी। लेकिन, अभी वे कुछ ही दूर चलीं थीं कि रास्ते में एक झाड़ी थी। चिड़िया ने चूहिया को सचेत करते हुए कहा कि- देख बहन सामने झाड़ी है मैं तो उड़कर पार कर लूँगी, लेकिन तुम्हें बड़ी ही सावधानी से झाड़ी से बचकर निकलना है।

यह सुनकर चूहिया बोली- हाँ-हाँ क्यों नहीं मैं इतनी पागल भी नहीं हूँ। तुम उड़कर झाड़ी पार करो मैं आती हूँ। चिड़िया तो उड़ गई।

लेकिन चूहिया कहाँ मानने वाली थी। वह तो अपने स्वभाव से मजबूर थी। घूस गई झाड़ी में और जो होना था वही हुआ जिसका चिड़िया को डर था। चूहिया फँस गई झाड़ी में और हो गई काँटों से लहुलुहान।

जब काफी देर हो गई तो चिड़िया को बड़ी चिन्ता हुई। और लगी चूहिया को ढूँढ़ने। काफी देर की मशक्त के बाद आखिरकार उसने चुहिया को ढूँढ़ ही लिया। उसकी हालत देखकर उसे उस पर बड़ी दया भी आई और गुस्सा भी आया। खैर उसने बिना समय बर्बाद किए सर्वप्रथम उसे अपनी नन्हीं चोंच से पकड़ा और बाहर निकाला और राहत की सांस ली। कुछ क्षण आराम करने के बाद चिड़िया बोली देख बहन मैंने तुझे पहले ही समझाया था न कि झाड़ी से बचकर निकलना है, लेकिन तूने मेरी बात नहीं मानी। अच्छा सुन जो होना था वह हो गया लेकिन आगे से ध्यान रखना।

यह सुनकर चूहिया बोली– अरी बहन तू तो व्यर्थ में दुःखी हो रही है। मैं तो झाड़ी में नाक-कान बिंधवा रही थी।

यात्रा फिर शुरू हुई रास्ते में भैंस का गोबर पड़ा हुआ था। चिड़िया ने फिर चूहिया को सचेत किया। लेकिन वो कहाँ मानने वाली थी। और धँस गई गोबर में।

चिड़िया ने फिर अपना कर्त्तव्य निभाते हुए उसे बाहर निकाला, और फिर उसी बात को दोहराया। जानते हो अबकी बार चूहिया क्या बोली? वह बोली अरी बहन तू तो व्यर्थ ही चिन्ता करती है, तेरी तो आदत ही खराब हो गई है, मैं तो मेंहदी रचवा रही थी। पिकनिक का मजा भी तो लेना है ये थोड़ा ही है कि जैसे घर से आए थे वैसे ही वापस चले जाएं।

यह सुनकर चिड़िया बोली ठीक है, लेकिन आगे ध्यान रखना कहीं अनहोनी न हो जाए।

चूहिया बोली– हाँ ठीक है चलो, आगे चलते हैं। वे कुछ ही दूर आगे गई तो सामने समुद्र था। चिड़िया बोली देख बहन आगे का रास्ता

समुद्र के किनारे से है अतः हमें किनारे-किनारे ही चलना है। लेकिन चूहिया कहाँ मानने वाली थी। बीच-बीच में घूसने लगी समुद्र में कुदरती उसी वक्त समुद्र में एक तेज लहर आ गई और लगी चूहिया समुद्र में डूबने। चिड़िया ने फिर अपनी मित्रता को निभाया और अपनी नन्हीं चोंच से पकड़कर चूहिया को बाहर निकाला। सर्वप्रथम उसके पेट में से समुद्र का खारा पानी निकाला तब कहीं चूहिया के जान में जान आई। आपको पता है अबकी बार चिड़िया ने क्या कुतर्क दिया।

वह बोली- अरे! बहन तुम क्यों व्यर्थ में इतनी दुःखी होती हो मैं तो गंगास्नान करके पवित्र हो रही थी। इसी प्रकार और भी आगे कई घटनाएँ हुई, लेकिन चिड़िया अपनी मित्रता को निभाते हुए चूहिया का साथ देती रही। और चूहिया अपने स्वभावनुसार कोई न कोई तर्क देती गई। लेकिन चिड़िया उसे अन्त में पिकनिक कराकर हँसी-खुशी घर वापस ले आई। इसीलिए शास्त्रों में कहा भी जाता है कि-

यः स्वभावो हि यस्यास्ति, सः नित्यं दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा, तत्किं नाश्नात्युपानहम्॥

अर्थात् जिसका जो स्वभाव है, वह बदल नहीं सकता। अर्थात् स्वभाव परिवर्तन होना कठिन है। जैसे यदि कुत्ते को राजा बना दिया जाये तो क्या वह जूता नहीं चाटेगा, अर्थात् अवश्य चाटेगा।

यदि स्याच्छीतलो वह्निः, शीतांशुर्दहनात्मकः।
न स्वभावोऽत्र मर्त्यानां, शक्यते कर्तुमन्यथा॥

यदि अग्नि ठण्डी हो जाये और चन्द्रमा दाह पैदा करने लगे तो भी मनुष्य का स्वभाव बदला नहीं जा सकता।

स्वभावो नोपदेशेन, शक्यते कर्तुमन्यथा।
सुतप्तमपि पानीयं, पुनर्गच्छति शीतताम्॥

उपदेश से किसी का स्वभाव बदला नहीं जा सकता जैसे तपा हुआ भी पानी फिर से ठण्डा जो जाता है।

१९. आपसी फूट के कारण पिटे

हरियाणा प्रान्त के गुड़गाँव जिले में एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ तीन पड़ोसी रहते थे। पण्डित अमरनाथ, लाला बोहडुमल और पटवारी कंवरलाल। तीनों अपने-अपने काम में खूब व्यस्त रहते थे। व्यस्तता के कारण कई बार तो ऐसा भी होता था कि वे कई-कई दिन तक एक-दूसरे से मिल भी नहीं पाते। घर-गृहस्थी सम्बन्धी इतने काम होते कि मिलने का अवसर कम ही मिलता। लेकिन, फिर भी वे अपना समय हँसी-खुशी व्यतीत करते थे।

एक बार पास के ही एक शहर में दीपावली के उपलक्ष में मेले का आयोजन हो रहा था। सर्वप्रथम पण्डित जी को यह समाचार मिला। उन्होंने अपने दोनों पड़ोसियों को यह समाचार बताया। और वे तीनों मेले में जाने की योजना बनाने लगे। काफी विचार-विमर्श के बाद वे तीनों मेला देखने के लिए निकल पड़े।

उस समय यातायात के ऐसे साधन तो उपलब्ध नहीं थे, जैसे आजकल हैं। न बस थी, न कार थी, न ऑटो थे और यहाँ तक कि रेलगाड़ी भी नहीं थी। लोग पैदल ही यात्रा करते थे। अतः उन तीनों ने भी पैदल ही मेले में जाने का निर्णय किया। उन दिनों कुछ खास लोगों के पास घोड़े या बैलगाड़ी की सवारी हुआ करती थी।

मार्ग में चलते-चलते उन्हें भूख-प्यास लगी तो उन्होंने देखा एक गन्ने का खेत है। और उसमें लम्बे, हरियल और रसीले गन्ने उगे हुए हैं। पण्डित जी को तो देखते ही मुंह में पानी आ गया और तुरन्त बोले- भाई! हम तो गन्ना खायेंगे।

यह सुनकर लाला जी कहाँ पीछे रहने वाले थे, बोले- हम भी खाएंगे। पटवारी जी बोले- भाई! जब तुम दोनों गन्ना खाओंगे तो मैं क्या तुम्हें खाते हुए देखता रहूँगा? मैं भी गन्ना खाऊँगा।

तीनों ने बिना किसी से पूछे-ताछे एक-एक गन्ना तोड़ लिया और लगे गन्ने का रस चूसने। तीनों को बड़ा मजा आ रहा था।

खेत का मालिक भूपसिंह दूर मेड़ पर बैठा यह सब देख रहा था। उसे गुस्सा तो बहुत आ रहा था। लेकिन वह बेचारा कुछ कर नहीं पा रहा था। क्योंकि वह था अकेला और ये थे तीन। वह बैठा-बैठा सोच रहा था कि मैं कैसे इनको समझाऊँ कि बिना मालिक से पूछे किसी की वस्तु ले लेना चोरी करना होता है। और चोरी का फल दण्ड होता है। अतः वह इन तीनों को पीटने का उपाय सोचने लगा। सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझ भी गया। उसने सोचा सर्वप्रथम इन तीनों में फूट डालकर इनको अलग-अलग किया जाए।

वह दौड़कर उनके पास गया। उसने सर्वप्रथम पण्डित जी के चरणों में झुककर उनकी पद रज माथे पर लगायी। लाला जी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। और फिर अपना डण्डा सम्भालते हुए पटवारी से बोला- भाई पटवारी साहब! पण्डित जी तो हमारे बेटे-पोतों को पढ़ाते हैं, हमें ब्रह्म का ज्ञान कराते हैं। उन्होंने गन्ना तोड़ लिया तो अच्छा ही किया। लाला जी से हम चीनी, नमक, तेल, गुड, दालादि उधार लेते हैं। अतः उन्होंने गन्ना तोड़ा तो चलो अच्छा ही किया। लेकिन, पटवारी साहब तुम तो कचहरी में हम पर झूठे-सच्चे जुर्माने लगाते हो, अदा न करने पर जेल में भी भिजवा देते हो। अतः एक हिसाब से तो तुम हमारे शत्रु ही हुए। फिर तुमने मेरे खेत से गन्ना क्यों तोड़ा?

इतना कहकर भूपसिंह पिल पड़ा पटवारी जी पर और ताबड़-तोड़ जमा दिए कई डण्डे और छीन लिया अपना गन्ना।

जब यह दुर्घटना घट रही थी तो पण्डित जी और लाला जी चुपचाप खड़े-खड़े सब देखते रहे। और मन ही मन सोच रहे थे, यह किसान पटवारी को पीट रहा है तो पीटता रहे। हमें क्या लेना-देना? हमें तो यह बेचारा कुछ कह नहीं रहा है। अतः हमें तो इस विवाद से दूर ही रहना चाहिए।

किसान तो अपनी योजनानुसार चल रहा था। पटवारी जी की तसल्ली करके वह लाला जी की ओर उन्मुख हुआ और बोला- हाँ जी सेठ जी! जब हम तेरी दुकान पर सौदा लेने जाते हैं तो क्या तुम हमें मुफ्त में सौदा दे देते हो? मुफ्त तो देना दूर की बात डबल पैसे लेकर भी चीज पूरी नहीं देते। रही उधार की बात तो उसमें भी तुम ब्याज लगाकर दो के चार बतलाते हो। फिर बताओ आखिर क्या सोचकर तुमने मेरे खेत से गन्ना तोड़ा?

इतना कहकर भूपसिंह ने लाला जी की भी अच्छी-खासी मरम्मत कर डाली। और छीन लिया अपना गन्ना। पटवारी भी चुपचाप खड़ा रहा कि जब इसने मेरा साथ नहीं दिया तो मैं क्यों इसे बचाऊँ?

इधर पण्डित जी के मन में खूब मोतीचूर के लड्डू फूट रहे थे। वे मन ही मन अतीव प्रसन्न हो रहे थे कि किसान ने इन दोनों की तो अच्छी-खासी मरम्मत कर दी। लेकिन, मेरी तो वह बड़ी इज्ज्त करता है, इसीलिए उसने मुझे कुछ नहीं कहा। लेकिन, यह पण्डित जी का भ्रम था। क्योंकि अगला नम्बर उन्हीं का था।

अब किसान पण्डित जी की ओर उन्मुख होकर बोला- हाँ तो पण्डित जी क्या हाल-चाल हैं आपके मुझे कुछ-कुछ ऐसा याद आ रहा है कि आप बच्चों को पढ़ाने के बदले में हम लोगों से भरपूर मात्रा में फसल आने पर सबसे पहले अनाज लेते हैं। और मुझे कुछ ऐसा भी याद आ रहा है कि एक बार सूखा पड़ने के कारण हम आपको अनाज नहीं दे पाए थे तो आपने उस वर्ष मेरे बेटे को पढ़ाया ही नहीं था। तो आपने क्या सोच मेरे खेत से गन्ना उखाड़ा? जरा बताने का कष्ट करेंगे?

पण्डित जी क्या बोलते? किसान जो कह रहा था वह सोलह आने सत्य था। बस फिर क्या था? किसान ने शुरू कर दिया अपना कार्यक्रम और छीन लिया अपना गन्ना। वे दोनों भी चुपचाप खड़े तमाशा देखते रहे, क्योंकि पण्डित जी ने भी तो ऐसा ही किया था।

इस प्रकार तीनों पड़ोसी आपसी फूट के कारण अलग-अलग पिटे। तथा उन्होंने काम भी पिटने का ही किया था, क्योंकि बिना पूछे किसी की वस्तु लेना चोरी होता है। और चोरी का फल तो आप सबको मालुम ही है। हाँ यह भी जरूर था कि अगर वे तीनों आपस में एक होते तो पिटाई से बच जाते और क्षमादि माँगकर चोरी का पश्चाताप कर लेते और किसान की हिम्मत नहीं होती उन्हें पीटने की। अतः हम सबको आपसी फूट से बचना चाहिए। हमारे देश पर अंग्रेजों ने जो इतने वर्षों तक राज किया था, उसके मूल में हमारी आपसी फूट ही थी। इसीलिए उनका एक नारा उस समय प्रचलित था-

फूट डालो और राज करो।

२०. सत्य का बल

सत्य बोलना एक अत्यन्त साहस का कार्य होता है। और सत्य के बल पर ऐसे-ऐसे कार्यों को अंजाम दिया जा सकता है, जिनकी कल्पना भी शायद न की जा सके। सत्य और अहिंसा के बल पर ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने हमारे देश को अंग्रेजों से स्वतन्त्रता दिलाई। हमारे देश में सत्यवादी राजा हरीशचन्द्र जैसे अनेक महापुरुष हुए। जिनकी महानता के गुणगान आज भी आदर-सत्कार पूर्वक गाए जाते हैं। ऐसे ही एक सच्चे बालक की एक कहानी मुझे यहाँ याद आ रही है, जिसे मैं यहाँ लिखने का प्रयास करूँगा।

हमारे देश के उत्तरी भाग में एक प्रान्त है। जिसका नाम है- पंजाब! वहाँ के एक छोटे से गाँव के परिवार में एक बालक का जन्म हुआ। बालक का नाम रखा गया- सत्यपाल। सत्यपाल के जन्म के कुछ वर्ष बाद ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। अतः उसकी माँ ने ही उसका लालन-पालन किया। तथा गाँव के ही विद्यालय में आठवीं कक्षा तक पढ़ाया। सत्यपाल आगे भी पढ़ना चाहता था। लेकिन, गाँव में इससे आगे की पढ़ाई करने के लिए विद्यालय ही नहीं था।

एक दिन सत्यपाल ने माँ से निवेदन किया– मैं आगे पढ़ने के लिए शहर जाना चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा दें।

यह सुनकर वह बोली– बेटा! शहर यहाँ से बहुत दूर है। और रास्ते में बीहड़ जंगल पड़ता है। और तेरे बिना मेरा दिल भी इस घर में नहीं लगेगा। इसलिए तुझे शहर भेजने से मेरा दिल घबराता है।

यह सुनकर वह बोला– माता जी, मेरी भलाई और उज्ज्वल भविष्य के लिए आप कुछ वर्षों के लिए दिल मजबूत करें। विद्या प्राप्त कर जब मैं लौटूँगा तो भगवान् के आशीर्वाद से और विद्या की प्राप्ति से हमारे सब दुःख दूर हो जाएंगे तथा हम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगे। और रही बात मार्ग की तो आप उसकी चिन्ता ही न करें। कल ही व्यापारियों का एक समुह शहर जा रहा है। मैं उन्हीं के साथ चला जाऊँगा। आप चिन्ता न करें।

बेटे की इतनी प्रबल इच्छाशक्ति को देखकर माँ ने उसे जाने की अनुमति दे दी। और उसके जाने की तैयारी करने लगी। माँ ने घर में कुछ पैसे बचाकर रखे थे। वे पैसे उन्होंने सत्यपाल की बनियान में अन्दर की तरफ जेब लगाकर इस तरह छिपा दिए कि कोई दूसरा व्यक्ति उन्हें ढूँढ़ न सके। और उसको समझाते हुए बोली– बेटा! इन रूपयों को समझदारी से खर्च करना, सदाचार का पालन करना, सदा सत्य बोलना।

ये वचनामृत देकर अगले दिन व्यापारियों के समुह के साथ माँ ने उसको विदा कर दिया।

जब वे सब बीहड़ जंगल से गुजर रहे थे तो जिस अनहोनी का डर व्यापारियों को था वही घट गई। अचानक बहुत सारे डाकुओं ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। और डाकुओं के सरदार ने आदेश देते हुए कहा कि– जिसके पास जो भी कुछ माल-मत्ता हो वह चुपचाप निकालकर मेरे सामने रख दे। वरना मैं तुम्हारे साथ जो करूँगा वो तुम जानते ही हो।

यह सुनकर सभी व्यापारियों ने तो साफ झूठ बोल दिया कि– हमारे पास तो कुछ भी नहीं है। लेकिन, सत्यपाल बोला– नहीं, मेरे पास

कुछ रूपए हैं। और उसने अपने बनियान की अन्दर की जेब से रूपए निकालकर डाकुओं के सामने रख दिये।

यह देखकर डाकू बहुत अचम्भित हुए। तथा डाकुओं का सरदार बोला– बालक! तुम्हारे इन रूपयों का तो हमें पता भी न चलता, फिर तुम भी इन व्यापारियों की तरह झूठ बोल सकते थे और अपने रूपयों को बचा सकते थे।

यह सुनकर बालक सत्यपाल बोला– मेरी माँ ने मुझे हमेशा सत्य बोलने के लिए कहा है। मैंने अपनी माँ की आज्ञा का पालन किया है।

यह सुनकर डाकुओं पर सत्यपाल की सत्यवादिता का इतना गहरा प्रभाव हुआ कि उन्होंने सत्यपाल के रूपए भी लौटा दिए तथा उसके साथी व्यापारियों को भी रिहा कर दिया। तथा न केवल इतना ही अपितु स्वयं भी आजीवन सत्य बोलने तथा जीवन में कोई भी गलत काम न करने की प्रतिज्ञा कर ली। मित्रों! इसीलिए कहा जाता है कि–

नास्ति सत्यात्परं तपः।
सत्य से बढ़कर और कोई तप नहीं।
सत्यान्न प्रमदितव्यम्।
सत्य से प्रमाद मत करो।
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशताद्वरम्।।

अर्थात् सौ कुओं से एक बावड़ी का दान अच्छा, सौ बावड़ियों से एक यज्ञ अच्छा, सौ यज्ञों से एक पुत्र अच्छा, सौ पुत्रों से एक सत्य अच्छा।

२१. करनी का फल

बहुत समय पहले की बात है। उत्तर भारत की अयोध्या नगरी में एक बड़े ही ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ट राजा थे। उन्होंने अपने राज्य में एक बार मुनादी फिरवायी कि उनके राज्य में सभी ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और सत्यनिष्ठ हों, कोई किसी से धोखा न करे, कोई नकली व मिलावटी चीजें न बेचे। इसीलिए राजा राज दरबार में भी छाँट-छाँट कर ऐसे ही लोगों को नौकरी देते थे। इस तरह सैनिक से लेकर बड़े अफसर तक सभी ईमानदार, सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्यपरायण थे। लेकिन, न जाने कैसे वहाँ एक बेईमान पहरेदार नियुक्त हो गया। संयोगवश उसकी ड्यूटी भी राजा के राजदरबार के मुख्य दरवाजे पर ही लग गई। राजा से मिलने के लिए बहुत लोग आते। वह उन सबसे कोई न कोई बहाना बना देता और राजा से नहीं मिलने देता। हाँ जो लोग उसे कुछ दान-दक्षिणा (रिश्वत) दे देते वह उन्हें तुरन्त अन्दर जाने की अनुमति दे देता। लेकिन राजा को इसकी जरा-भी खबर नहीं थी। और पहरेदार का धन्धा दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति की तरह खूब फल-फूल रहा था।

संयोगवशात् एक दिन एक बहुत बड़ा गायक वहाँ आया। वह राजा को अपना गाना सुनाना चाहता था। लेकिन, पहरेदार ने उसे अन्दर जाने से मना कर दिया। क्योंकि उसे जो चाहिए था वो तो आपको मालुम ही है।

गायक बार-बार उससे निवेदन करने लगा- देखिए! मैं बहुत दूर से यात्रा करके आया हूँ। मुझे राजा से बहुत जरूरी काम है। कृपया आप मुझे राजा से मिलने दो।

यह सुनकर पहरेदार बोला- अच्छा, पहले तुम यह बताओं तुम्हें राजा से क्या काम है?

गायक- मैं उन्हें अपना गाना सुनाना चाहता हूँ।

पहरेदार-गाना सुनाने से तुम्हें क्या फायदा होगा?

गायक– अगर, राजा मेरा गाना सुनकर प्रसन्न हो गए तो वे मुझे ईनाम देंगे।

पहरेदार–तो एक बात सुन लो मैं बिना कुछ लिए–दिए किसी को अन्दर नहीं जाने देता हूँ। अगर तुम यह वादा करो कि इनाम में से आधा हिस्सा मुझे दोगे तो, मैं तुम्हें अन्दर जाने की अनुमति दे सकता हूँ।

गायक ने कुछ देर सोच–विचार कर पहरेदार की शर्त को स्वीकार कर लिया। और पहरेदार ने भी उसे अन्दर जाने की अनुमति दे दी। राजसभा में पहुँचकर गायक ने इतना अच्छा गाना सुनाया कि राजा तो मन्त्रमुग्ध हो गए। और उन्होंने कोषाधिकारी को आदेश दिया– गायक को सोने की सौ मुद्राएं ईनाम में दे दी जाएं।

यह सुनकर गायक हाथ जोड़कर बोला– हे प्रजापालक! मुझे स्वर्ण–मुद्राएँ नहीं चाहिए। अगर आप वास्तव में ही मुझसे प्रसन्न हैं तो आप मुझे सौ कोड़ों की पिटाई ईनाम में दिलवा दें।

यह सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने गायक से कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो? तुम्हे अगर ईनाम में स्वर्ण–मुद्राएँ अच्छी नहीं लग रही हैं तो तुम कोई और बहुमूल्य वस्तु ले सकते हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। और राजा ने उसे यहाँ तक कह दिया कि तुम जो चाहो वो माँग सकते हो। लेकिन, गायक अपनी बात से टस से मस नहीं हुआ। और अन्त में हारकर राजा को न चाहते हुए भी आदेश देना ही पड़ा कि गायक को सौ कोड़े लगाएँ जाए।

अंगरक्षक ने कोड़े लगाने शुरू कर दिए और गायक ने उनको गिनना शुरू कर दिया– एक......दो........दस.......बीस........तीस.......... चालीस..........पचास और जैसे ही पचास हुए वह बोला– रुकिए, रुकिए! इस ईनाम में मेरा एक साझीदार (पार्टनर) और भी है। उसने मुझसे वादा लिया है कि जो भी ईनाम मिले उसमें आधा मेरा होगा। अतः बाकी के पचास कोड़े उसे दे दिए जाएं।

यह सुनकर राजा बोला- आपका साझीदार कौंन है? उसे बुलाइए। गायक बोला- वह कोई और नहीं है। बल्कि, आपका यह पहरेदार ही है। और गायक ने शुरू से अन्त तक सारी बात राजा को बता दी।

यह सुनकर राजा को सारा माजरा समझ में आ गया। और तुरन्त आदेश दिया कि इसे पचास नहीं पाँच सौ कोड़े लगाए जाए, तत्काल प्रभाव से इसे नौकरी से हटा दिया जाए और इसे कैद में डाल दिया जाए। जिससे कि दुबारा कोई ऐसा कुकृत्य करने का साहस न करे।

फिर राजा ने गायक को सौ नहीं अपितु पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ देकर खुशी-खुशी विदा किया। जानते हो राजा ने ऐसा क्यों किया, क्योंकि गायक ने अपनी समझदारी से राज्यव्यवस्था में सुधार कर दिया और दोषी को भी पकड़वा दिया। क्योंकि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

२२. निराश नहीं होना चाहिए

बहुत समय पहले की बात है। एक राजा का दूसरे राजा के साथ घमासान युद्ध हो रहा था। देखते ही देखते उस राजा को तथा उसकी सेना को शत्रु सेना ने पराजित कर दिया। इससे इस राजा की सारी धन सम्पत्ति नष्ट हो गई तथा सभी संगी-साथी बिछुड़ गए। कुछ बचा था तो बस अब उसके प्राण बचे थे, इसीलिए शत्रु निरन्तर उसकी तलाश में लगे हुए थे।

वह राजा अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहा था। उसके मन मे बार-बार यही चल रहा था कि अब वह नहीं बचेगा। भागते-भागते वह एक छोटी-सी गुफा में घुस गया। गुफा में घुसने के बाद उसने सोचा शायद अब मैं बच जाऊँ, लेकिन उसका मन बार-बार कह रहा था कि कभी भी शत्रु की तलवार का प्रहार हो सकता है और अब तो कहीं भागा भी नहीं जा सकता। अतः वह बहुत निराश-हताश हो रहा था। लेकिन उसी क्षण उसने देखा- एक मकड़ी गुफा के दरवाजे

पर जाला बनाने में तल्लीन है। लेकिन, वह बारम्बार कोशिश करने के उपरान्त भी सफल नहीं हो पा रही थी।

राजा मन ही मन सोचने लगा- यह बेचारी व्यर्थ ही प्रयत्न कर रही है। बिना आधार के भला जाला कैसे बन सकता है? किन्तु कुछ ही क्षणों के उपरान्त राजा ने आश्चर्यचकित होते हुए देखा कि- मकड़ी सफल हो गई है। मकड़ी का एक छोटा-सा तन्तु (धागा) गुफा के मुंह पर अटक ही गया है। और बस फिर क्या था? देखते ही देखते पल भर में ही मकड़ी ने गुफा के पूरे मुंह पर जाला बुन दिया।

उसी समय शत्रु राजा के सैनिक वहाँ आ पहुँचे। लेकिन गुफा के मुंह पर जाला देखकर उन्होंने मन ही मन अनुमान लगा लिया कि यहाँ कोई नहीं हो सकता। और वे लौट गए। सिर पर मँडरा रही मौत तो वापिस चली गयी लेकिन राजा के मन में एक अत्यन्त गम्भीर विचार ने जन्म ले लिया। वह सोचने लगा- यह छोटी-सी मकड़ी बार-बार गिरकर, असफल होकर भी निराश-हताश व परास्त नहीं हुई और मैं मनुष्य होकर भी इतना निराश-हताश हो गया हूँ। अगर मैं भी इस मकड़ी की तरह और उत्साह धारण कर लूँ तो अवश्य ही एक दिन शत्रु को पराजित करके पुनः अपने राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। और उसने उसी समय दृढ़ संकल्प कर लिया कि एक दिन वह अवश्य ही अपने उद्देश्य में सफल होकर रहेगा। इस मकड़ी ने मेरे संकल्प को मजबूत कर दिया है। ऐसा सोचते हुए वह गुफा से बाहर निकल गया। और अपने अन्दर एक नई इच्छाशक्ति, उत्साह और संकल्प का अनुभव करने लगा। और इसी दृढ़संकल्प के साथ उसने पुनः अपने सभी साथियों को एकत्रित किया और अन्त में शत्रु पर विजय प्राप्त कर पुनः अपने राज्य की स्थापना की।

२३. अपेक्षा समझना जरूरी

एक आश्रम में गुरु जी अपने शिष्यों को विद्या का अध्ययन कराया करते थे। एक दिन उन्होंन शिष्यों को समझाया कि सभी जीवों

में भगवान् का वास होता है और भगवान् हम सबमें विराजमान् है। अतः हमें सभी को नमस्कार करना चाहिए।

एक दिन गुरु की आज्ञानुसार एक शिष्य यज्ञ के लिए समिधा लेने जंगल में गया। तभी वहाँ पर अचानक बहुत जोर से शोर मचा- यहाँ से भागों, एक हाथी पागल हो गया है। वह लोगों को मार रहा है। यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग भाग गए। लेकिन वह शिष्य नहीं भागा। उसे अपने गुरु जी के कथन पर विश्वास था कि हाथी भी भगवान् है, अतः भागने का क्या काम? वह वहीं खड़ा रहा। और जैसे ही हाथी नजदीक आया उसने उसे प्रणाम किया।

यह सब देखकर महावत जोर से चिल्लाया- भागो-भागो! लेकिन, वह टस से मस नहीं हुआ। और जैसे ही हाथी उसके समीप पहुँचा उसने उसे अपनी सूँड में लपेटा और पास की झाड़ी में फेंक दिया। इतना होते ही शिष्य मूर्च्छित होकर गिर गया।

जैसे-तैसे गुरु जी के पास यह समाचार पहुँचा। गुरु जी अपने अन्य शिष्यों के साथ घटना स्थल पर पहुँचे और उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आए। गुरु जी ने उसका यथासम्भव उपचार किया। कुछ समय पश्चात् ही उसे होश आ गया तो गुरु जी ने उससे पूछा- जब इतना शोर मच रहा था कि पागल हाथी आ रहा है, सब लोग अपनी जान बचाकर भाग रहे थे तो तुम क्यों नहीं भागे? यह सुनकर शिष्य बोला- गुरु जी आपने ही तो कहा था कि सभी जीवों में भगवान् का वास होता है। इसीलिए मैंने सोचा कि हाथी के रूप में भगवान् ही हैं। अतः मैं वहाँ से नहीं भागा! यह सुनकर गुरु जी बोले- पुत्र! यह ठीक है कि हाथी रूपी भगवान् आ रहे थे, लेकिन यह भी तो ठीक था कि महावत रूपी भगवान् ने तो तुम्हें वहाँ से भाग जाने को कहा था। जब सभी भगवान् हैं तो महावत की बात पर भी तो विश्वास किया जाना चाहिए था। अगर तुम उसकी बात मान लेते तो आज तुम्हारी यह हालत नहीं होती। इस संसार में जल, वायु, वनस्पति आदि सभी देवता होते हैं, लेकिन सभी की अपने-अपने स्थान पर उपयोगिता होती है। कोई जल देवता पर चढाया

है तो किसी जल से लोग नहाते-धोते हैं। अतः हमें द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव को ध्यान में रखकर सभी कार्य करने चाहिए।

२४. सच्ची विद्वत्ता

बहुत समय पहले की बात है। भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध राजा हुए जिनका नाम था राजा भोज। ऐसा कहा जाता है कि- उनके राज्य में प्रत्येक व्यक्ति पढ़ा लिखा एवं विद्वान् था। और वे स्वयं भी विद्वान् थे। विद्वान् होने के साथ-साथ उनमें एक महान् गुण था। और वह गुण था विद्वानों का सम्मान करना। फिर चाहे यह गुण एक सामान्य से दिखने वाले किसी मजदूर में ही क्यों न हो? वे उनका भी बहुत सम्मान करते थे।

एक बार उन्होंने अपने राज्य में विद्वानों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन किया। जिसमें उन्होंने सभी विद्वानों को आमन्त्रित किया। जब सभी विद्वान् एकत्रित हो गए तो उन्होंने स्वयं सभा का संचालन करते हुए उपस्थित सभी विद्वानों से निवेदन किया कि- आप सभी से मेरी एक विनम्र प्रार्थना है कि- आप आज इस सभा में किसी ऐसी एक घटना का उल्लेख करें, जिससे आप स्वयं प्रेरित और हर्षित हुए हों। इतना सुनना था कि सभी विद्वान् शुरु हो गए और बारी-बारी सब सुनाने लगे अपनी-अपनी आपबीती। किसी ने अपने शास्त्रार्थ के किस्से सुनाए कि कैसे मैने अमुक विद्वान् को शास्त्रार्थ में पराजित किया। किसी ने अपनी बहादुरी के किस्से सुनाए कि कैसे मैने फला पहलवान को पराजित किया। किसी ने अपने ज्ञान का बखान किया। इसी प्रकार सभी ने अपनी-अपनी घटना सुनाई।

अन्त में जब सभा समाप्ति की ओर थी तो एक बिल्कुल दुबला-पतला, दीन-हीन सा दिखाई देने वाला व्यक्ति अपने आसन से उठा और उसने निवेदन किया- हे भूमिपति! मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं आपकी इस महान् विद्वत् सभा में आने का अधिकारी ही नहीं हूँ,

लेकिन क्या करूँ? पत्नी के आग्रह और जिद ने आने को विवश कर दिया इसलिए मैं चला आया। यह सुनकर राजा बोला– आप बेझिझक होकर बोलिए हमारे राज्य में सभी समान हैं, और सभी को अपनी बात कहने का समान हक है। अतः संकोच न करें।

यह सुनकर वह व्यक्ति बोला– राजन्! आज प्रात:काल जब मैं यात्रा के लिए निकल रहा था तो मेरी पत्नी ने मुझे पोटली में बाँधकर चार रोटियाँ दे दीं और कहने लगी मार्ग में जब भी भूख लगे खा लेना। और वो पोटली लेकर मैं घर से निकल पड़ा आधा मार्ग बीत जाने के बाद मुझे जोरों की भूख लगी। और मैं एक वट वृक्ष की छाया में बैठकर पोटली खोलने लगा तभी एक कुतिया और उसके दो बच्चे मेरे पास आकर बैठ गए। और मेरी तरफ टुकर-टुकर देखने लगे। इससे स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि वे सब भूखे हैं।

यह सब देखकर मुझे उन पर दया आ गई और मैंने एक रोटी के तीन टुकड़े किए और उनके सामने डाल दिये। वे उन्हें तुरंत खा गए। और खाने के बाद वे फिर दुम हिलाते हुए मेरी ओर देखने लगे। शायद कह रहें हो कि हमें अब भी भूख लगी है, हमें और रोटी चाहिए। यह सब देखकर मैने बाकी भी तीन रोटियों के टुकड़े किए और उनके आगे डाल दिए और उन्होंने खा लिए।

हे राजन्! वर्तमान में ही घटित इस घटना से मैं ऐसा प्रेरित और हर्षित हुआ कि मेरे पास ऐसे शब्द नहीं है कि मैं उसको प्रकट कर सकूँ। मुझे जो सुखद अनुभुति हुई वो मैं कैसे बता सकता हूँ। और इस घटना को मैं आजीवन याद रखूगाँ।

राजा भोज इस घटना को सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो गए और कहने लगे– यही है असली विद्वता। महर्षि व्यास ने कहा भी है कि–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्॥

२५. जात-पाँत छिपती नहीं

बात उस समय की है, जब हमारे देश में मुगलों का शासन था। एक बार अकबर बादशाह के दरबार में पाँच साधु आए। सेनापति ने उनसे पूछा- आपकी जाति कौन-सी है। इतना सुनते ही उनमें से एक बोला- जाति से क्या लेना-देना ? आप कोई ज्ञान की बात पूछिए- साधु की जाति तो उसका ज्ञान ही होती है। कहा भी जाता है कि-

जाति न पूछिए साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

अन्य चारों ने भी उसके कथन का समर्थन किया, लेकिन यह सब सुनकर बादशाह के मन में साधुओं की जाति जानने की इच्छा और भी ज्यादा प्रबल हो गई। तब उन्होंने बीरबल को एकान्त में बुलाया और कहा कि- आप इन साधुओं की जाति का पता लगाइए।

बीरबल बड़ा ही बुद्धिमान् व्यक्ति था। उसने मन ही मन साधुओं की जाति जानने की योजना तुरन्त तैयार कर ली।

अगले दिन बीरबल ने सभी साधुओं को दरबार में बुलाया और उनसे एक प्रश्न पूछा- 'कि आप सभी भगवान् को मानते हैं?'

इतना सुनते ही साधु बोले- अरे वाह! यह भी कोई पूछने की बात है? हम सब आस्तिक हैं और भगवान् को न केवल मानते हैं, बल्कि तीनों समय उनकी पूजा-अर्चना भी करते हैं।

यह सुनकर बीरबल बोला- 'फिर तो आप भजन भी जानते होंगे। अगर जानते हैं तो आप सभी बारी-बारी से भगवान् का भजन सुनाइए।

यह सुनते ही वे अविलम्ब शुरू हो गए।

पहला बोला-

राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी।
जब लगे भूख, घोल- घाल पी॥

दूसरा बोला-

राम नाम शमशेर पकड़ ले, कृष्ण कटारी बाँट दिया।
दया धर्म को ढाल बना ले, यम का द्वार जीत लिया॥

तीसरा बोला-

साहिब मेरा बानिया, सहज करे व्यौपार।
बिन डंडी बिन पालड़े, तोले सब संसार॥

चौथा बोला-

राम झरोखें बैठके, सबका मजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी, ताको तैसी देय॥

पाँचवा बोला-

जात-पाँत पूछै नहिं कोय।
हरि को भजै सो हरि का होय॥

साधुओं द्वारा कहे गए दोहों को सुनकर बीरबल बोला- महाराज पहला साधु ब्राह्मण है, दूसरा क्षत्रिय, तीसरा वैश्य, चौथा शूद्र और पाँचवाँ वर्णसंकर है।

बादशाह ने साधुओं से पूछा- क्या बीरबल महाशय सही फरमा रहे हैं। तो उन सब ने अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन बादशाह को बीरबल पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इन्होंने यह सब कैसे जान लिया। और आखिर में बीरबल से यह पूछ ही लिया कि आपने कैसे जाना?

यह सुनकर बीरबल बोला- महाराज! इन्होंने जो दोहे कहे हैं, उनमें इनके कर्मों की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। ब्राह्मण खाने के

लालची होते हैं, अतः ब्राह्मण साधु के दोहे में 'लड्डू-घी' का प्रयोग दिखाई दिया। इसी प्रकार क्षत्रिय साधु के दोहे में 'शमशेर' 'कटार' और 'ढाल' का तथा वैश्य साधु के दोहे में 'डंडी' और 'पलड़े' का उल्लेख था। यह बात शुद्र साधु की है, उनके दोहे में 'चाकरी' और 'मुजरा' शब्द आए हैं। रही बात पाँचवें साधु की, तो वह वर्णसंकर होने के कारण अपनी जाति छिपाना चाहता है, इसीलिए 'जाति पाँति पूछे नहीं कोय' की रट अपने दोहे में लगा रहा है। बीरबल की बुद्धिमता से बादशाह बहुत ही प्रभावित व खुश हो गये। इस सन्दर्भ में कहा भी जाता है कि-

कुलप्रसूतस्य न पाणिपद्म न जारजातस्य शिरोविषाणम्।
यदा-यदा मुञ्चति वाक्यबाणं तदा-तदा जातिकुलप्रमाणम्॥

२६. दया का महत्त्व

किसी गाँव में दो मित्र रहते थे। उनके नाम थे- दयालु और कृपालु। संयोगवश कहो या भाग्यवश वे दानों जो भी काम करते, वह काम बिगड़ जाता। उन्होंने नौकरी की तो वह छूट गई, मकान बनाने लगे तो दीवारें ढह गई, बच्चों को पढ़ने स्कूल भेजा तो वे बीमार पड़ गए। इस तरह वे जो भी काम करते उसमें उन्हे निराशा और असफलता ही हाथ लगती।

एक दिन वे दोनों दुःखी होकर एक पण्डित जी के पास गए और बोले पण्डित जी, हमारा भाग्य बहुत खराब है, हम जो काम करते हैं, वह बिगड़ जाता है और उन्होंने सारी आपबीती पण्डित जी को सुनाई और अन्त में बोले- आप कृपा करके हमें कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे हमारा भाग्य सुधर जाए और हमें सफलता प्राप्त हो।

यह सुनकर पण्डित जी बोले- तुम दोनों तीर्थयात्रा करो। इससे तुम्हारा भाग्य भी सुधरेगा और सफलता भी मिलेगी।

दोनो मित्र अपने-अपने घर गए और आवश्यक सामान (कपड़े, रूपये पैसे दवाई आदि) लेकर चल दिए तीर्थयात्रा पर।

जब वे जा रहे थे रास्ते में बीहड़ जंगल आया। वहाँ पर उन्होंने देखा कि एक कुत्ता घायल अवस्था में पड़ा हुआ दर्द से कराह रहा है। शायद उसे किसी खुंखार जंगली जानवर ने घायल किया था। यह देखकर दयालु को उस पर दया आ गयी। वह अपने साथ थोड़ा दूध लाया था। सबसे पहले तो उसने वह दूध उसे पिला दिया। उसके पास कुछ मरहमादि दवाईयाँ भी थी वे उसने कुत्ते का घाव साफ करके उस पर लगा दी। और पहनी हुई धोती का एक हिस्सा फाड़कर उसके घाव पर पट्टी भी बाँध दी। अब वह कुत्ता बड़ी ही राहत महसुस कर रहा था।

कृपालु खड़ा-खड़ा सब माजरा देखता रहा और अन्त में दयालु से बोला- देख भाई दयालु, अब तु मुझे स्पर्श मत करना, क्योंकि अभी-अभी तूने जिस प्राणी का उपचार किया है न यह बहुत ही अपवित्र होता है। इसे हाथ लगाने से तू भी अपवित्र हो गया है। और हाँ एक बात और सुन ले अब तेरी तीर्थयात्रा भी सफल नहीं होगी। देवता भी तेरे से नाराज हो जाएंगे, वे भी तुझे फल नहीं देंगे।

यह सुनकर दयालु थोड़ा मुस्कराया और बोला- अच्छा ठीक है, चलो आगे चलते हैं। अभी वे कुछ ही दूर चले थे कि उन्होंने देखा एक वृद्ध भिखारी भूख के कारण तड़प रहा है, न जाने कब उसके प्राण निकल जाए। यह देखकर दयालु द्रवित हो गया उससे उसका दुःख देखा न गया। और थैले में से अपने लिए लाई हुई रोटी निकालकर उसे देने लगा।

यह सब देखकर कृपालु झुंझलाकर बोला- अरे ओ दया के पुजारी कहीं तेरा दिमाग तो नहीं सरक गया है? सारी रोटी इस भिखारी को दे देगा तो रास्ते में तू क्या खाएगा? उसको पड़ा रहने दे, और जिस काम के लिए तेरी घरवाली ने इतने सवेरे उठकर प्यार से तेरे लिए ये रोटियाँ बनाई थी उस काम को पूरा कर।

लेकिन दयालु कहाँ सुनने वाला था। उसका तो स्वभाव ही था प्राणियों पर दया करना। और रोटी ही नहीं उसके थैले में पत्नी ने कुछ फल भी रखे थे, वे सब भी उसने उस भिखारी को बड़े ही प्रेम से खिला

दिए और वह मन ही मन स्वयं भी तृप्त हो गया। जैसे वे सब उसने ही खाएं हों।

यह देखकर दयालु बोला- अरे ओ मूर्ख! ये फल तो तुम्हारी पत्नी ने देवता को चढ़ाने के लिए दिए थे। देवता के चढ़ावे को भी तूने इस साँड को खिला दिया। अब तो अवश्य ही देवता तुझ पर नाराज होंगे तुझे बहुत भारी पाप लगेगा। अब तेरी खैर नहीं।

यह सुनकर दयालु फिर मन्द-मन्द मुस्कराया और बोला- चलो आगे चलते हैं और जो होगा देखा जाएगा तुम जरा-भी चिन्ता न करो। लेकिन, अभी वे कुछ ही दूर चले होंगे कि उन्हें एक आवाज सुनाई दी- हाय प्यास! पानी! हाय गला सूख गया! कोई बचाओ?

दयालु ने देखा कि सामने ही एक तीर्थयात्री गर्मी और प्यास से तड़प रहा है। वह भागकर यात्री के पास पहुँचा और तुरन्त थैले में से अपनी पानी की बोतल निकालकर सारा पानी यात्री को पिला दिया। यात्री के प्राण बच गए और वह बार-बार उसे आशीर्वाद देने लगा।

यह देखकर कृपालु बोला- अरे ओ महामूर्ख! अभी आधी दूरी भी तय नहीं हुई है। और तूने अपनी सारी आवश्यक वस्तुएं खत्म कर दी। अब तू यात्रा कैसे करेगा? इसलिए मैं तो तेरे को अब यही सलाह दूँगा कि तू अपने घर वापस चला जा हो गई तेरी तो यात्रा पूरी। उसका ऐसा कहने का एक कारण यह भी था कि कहीं ये अब मेरी वस्तुओं में से न कुछ माँग ले।

दयालु ने भी मन हीं मन सोचा- शायद यह ठीक ही कह रहा है और वह चल दिया वापस अपने घर की ओर।

कृपालु चल दिया अपनी तीर्थयात्रा पर क्योंकि उसे तो देवता से कृपा प्राप्त करनी थी। उसके नाम की सार्थकता भी तो यही थी।

उधर जब दयालु अपने घर के नजदीक पहुँचा ही था कि उसके बच्चे दौड़ते हुए उससे मिलने आए। इससे दयालु को समझने में जरा भी

देर नहीं लगी कि अब उसके बच्चे बिलकुल स्वस्थ हो चुके हैं। घर पहुँचकर उसने देखा कि जो दीवारें बार-बार गिर जाती थीं, वे भी अपने स्थान पर बिल्कुल ठीक-ठाक खड़ी हैं। पत्नी ने उसका स्वागत करते हुए एक पत्र उसके हाथ में थमा दिया। उस पत्र में लिखा था कि तुम्हें नौकरी पर दुबारा रखा जाता है। इस प्रकार उसके सारे काम एक के बाद एक होते चले गए और वह हँसी-खुशी अपने परिवार के साथ रहने लगा।

उधर कृपालु ने अपनी तीर्थयात्रा पूरी की। उसने खूब स्नान किया, पूजा-अर्चना की, देवताओं को खूब फल-फूल और दक्षिणा दी। और अन्त में देवताओं का प्रसाद लेकर वह घर लौट आया।

कृपालु ने घर पहुँचते ही देखा कि उसके मित्र दयालु के तो सब काम ठीक हो गए थे। लेकिन, उसके सभी काम पहले ही की तरह बिगड़े पड़े थे। वह तुरन्त दौड़ा गया पण्डित जी के पास और बोला- पण्डित जी! ये भगवान् का कैसा न्याय है। मैंने आपके कथनानुसार तीर्थयात्रा पूरी की, पवित्र जल में स्नान किया, देवताओं पर भरपूर मात्रा में फल-फूल चढ़ाए और आशीर्वाद स्वरूप प्रसाद भी प्राप्त किया। इतना सब करने के पश्चात् भी मेरा भाग्य तो रत्ती भर भी नहीं सुधरा। जबकि मेरे मित्र दयालु ने तो तीर्थयात्रा भी पूरी नहीं की। वह तो आधे रास्ते से ही वापस भाग आया। और यहाँ तक कि उसने तो देवता के नाम की भेंट को कुत्ते और भिखारी को देकर महापाप तक किया। लेकिन, फिर भी उसके सब काम बन गए। उसका भाग्य सुधर गया। वह सफल हो गया। फिर मेरे साथ भला यह अन्याय क्यों हुआ?

यह सुनकर पण्डित जी मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले- दीन-दुखियों पर दया ही सच्ची तीर्थयात्रा है। वृद्ध, बच्चे, पशु-पक्षी आदि ही सच्चे देवता होते हैं। दयालु ने उन पर दया की है, इसलिए उसे तीर्थयात्रा का पूरा फल मिल गया है। तुमने जीते-जागते देवताओं को छोड़कर निर्जीव मूर्तियों की पूजा-अर्चना की है और वह भी स्वार्थवश। जबकि दयालु ने ये सब जो भी किया निस्वार्थभाव एवं दयावश किया है। इसलिए तुम्हारा

भाग्य नहीं सुधरा और तुम सफल नहीं हुए। इसमें दूसरे किसी का कोई दोष नहीं है, दोष तुम्हारा ही है।

यह सुनकर कृपालु बोला– पण्डित जी! तो क्या तीर्थयात्रा करना बेकार है। पण्डित जी बोले– नहीं भाई, ऐसा बिल्कुल नहीं है। तीर्थयात्रा का तो हमारे धर्मशास्त्रों में बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। लेकिन, तुमने तीर्थयात्रा का मतलब गलत समझा है। असल में हम लोगों में यह अन्धविश्वास एवं गलत धारणा है कि– हरिद्वार आदि की पैदल यात्रा करने से, कावड़ का जल ला कर शिव भगवान् पर चढ़ाने से, गंगा में स्नान करने से तथा और भी इस प्रकार के अनेक क्रिया–कलाप करने से ही हमें पुण्य की प्राप्ति हो जाएगी और हमारे पाप कर्म धुल जाएंगे। जबकि तीर्थ का असली अर्थ तो है– अच्छे और भलाई के काम करना।

अगर कोई व्यक्ति भले ही तीर्थ के जल में स्नाान न करें, अपितु अच्छे एवं भलाई के काम करे तो उसको तीर्थयात्रा का पुण्य अवश्य मिलेगा। इसके विपरीत यदि कोई सालो–साल तीर्थ के जल में नहाता रहे, लेकिन भलाई का कोई काम न करे तो उसकी तीर्थयात्रा बिल्कुल बेकार है। और इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति एवं किसी भी कार्य में सफलता हमें पुण्य से ही प्राप्त होती है। इसीलिए कहा भी जाता है कि–

'भ्रात! प्रभातसमये त्वरितः किमर्थम्,
अर्थाय चेत् स च सुखाय ततः सः सार्थः।
यद्येवमाशु कुरु पुण्यमतोऽर्थसिद्धिः,
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः॥'

अर्थात् हे भाई! प्रात:काल में शीघ्रगमन किस लिए करते हो? यदि तुम धन कमाने के लिए जाते हो, और वह धन सुख के लिए है अर्थात् इष्ट की प्राप्ति के लिए है तो वह धन कमाना तुम्हारे लिए सार्थक है। और यदि ऐसे ही धन से इष्ट की प्राप्ति होती है तो शीघ्रता से पुण्य कार्य करो। ऐसे पुण्य से ही प्रयोजन की सिद्धि होती है। क्योंकि पुण्य

के बिना इच्छित वस्तुएं प्राप्त नहीं होती हैं।

धर्मादयो हि हितहेतुतया प्रसिद्धाः,
धर्माद्धनं धनत इहितवस्तुसिद्धिः।
बुद्ध्वेति मुग्ध! हितकारि विधेहि पुण्यं,
पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समीहितार्थाः।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये वास्तव में स्पष्टतः जीव के हित के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। इस स्वर्ग और मोक्ष के कारणभूत धर्म से इन्द्रियसुख की प्राप्ति का कारणभूत धन प्राप्त होता है, धन से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है- ऐसा समझकर हे जीव! तू पुण्य को अर्जित कर। भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों को देने वाले पुण्य के बिना भली भाँति चाहे गये पदार्थ प्राप्त नहीं होते।

२७. व्यर्थ की जिज्ञासा

कई बार मनुष्य के मन में व्यर्थ की जिज्ञासाएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिनको शान्त करने के लिए वह अपना अमूल्य समय नष्ट कर देता है।

बौद्धधर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध के पास एक दिन उनका शिष्य मलुक्यपुत्र आकर बोला- 'भगवान्! इतने दिन हो गए मुझे पूछते हुए लेकिन, आपने आज तक यह कभी नहीं बताया कि मृत्यु के उपरान्त पूर्ण बुद्ध रहते हैं या नहीं?'

यह सुनकर महात्मा बुद्ध बोले- 'हे! मलुक्यपुत्र! तुम मुझे यह बतलाओ कि भिक्षु होते समय क्या मैंने तुमे यह कहा था कि तुम मेरे ही शिष्य बनना?'

वह बोला- 'नहीं तो भगवान्!'

तब महात्मा बुद्ध एक दृष्टान्त देते हुए बोले- 'यदि किसी व्यक्ति का अचानक एक्सीडेंट हो जाए उसे चोट लग जाए, खून बहने

लगे और तब वह यह कहे कि जब तक उसे यह मालुम न हो जाए कि एक्सीडेंट किसने किया था। उसका नाम क्या था? उसकी जाति क्या थी? तब तक न तो मैं अस्पताल जाऊँगा और न ही उपचार कराऊँगा। अब तुम्हीं बताओ मलुक्यपुत्र ऐसी स्थिति में उसका क्या होगा?'

वह बोला– अवश्य ही या तो उसकी बीमारी बढ़ जाएगी और हो सकता है उसकी मृत्यु भी हो जाए।

यह सुनकर महात्मा बुद्ध बोले, 'तुम ठीक कहते हो, लेकिन इसके लिए जिम्मेदार एक्सीडेंट करने वाले से कहीं अधिक वह स्वयं होगा, क्योंकि उसने व्यर्थ की हठ की। ठीक इसी प्रकार हे मलुक्यपुत्र! तुम भी व्यर्थ की बातों के लिए अपनी जिज्ञासा क्यों प्रकट करते हो? जो कुछ मैंने प्रकट किया है, उसे ही गहराई से जानने और वैसा आचरण करने का प्रयास करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। जिसे मैंने अब तक प्रकट नहीं किया, उसे अप्रकट ही रहने दो, क्योंकि उसे जानने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।'

मलुक्यपुत्र महात्मा बुद्ध का इशारा समझ गया और अपने काम में लग गया।

२८. तृष्णा का अन्त बुरा

बहुत समय पहले की बात है। उस समय पढ़ने–पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही किया करते थे। क्योंकि पहले चार वर्ण थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। ब्राह्मणों का कार्य था विद्या का अध्ययन–अध्यापन। क्षत्रियों का कार्य होता था देश की रक्षा करना, वैश्यों का व्यापार तथा शद्रों का सेवा कार्य करना।

एक बार एक राजा ने अपने राजकुमार और राजकुमारी की शिक्षा के लिए एक ब्राह्मण को नियुक्त किया। ब्राह्मण विद्याध्ययन करने–कराने में खूब पारंगत तो था ही साथ में प्रकाण्ड विद्वान् भी था, लेकिन नित्यप्रति राजसी ठाठ–बाठ और वैभव को देखकर उसके मन में

कई विकारों के साथ-साथ कामवासना जागृत होने लगी। एक दिन जब राजकुमारी सज-सँवर कर विद्याध्ययन के लिए उसके सामने आई तो वह उस पर मुग्ध हो गए और उसने उसी समय जाकर राजा से कहा, 'महाराज! मैंने आपके पुत्र तथा पुत्री को अनमोल ज्ञानगंगा दी है, इसके फलस्वरूप मेरी इच्छा है कि आप मेरा विवाह राजकुमारी के साथ कर दें।'

यह अशोभनीय और विचित्र डिमाण्ड (माँग) सुनकर राजा को बहुत गुस्सा आया लेकिन फिर भी, वे स्वयं को नियन्त्रित करते हुए बोले- 'हे ब्राह्मण देवता! सर्वप्रथम तो आप जैसे ज्ञानी पुरुष के मुख से ऐसी बात शोभा नहीं देती। दूसरी बात मैंने अपनी पुत्री के विवाह के लिए राजा उग्रसेन को वचन दे दिया है, अतः मैं आपकी इच्छा पूरी करने में असमर्थ हूँ।'

इतना सुनते ही ब्राह्मण क्रोधित होते हुए बोला- 'आप अगर मेरी इच्छापूर्ति नहीं करेंगे तो मैं आपको श्राप (शाप) दे दूँगा।' राजा थोड़ा-सा भी विचलित नहीं हुआ और बोला- जिस ब्राह्मण में धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित का विवेक न हो भला उसके शाप से किसी का अनिष्ट कैसे हो सकता है?'

ब्राह्मण गुस्से से आग-बबुला होकर राजमहल से निकल गया और गुरु गोरखनाथ के पास जाकर उनकी तन-मन-धन से सेवा करने लगा। एक दिन उसकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरु जी ने उसकी इच्छा पूछी तो उसने सारी बात बताई।

यह सुनकर गुरु गोरखनाथ बोले- देखो भाई, ब्राह्मणों को इन सब भोग-विलासों से क्या लेना-देना? ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है, ब्रह्म की उपासना करने के लिए। अतः तुम्हें इस आमोद-प्रमोद से दूर ही रहना चाहिए और ये इन्द्रिय सुख तो क्षणिक होते हैं, इनसे कभी किसी की तृप्ति नहीं होती। तुम तो शाश्वत सुख प्राप्त करो जिससे सदा-सदा के लिए तुम्हारा कल्याण हो। अतः मैं तो तुम्हें यही शिक्षा दूँगा

कि तुम इस पचड़े में मत पड़ो। और हाँ इन तृष्णाओं का कभी अन्त नहीं होता है। और होता है तो बहुत बुरा होता है।

लेकिन, कहते हैं न कि **'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'** वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। और गुरु जी से बोला चाहे कुछ भी हो मुझे तो राजकुमारी से विवाह करना है।

यह सुनकर गुरु जी बोले- तो देख भाई ब्राह्मण देवता, मैं इस निन्दनीय कार्य में तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता। अतः तू कोई और दरवाजा देख ले।

यह सुनकर ब्राह्मण गुरु जी को अनाप-सनाप बकते हुए वहाँ से चला गया। और चलते-चलते एक तान्त्रिक गुरु के पास पहुँच गया। और उनसे कहने लगा कि- 'अगर आप मुझे ऐसी तान्त्रिक विद्या सिखा दें या उसका उपयोग करके आप मेरी अभिलाषा की पूर्ति करवा दें तो मैं आपको राजगुरु बना दूँगा।'

'लोभ पाप का बाप' होता है। यह सर्वविदित सत्य है और मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी, भला तान्त्रिक कैसे उससे बचता? अतः वह इस कुकृत्य को करने के लिए तैयार हो गया। और ब्राह्मण से बोला- 'तुम आँखें बन्द करके बैठ जाओ।' और जैसे ही ब्राह्मण ने आँखें बन्द की तो तान्त्रिक ने कुछ मन्त्र-तन्त्र पढ़े और उसके मुख पर जल के छीटें मारे।

ब्राह्मण ने जब आँखें खोली, तो उसने स्वयं को राजसी वस्त्रों, आभूषणों, हथियारों आदि से युक्त पाया। उसके पीछे हजारों सैनिक सशस्त्र खड़े थे। और उसने तो तुरन्त सैनिकों को राजा पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ और संयोगवश राजा हार गया और उसे बन्दी बना लिया गया। ब्राह्मण ने जबरदस्ती राजकुमारी से विवाह कर लिया और स्वयं को राजा घोषित कर राज्य करने लगा।

एक दिन उसके राजदरबार में एक बूढ़ा-सा आदमी आया और उसने राजा से अपना वचन पूरा करने की विनती की। राजा ने आश्चर्य से पूछा, 'वचन? कैसा वचन? किसका वचन? मैंने तो किसी को कोई वचन नहीं दिया।'

यह सुनकर वह बूढ़ा बोला- 'क्या तुम भूल गए कि तुमने अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए किसी को राजगुरु बनाने का वचन दिया था?' मैं वही व्यक्ति हूँ जिसको आपने वचन दिया था।

यह सुनकर राजा आग-बबूला होते हुए बोला- 'ओ बूढ़े! अगर तूने ये बेकार की बकवास बन्द नहीं की तो मैं तेरी जबान खींच लूँगा। आया राजगुरु बनने पहले अपनी शक्ल तो देख। यह सब सुन बूढ़ा तनिक भी विचलित नहीं हुआ और पुनः राजगुरु बनाने की विनती करने लगा। अब राजा को क्रोध आ गया और उसने सैनिकों को आदेश दे दिया कि- कोड़े मार-मार कर बूढ़े की खाल उधेड़ दो और खूँखार जंगली जानवरों के सामने डाल दो, ताकि वे इसे अपना ग्रास बना लें। और उसने बूढ़े को लात मारकर ढकेल दिया।

लेकिन यह क्या? जैसे ही उसने लात मारी कि उसका सारा शरीर झनझना उठा और आँखें बन्द हो गई। और जैसे ही उसने आँखें खोली तो स्वयं को ब्राह्मण के वेश में पाया और सामने उसे वह तान्त्रिक दिखाई दिया। अब उसको बात समझने में जरा भी देर न लगी और वह लगा तान्त्रिक के पैर पकड़कर क्षमा माँगने। अब देखिए दोनों ने ही अपनी तृष्णाओं, इच्छाओं की पूर्ति के लिए महान् पापकर्म का बन्ध किया लेकिन मिला क्या? जन्म-जन्मान्तरों में दुर्गति। इसीलिए कहा जाता है कि तृष्णाओं का अन्त बुरा ही होता है। और इन तृष्णाओं की कभी पूर्ति होती भी नहीं है। यथा- **कामैः सतृष्णस्य हि नास्ति तृप्तिर्यथेन्ध-नैर्वातसखस्य वह्नेः।**

अर्थात् जिसे विषयों की तृष्णा है उसे उस प्रकार तृप्ति नहीं होती जिस प्रकार हवा चलने पर अग्नि की ईन्धन से नहीं।

२९. जैसे को तैसा

व्यक्ति की स्वयं की जैसी सोच अथवा दृष्टि होती है, उसे सारी दुनिया वैसी ही दिखाई देने लगती है। संस्कृत में एक श्लोक आता है-

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृशः।
सहायतास्तादृशी सन्ति यादृशी भवितव्यता।।

अर्थात् आपकी बुद्धि उसी प्रकार की हो जाती है, जिस प्रकार का आप विचार करते हैं या काम करते हैं। और आपकी सहायता भी फिर उसी प्रकार की होने लगती है, जैसी आपकी होनहार होती है। उसी प्रकार की परिस्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं।

हमारे यहाँ एक कहावत कही जाती है कि 'शक्कर खोरे को शक्कर खोरा मिले।' अर्थात् अगर कोई व्यक्ति मीठा खाने वाला है और वह घर से यह विचार बना कर चले कि मुझे बाहर मीठा खाना है तो उसे अवश्य ही बाहर भी कोई मीठा खाने वाला मिल ही जाएगा। इसी प्रकार यह हर जगह घटित होता है। इसे अंग्रेजी में 'TIT FOR TAT' तथा हिन्दी में 'जैसे को तैसा' भी कहते हैं।

इसी सन्दर्भ में महाभारत काल का एक प्रसंग है। एक बार जब गुरु द्रोणाचार्य कौरवों और पाण्डवों को विद्याध्ययन करा रहे थे, तो उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न इन सबकी विचार-कुशलता और व्यवहार-कुशलता की परीक्षा ले ली जाए? उस समय इसी प्रकार की परीक्षा ली जाती थी। क्योंकि उस समय विद्यार्थी को आज की तरह पैसे कमाने की मशीन नहीं अपितु उसे व्यवहारकुशल बनाने पर अधिक जोर दिया जाता था। यही अन्तर है वर्तमान की शिक्षा और उस समय की विद्या में। कहा भी जाता है कि-

लोकव्यवहारज्ञो हि सर्वज्ञोऽन्यस्तु प्राज्ञोऽप्यवज्ञायक एव।

अर्थात् वास्तव में लोक-व्यवहार जानने वाला मनुष्य सर्वज्ञ के समान होता है और लोक-व्यवहार रहित विद्वान् लोक के द्वारा तिरस्कृत

समझा जाता है।

दूसरे दिन गुरु द्रोणाचार्य ने राजकुमार दुर्योधन को अपने पास बुलाकर कहा– 'वत्स! तुम सारे नगर में जाओ और एक अच्छा आदमी ढूँढकर लाओ।'

दुर्योधन ने कहा– 'जैसी आपकी आज्ञा! और वह अच्छे आदमी की खोज में निकल गया। और कई दिनों तक ढूँढता रहा, लेकिन उसे कोई भी अच्छा आदमी नहीं मिला। और अन्त में थक–हारकर गुरु द्रोणाचार्य के पास आकर बोला– 'गुरु जी, मैंने न केवल नगर बल्कि, आस–पास के सभी गाँवों को भी छान मारा लेकिन, मुझे कहीं भी अच्छा आदमी नजर नहीं आया।

इसके बाद गुरु द्रोणाचार्य ने राजकुमार युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और कहा– 'बेटा! इस पूरी पृथ्वी से कोई बुरा आदमी ढूँढकर लाओ।

यह सुनकर युधिष्ठिर बोला– 'गुरुदेव! मैं अवश्य प्रयत्न करुँगा।

युधिष्ठिर बुरे आदमी की खोज में निकल गया। घूमते–घूमते महीनों बीत गए। लेकिन, उसे कोई बुरा आदमी नजर नहीं आया। और अन्त में थक–हारकर वापस आ गया और गुरु जी से निवेदन करने लगा– 'हे गुरुश्रेष्ठ! मैंने हर जगह बुरे आदमी की खोज की लेकिन, मुझे कहीं भी बुरा आदमी नहीं मिला। अत: मैं खाली हाथ ही लौट आया हूँ।

यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी शिष्यों ने गुरु द्रोणाचार्य से पूछा– 'गुरुवर! ऐसा कैसे हो सकता है कि दुर्योधन को कोई अच्छा आदमी नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी नहीं मिला? यह तो बिलकुल विचित्र बात लगती है। सभी शिष्यों ने एक स्वर में कहा।

यह सुनकर गुरु द्रोणाचार्य बोले– 'इसमें किसी का दोष नहीं है। यह दृढ़ सत्य है कि– जो व्यक्ति स्वयं जैसा होता है, उसे सभी वैसे नजर आते हैं। इसीलिए दुर्योधन को कोई अच्छा आदमी नजर नहीं आया और

युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी नजर नहीं आया।

३०.मान कषाय

हमारे शास्त्रों में चार कषाय बतलाई गई हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ। ये चारों ही बड़ी खतरनाक होती हैं। इनके कारण ही हमारी शुद्ध स्वभावी आत्मा कलुषित हो जाती है। और विभिन्न प्रकार के कष्टों का अनुभव करती है। तथा सहजता से प्राप्त होने वाले सुख को भी प्राप्त नहीं होने देती। यहाँ हम मान कषाय का एक दृष्टान्त देखेंगे। जो कि, हीनाधिक मात्रा में हम सब में होती है।

प्राचीन समय की बात है। उस समय हमारे देश पर मुगलों का शासन था। गर्मी का मौसम था। भरी दोपहरी में एक नवयुवक जंगल के रास्ते से कहीं जा रहा था। अचानक उसे जोरों की प्यास लग गई। प्यास से व्याकुल होकर वह इधर-उधर देखने लगा। लेकिन, उसे कहीं पानी दिखाई नहीं दिया। कुछ और आगे चलने पर उसे एक कुआँ दिखाई दिया। वह तुरन्त कुएं की ओर भागा। वहाँ पहुँचकर उसने कुएं में झाँककर देखा। कुआँ पानी से लबालब भरा था। कुएं की मेड़ पर रस्सी से बँधी हुई बाल्टी भी रखी थी, लेकिन पानी निकालने वाला वहाँ कोई नहीं था। उसने सोचा, पानी निकालूँ और प्यास बुझाऊँ।

नवयुवक था किसी अमीर आदमी का पुत्र। तुरन्त उसकी मान कषाय जागृत हो गई और मन ही मन सोचने लगा, अरे! किसी ने देख लिया तो क्या होगा? सारी अमीरी धरी रह जाएगी। लोग कहेंगे देखो, अमीरजादा होकर खुद कुएं से पानी निकालकर पी रहा है। और उसने मन ही मन निर्णय कर लिया कि वह स्वयं पानी निकालकर नहीं पिएगा। ऐसा करता हूँ यही बैठ जाता हूँ। अवश्य यहाँ कोई न कोई आएगा। मैं उसी से पानी निकलवा कर पी लूँगा।

कुछ ही समय बाद वहाँ प्यास से आकुल-व्याकुल एक दूसरा नवयुवक आया। उसने भी देखा कुएं में पानी है, रस्सी है, बाल्टी है और

आदमी भी बैठा है। वह बोला– 'अरे भाई साहब! गर्मी के कारण बहुत प्यास लगी है, जरा पानी तो पिला दो।'

इनता सुनते ही वह बोला– 'प्यास तो मुझे भी लगी है। लेकिन, तुम्हें पता नहीं कि मैं अमीरजादा हूँ। मैं भला पानी कैसे निकाल सकता हूँ? अतः तुम ही पानी निकालो और मुझे भी पिलाओ।' यह सुनकर उसने कहा– 'क्या तुम्हें पता नहीं कि मैं नबाबजादा हूँ। फिर भला, मैं कैसे पानी निकालूँ।' और इतना कहकर वह भी वहीं बैठ गया। पहले एक था, अब दो हो गए।

कुछ ही समय के बाद वहाँ एक तीसरा नवयुवक आया। उसका भी गर्मी और प्यास से हाल बेहाल था। वह दूर से ही चिल्लाया– 'अरे! तुम दो–दो आदमी बैठे हो और मैं प्यास से मर रहा हूँ। कुआँ भी है, रस्सी भी है, बाल्टी भी है। अतः तुम मुझे तुरन्त पानी पिलाओं उससे तुम्हें महान् पुण्य की प्राप्ति होगी।'

यह सुनकर वे दोनों बोले– 'अरे ओ अंग्रेज! ज्यादा शोर मचाने की कोई जरूरत नहीं है। हम भी यहाँ कोई पिकनिक मनाने के लिए नहीं बैठे हैं। हमारा भी प्यास के कारण बुरा हाल है। मैं अमीरजादा हूँ, पानी नहीं निकाल सकता।'

दूसरा बोला– 'मैं नबाबजादा हूँ। अतः मैं भी पानी नहीं निकाल सकता। तुम एक काम करो पानी निकालो। खुद भी पीओ, हमें भी पिलाओं और जिस पुण्य की तुम बात कर रहे थे, उसे भी तुम ही प्राप्त करो।' दो–दो आदमियों की प्यास बुझाने का महान् पुण्य तुम्हें प्राप्त होगा।'

इतना सुनते ही तीसरा नवयुवक बोला– 'अरे ओ भाईसाहबो! शायद तुम्हें पता नहीं है कि मैं भी शहजादा हूँ। अतः मैं भी पानी नहीं निकाल सकता।' और अब वे तीन हो गए। तथा, वहीं बैठ गए किसी और की इन्तजार में।

थोड़ी ही देर बाद वहाँ एक चौथा आदमी आया। उसे भी प्यास लगी थी। उसने देखा तीन आदमी मुँह लटकाए हुए बैठे हैं। लेकिन उसे तो अपनी प्यास बुझानी थी। अतः रस्सी-बाल्टी उठाई और लगा पानी निकालने। यह देखकर वे तीनों बोले- 'भाईसाहब! हमें भी पानी पिलाना।' हम भी बहुत प्यासे हैं।

यह सुनकर वह बोला- 'यहाँ पर सब साधन उपलब्ध थे। पानी निकालते और पी लेते। तुम तो यहाँ इस तरह मुंह लटकाए उदास बैठे हो जैसे तुम सब की नानी मर गई हो।'

यह सुनकर पहला बोला- 'देख भाई मैं अमीरजादा हूँ। खुद पानी निकालकर पीऊँ तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी।

दूसरा बोला- 'मैं नबाबजादा हूँ। मैंने पानी निकालने के लिए थोड़े ही नबाब के घर में जन्म लिया है।

तीसरा बोला- 'मैं शहजादा हूँ। अतः तुम समझ ही सकते हो कि भला, मैं पानी कैसे निकाल सकता हूँ।

तब चौथा बोला- 'ठीक है, मैं सब समझ गया। तुम बैठे रहो। और उसने कुएं से बाल्टी भरकर पानी निकाला, अपनी प्यास बुझाई और बाकी का पानी वहीं उनके सामने उडेल दिया।'

यह देखकर वे तीनों आश्चर्यचकित होते हुए बोले- 'अरे! ये तुमने क्या किया? अच्छा, चलो जो किया सो तो किया अब तुम एक काम करो और पानी निकालो और हम सब को पिलाओ।

यह सुनकर वह बोला- 'अरे ओ! सुनो अमीरजादे, नबाबजादे और शहजादे! मैं हूँ हरामजादा, पानी पीता हूँ, पिलाता किसी को नहीं।' और वह वहाँ से रफू-चक्कर हो गया।

अब आप ही बताइए ऐसी मान-कषाय किस काम की, जिससे अपने ही प्राण संकट में पड़ जाए। अतः हम सबको न केवल मान-कषाय से अपितु उक्त सभी कषायों से यथासम्भव बचने का प्रयास

करना चाहिए। कहा भी जाता है कि

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥

जिस प्रकार वृद्धावस्था रूप का, आशा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, ईष्या धर्माचरण का, क्रोध लक्ष्मी का, अनार्य लोगों की सेवा शील का, काम लज्जा का और अभिमान सभी कुछ का हरण कर लेता है।

३१. त्यागात् शान्तिः

उपरिलिखित उक्ति का अर्थ है- त्याग से शान्ति मिलती है। सामान्य दृष्टि से यह बात अटपटी लग सकती है, लेकिन अगर आप इस पर गहराई से चिन्तन करेंगे तो पाएंगे कि वास्तव में न केवल भौतिक दृष्टि से अपितु पारमार्थिक दृष्टि से भी इस उक्ति की हमारे जीवन में बड़ी सार्थकता है। अगर हम देंखे तो लगाव हमारे सामान्य जीवन में भी रिश्तों को जोड़ता नहीं अपितु, लगाव के कारण रिश्तों में दरार आती है। कहा भी जाता है कि- **'दूर के ढोल सुहावने होते हैं।'** और यह बिल्कुल हस्तामलकवत् वास्तविक सत्य है। त्याग के कारण ही हम अपने और दूसरों के जीवन में मिठास घोल पाते हैं। लगाव हमें प्रवृत्ति की ओर ले जाता है तो त्याग हमें निवृत्ति की ओर ले जाता है।

एक बार एक सभा में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि- 'यदि दुनिया के सारे धार्मिकग्रन्थ खत्म हो जाए, कोई भी आध्यात्मिक पुस्तक न बचे। और बस केवल **'ईशावास्योपनिषद्'** का एकमात्र प्रथम मन्त्र ही बचा रहे, तब भी इससे सम्पूर्ण मानवता अथवा प्राणिमात्र का उद्धार हो सकता है। उस मन्त्र का एक वाक्य है- **'तेन त्यक्तेन भुंञ्जीथा।'** अर्थात् आप मात्र त्याग से ही भोग सकते हैं।

हमारे परमादरणीय कुलपलि प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी कई सभाओं में कहा करते थे कि- 'आज हमारे इर्द-गिर्द महानन्द, परमानन्द, शुद्धानन्द, सदानन्द, नित्यानन्द, ब्रह्मानन्द, निरजानन्द, कुमारानन्द, रूपानन्द,

स्वरूपानन्द, करुणानन्द, गिरजानन्द, रामानन्द, कृष्णानन्द, शिवानन्द आदि तो खूब मिल जाते हैं लेकिन, कोई त्यागानन्द दिखाई नहीं देता। वे कहते थे कि हर घर में एक त्यागानन्द होना चाहिए।'

मैं यहाँ एक बात और कहना चाहता हूँ कि- ये जो ऊपर नाम बतलाए गए हैं इनमें सबकी अपनी-अपनी सार्थकता है। और सार्थकता तभी है जब हम इन नामों की सार्थकता को अपने जीवन में, अपने आचरण में उतारे। उक्त इन सभी नामों की सार्थकता में कहीं न कहीं त्याग ही छुपा हुआ है। क्योंकि इनके साथ जो आनन्द शब्द जुड़ा हुआ है उसमें कहीं न कहीं त्याग ही छिपा हुआ है और उस त्याग के बिना वह आनन्द प्राप्त ही नहीं हो सकता जिसकी हम सबको तलाश है। और हाँ, केवल नाम रख देने मात्र से भी कोई त्यागानन्द नहीं हो जाता। यह अन्तरंग का मामला है। बाहर से तो त्याग करने वाले बहुत होते हैं। लेकिन बात तो तब बने जब व्यक्ति अन्तरंग से त्यागी बने। बाहरी त्याग से आपके आपसी रिश्तों में मिठास आ जाए जिससे दूर के ढोल सुहावने लगने लगे। लेकिन वास्तविक शान्ति तो हमें अन्तरंग त्याग से ही मिल सकती है, जिसको कि कोई विरला पुरुष ही कर पाता है। लेकिन, तलाश सबको रहती है।

रही नाम रखने की बात तो ये सब लोकव्यवहार है। अगर नाम से ही कुछ होता तो हर किरोड़ीमल के पास करोड़ रुपया होता। लेकिन किरोड़ीमलों को भीख माँगते हुए भी देखा जाता है। अब मेरा ही नाम देख लीजिए कुलदीप। अब क्या मैं कुल का दीपक हूँ? यह मेरे लिए चिन्तन का विषय है। लेकिन, शायद अगर मैं कोशिश करुँ तो बन सकता हूँ। ऐसा मेरा मानना है। इस नाम के सन्दर्भ में मुझे यहाँ एक छोटी सी कहानी याद आ रही है। जो मेरे गुरु जी ने मुझे आचार्य की कक्षा में सुनाई थी। यहाँ लिखे बगैर मेरा मन नहीं मान रहा है। अत: उसे मैं यहाँ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

किसी गाँव में एक व्यक्ति रहता था। माता-पिता ने उसका नाम रखा था ठनठनपाल। उसका विवाह हुआ। उसकी पत्नी का नाम था-

सुदर्शना। पत्नी को अपने नाम के सामने पति का नाम बड़ा ही बेकार लगता। और वो बात-बात में उससे कहती कि भला यह भी कोई नाम है? आप कोई दूसरा नाम रखो। पति सुनकर टाल देता और कहता है कि- 'नाम-वाम से कुछ नहीं होता व्यक्ति का काम और आचरण अच्छा होना चाहिए।'

पत्नी यह सब सुनकर खीझ जाती। और एक दिन तो उसने अपने मन में ठान लिया कि चाहे जो हो जाए मैं इनका नाम बदलवा कर ही रहूँगी।

शाम को पति जब काम से थका-हारा घर लौटा तो पत्नी ने आदेशात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए कहा कि- 'आपको पता है कि आपके नाम के कारण मेरी सहेलियों के बीच मेरी कितनी इनसल्ट (बेइज्जती) होती है। आज मैं आपसे अन्तिम बार कह रहीं हूँ कि कल जब घर में घूसो तो अपना नाम बदलकर ही आना। वरना यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं है।

अब ठनठनपाल बड़ा ही चिन्तित हुआ। होता भी क्यों नहीं? पत्नी का आदेश जो था।

अगले दिन प्रातःकाल ही ठनठनपाल भी यह सोचकर घर से निकल गया कि आज वह अवश्य ही किसी अच्छे-से नए नाम के साथ घर में प्रवेश करेगा। और इसी उधेड़-बुन में वह गाँव के जंगल की ओर चल दिया। अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसने देखा एक शवयात्रा निकल रही है। यह देखकर वह भी उस शवयात्रा में शामिल हो गया और लोगों से पूछने लगा- 'क्या हुआ भाई! कौन था मरने वाला? क्या नाम था इसका?' क्योंकि वह मन ही मन यह भी सोच रहा था कि अगर मरने वाला कोई पुरुष हुआ तो उसी का नाम रख लेगा।

लोगों ने कहा- 'भाई! इसका नाम था- अमरसिंह।' नाम सुनते ही वह सोचने लगा- 'नाम अमरसिंह और मर गया। भला ये भी कोई नाम हुआ। अतः वह दूसरे नाम की खोज में आगे निकल गया।

अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसने देखा सामने से एक भिखारी आ रहा है। उसने मन ही मन सोचा कि क्यों न इसका नाम इससे पुछकर रख लिया जाए। अतः उसने हिम्मत करके भिखारी से पूछ ही लिया कि भाईसाहब! आपका नाम क्या है? वह तुरन्त बोला- धनपाल। नाम सुनकर ठनठनपाल फिर चक्कर में पड़ गया कि कमाल है नाम तो धनपाल और माँग रहा है भीख। भला यह भी कोई नाम हुआ। और मन ही मन कहने लगा नहीं यह भी ठीक नहीं।

इसी ऊहापोह में वह और आगे बढ़ गया। और तभी उसने देखा सामने एक औरत पशुओं के गोबर के सूखे कण्डे जिसको गाँव में छाना कहते हैं। वो बीन रही थी। उसने सोचा क्यों न इस औरत से पूछकर इसका जो नाम है वही रख लिया जाए। अतः उसने औरत से पूछ लिया बहन जी! आपका नाम क्या है? यह सुनकर वह बोली- लक्ष्मीबाई सुनते ही ठनठनपाल का माथा ठनका और बोला। नाम लक्ष्मीबाई और काम छाना बीनने का। भला यह भी कोई बात हुई। और मन में कहने लगा नहीं-नहीं यह भी कोई नाम हुआ।

इसी प्रकार उसने और भी बहुत-से लोगों से नाम पूछे। लेकिन उसे कोई भी नाम उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ और शाम को थक-हार कर घर लौट आया और पत्नी से बोला-

अमरसिंह को मरता देख्या, भीख माँगे धनपाल।
छाना बीने लक्ष्मीबाई, चोख्यो ठनठनपाल॥

इसका अर्थ तो आप समझ ही गए होंगे। अतः यह स्पष्ट है कि नाम का कोई महत्त्व नहीं होता, महत्त्व होता है काम का, आचरण का।

३२. अध्ययन का उत्कृष्ट उदाहरण

शहीद भगतसिंह का नाम तो हम सबने सुना होगा। उन्होंने देश को आजाद कराने के लिए फाँसी को हँसते-हँसते गले लगाया था। 23 मार्च 1931 को उन्हें फाँसी लगनी थी लेकिन, उस दिन भी वे बिना

किसी डर के अपनी जेल की कोठरी में लेनिन की जीवनी पढ़ रहे थे। दोपहर के समय जेल के अपने साथियों से भगतसिंह ने रसगुल्ले खाने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने रसगुल्लों का प्रबन्ध किया। भगतसिंह ने प्रसन्नचित होकर रसगुल्लों का रसास्वादन किया। यही उनका अन्तिम भोजन भी था। इसके बाद उन्होंने फिर से स्वयं को लेनिन की जीवनी पढ़ने में तल्लीन कर लिया। अध्ययनशील तो बड़े-बड़े हुए हैं लेकिन, अध्ययनशीलता का ऐसा उदाहरण शायद ही कोई मिलता हो कि मृत्यु सिर पर खड़ी हो और आप पुस्तक पढ़ने में तल्लीन हो?

कुछ ही समय पश्चात् जेल अधिकारियों ने आकर कहा- 'सरदार जी, चलिए फाँसी का समय हो गया है।'

यह सुनकर भगतसिंह बोले- 'जरा ठहरो, एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है। कुछ समय बाद पुस्तक का जो प्रसंग वे पढ़ रहे थे, उसे समाप्त कर उन्होंने पुस्तक को एक तरफ रखते हुए कहा- 'चलो! अब मेरा काम पूरा हो गया।

भगतसिंह के साथ-साथ सुखदेव और राजगुरु भी अपनी कोठरियों से बाहर आ गए। तीनों अन्तिम बार गले मिले। और एक-दूसरे की बाहों को हाथों में लेते हुए एक स्वर में गीत गाया- **'दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत, मेरी मिट्टी से भी खुशबू ए-वतन आएगी।'** और वहाँ पर उपस्थित अंग्रेज अधिकारी से भगतसिंह ने कहा- आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आज आप अपनी आँखों से यह देखने का अवसर पा रहे हैं कि भारत के क्रान्तिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक सर्वोच्च आदर्श के लिए मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं। फिर तीनों ने मिलकर एक साथ नारा लगाया- इंकलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद। और इसके बाद तुरन्त ही वे फाँसी के तखते पर झूल गए।

३३. यथार्थ का अवबोध

सुकरात एक महान् पाश्चात्य दार्शनिक थे। वे बड़ी ही उदारता एवं सरल शैली में लोगों को यथार्थ का अवबोध करा देते थे। एक बार उनके पास एक बड़ा जमींदार आया। उसको अपनी धन-दौलत, जमीन-जायदाद आदि पर बड़ा गर्व था। वह सुकरात से कहने लगा- 'महामना आप कभी मेरे गाँव में आइए मेरे पास अपार सम्पत्ति है, रहने के लिए महलनुमा बहुत बड़ा घर है। मैं वे सब आपको दिखाऊँगा।

सुकरात उसकी सारी बात सुनते जाते और मन्द-मन्द मुस्कराते जाते। जब वह चुप हुआ, तब सुकरात ने अपने शिष्य को कहा कि- 'जरा विश्व का नक्शा लाओ।' उन्होंने मन ही मन सोच लिया था कि इस व्यक्ति का घमण्ड तोड़ना आवश्यक है, वरना यह बहुत बड़ी भ्रान्ति में जीता रहेगा। जो इसके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होगा। और एक सच्चे दार्शनिक अथवा गुरु का कर्तव्य भी यही होता है कि वह ऐसे हर किसी व्यक्ति को इस प्रकार के अयथार्थ अवबोध से बाहर निकाले।

शिष्य नक्शा ले आया तब नक्शे को दिखाते हुए सुकरात बोले- ' इस नक्शे को देखकर सर्वप्रथम यह बतलाओ कि इसमें हमारा देश कहाँ पर है।'

जमींदार ने बड़े ध्यान से काफी देर तक देखा और एक छोटे-से बिन्दु की ओर इशारा करते हुए बोला- 'यह है हमारा देश।'

यह देखकर सुकरात बोले- 'इतने बड़े विश्व में इतना छोटा-सा देश! अच्छा अब इसमें यह देखो कि तुम्हारा गाँव कहाँ है?'

जमींदार ने फिर बड़े ध्यान से चश्मा-वश्मा लगाकर काफी देर तक नक्शे को देखा और फिर पहले वाले बिन्दु से भी एक छोटे बिन्दु की ओर इशारा करते हुए बोला- **'ये रहा हमारा गाँव।'** इसके बाद सुकरात न नक्शा दिखाते हुए कहा कि- अच्छा अब यह बताओं कि इस नक्शे में अपनी जमीन और महल दिखाओ।

जमींदार ने खूब कोशिश की, खूब चश्मे बदले लेकिन, उसे उस नक्शे में कहीं भी न तो अपनी जमीन ही दिखाई दी और न अपना महल ही। और अन्त में थक-हारकर उसे कहना ही पड़ा कि- 'मेरी जमीन और महल तो इसमें दिखती ही नहीं।

यह सुनकर सुकरात बोले- 'इतनी छोटी-सी जमींदारी का इतना बड़ा घमण्ड जो कि नक्शे में दिखाई तक नहीं देती।

इतना सुनते ही जमींदार का घमण्ड रूपी नशा रफू-चक्कर हो गया। उसे वास्तविकता का भान हो गया। उसकी मनोदशा बदल गई और उसने हाथ जोड़ते हुए कहा कि- 'महात्मन! आपने मेरी बन्द आँखें खोल दीं। मैं बहुत बड़ी भ्रान्ति में जी रहा था। आज के बाद मैं कभी घमण्ड नहीं करुँगा।

३४. घमण्ड का फल

बहुत समय पहले की बात है बनारस के किसी गाँव में छह दार्शनिक रहते थे। वे सभी अपने-अपने विषयों में पारंगत थे। जिसके कारण उन सब को कुछ घमण्ड भी था कि हम तो शास्त्र के मर्मज्ञ हैं, ज्ञानी हैं। बाकी सब तो ऐसे ही हैं। वे क्या जाने शास्त्र की बात? कहने का मतलब यह है कि उन्हें अपने विषय ज्ञान पर बहुत घमण्ड था। संयोगवश एक बार उन्हें दूसरे किसी गाँव से एक शास्त्र संगोष्ठी में भाग लेने के लिए आमन्त्रण मिला। और वे सभी संगोष्ठी में भाग लेने के लिए तैयार हो गए। संगोष्ठी स्थल या गाँव गंगा नदी के दूसरी ओर था। इसलिए नदी पार करना आवश्यक था। अतः उन सब ने नाव से नदी पार करने का निर्णय किया और सवार हो गए एक नाव में। जैसे ही खेवइये ने नाव खेनी शुरु की तो पहला दार्शनिक खेवइए से बोला- 'अरे ओ! खेवइए कुछ न्यायदर्शन का भी अध्ययन किया है कभी या जीवन भर ऐसे ही नाव खेते रहे हो।'

दूसरा बोला- 'अरे! कुछ ज्योतिष-व्योतिष का ज्ञान भी है कि नहीं?'

तीसरा बोला- अरे! कभी जैनदर्शन भी पढ़ा है कि नहीं?

चौथा बोला- अरे! कभी कुछ पौराणिक कथाएं पढ़ी-सुनी कि नहीं?

पाँचवा बोला- अरे! कुछ भूगोल-खगोल का ज्ञान है कि नहीं तुम्हें?

छठा बोला- अरे! कुछ साहित्य-वाहित्य भी पढ़ा-सुना कि नहीं?

इस प्रकार वे सभी दार्शनिक महाशय उस खेवइए की खिल्ली उड़ा रहे थे कि अरे! ये क्या जाने इन सब बातों को। हरेक के भाग्य में थोड़ा ही लिखा होता है ये शास्त्रज्ञान। सभी हमारे जैसे थोड़ा ही होते हैं। इसी तरह वे और भी अनाप-शनाप बातें करते हुए अपने घमण्ड को व्यक्त कर रहे थे।

खेवइया सब बातें सुन रहा था और चुपचाप नाव खेता जा रहा था। तभी उनमें से एक दार्शनिक महाशय बोले- 'अरे ओ! गूँगे क्या तू सचमुच गूँगा ही तो नहीं है कुछ बोलता ही नहीं है। या हमारी बातें सुनकर तेरी बोलती बन्द हो गयी है।'

तब खेवइया मुस्कराते हुए बोला- 'हे मेधावियों! मेरे परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी परदादा, दादा, और बाप सब यही काम करते चले आयें हैं। अतः हमें पढ़ने-लिखने का कोई मौका ही नहीं मिला। बस अपना यही खानदानी काम करते आये हैं और कर रहें हैं। अतः मैं क्या जानूं ये सब बातें।'

यह सुनकर सभी दर्शनशिरोमणि एक स्वर में बोले- अरे! जैसे तेरे बड़े नाव खेते-खेते मर गए वैसे ही तुम भी एक दिन मर जाओगे। बेकार गया तुम सबका जीवन। अतः लानत है तुम्हारे जीवन पर।'

खेवइया ये सब बातें सुनकर मन ही मन बड़ा दु:खी हो रहा था। क्योंकि उस बेचारे ने तो इन सबकी तरह दर्शनशास्त्र पढ़ा नहीं था जो कि साम्य भाव धारण कर लेता। लेकिन फिर भी वह मन ही मन खुश भी हो रहा था कि सभी तो हर काम में दक्ष नहीं हो सकते? मैं अपने काम में तो निपुण हूँ ही और मुझे इन विद्वानों की तरह अपने काम पर घमण्ड भी तो नहीं है। बड़े-बूढ़ों ने तो यही समझाया है कि कभी भी व्यक्ति को घमण्ड नहीं करना चाहिए। और वह यह सब सोच ही रहा था कि अचानक नदी में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगी। वह तुरन्त अपने व्यवहारिक ज्ञान से समझ गया कि नदी में भयंकर तुफान उठ गया है और नाव का सुरक्षित बचना सम्भव नहीं। अत: उसने तुरन्त दार्शनिकों से कहा कि- 'क्या आप सब लोग तैरना जानते हैं?'

यह सुनते ही वे सब एक साथ बोले- नहीं, हम तैरना नहीं जानते खेवइये को उन सब पर बहुत दया आ गई और उसने उन सबको किसी तरह बारी-बारी अपनी पीठ पर लादकर नदी से बाहर निकाला। और वह उन महाशयों से बोला- 'यह जरुरी नहीं होता कि हर आदमी हर काम में निपुण हो। कहा भी जाता है कि- सुईं के स्थान पर सुईं ही काम आती है तलवार नहीं। और हाँ! देखों मैं पढ़ा-लिखा शास्त्रज्ञ विद्वान् तो हूँ नहीं लेकिन, मेरे बुजुर्गों ने मुझे यह शिक्षा अवश्य दी है कि कभी भी घमण्ड नहीं करना चाहिए और मुसीबत में दूसरों के काम आना चाहिए। बस, मैं तो उसी शिक्षा का पालन करना जानता हूँ। और यही मेरी विद्वता भी है।

३५. भलाई व्यर्थ नहीं जाती

किसी शहर में एक गरीब परिवार रहता था। परिवार में कई बहन-भाई थे। बड़े लड़के को पढ़ने का बहुत शौक था। लेकिन, माँ-बाप की आमदनी इतनी नहीं थी कि वे लड़के को पढ़ा सके। अत: वह लड़का अपनी पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए सुबह के समय घर-घर जाकर समाचार पत्र बाँटता था। जिससे उसका पढ़ाई का खर्च चल जाता

था। संयोगवश एक दिन सुबह-सुबह जब वह अखबार बाँट रहा था तो उस जोरों की भूख लग आई। भूख के कारण वह इतना व्याकुल हो गया कि घर वापस जाने तक की हिम्मत उसमें नहीं रही। अतः उसने सोचा कि यहीं किसी घर से कुछ माँग कर खा लिया जाए। हिम्मत करके उसने एक घर का दरवाजा खटखटा ही दिया। दरवाजा एक लड़की ने खोला, लड़की को देखते ही वह शरमा गया और संकोच करते हुए उसने लड़की से केवल एक गिलास पानी माँगा। लड़की समझदार और अनुभवी थी। वह लड़के को देखते ही समझ गई कि वह बहुत भूखा है। सुबह-सुबह घर में भोजन तो बना नहीं था और इतनी जल्दी बन भी नहीं सकता था। अतः उसे रसोई में और तो कुछ मिला नहीं हाँ दूध रखा था। उसने तुरन्त एक गिलास दूध गर्म किया उसमें चीनी डाली और लड़के को दे दिया। लड़के ने दूध लेकर बड़ी ही प्रसन्नता से पी लिया। जिससे उसे बड़ी शान्ति मिली।

दूध पीने के बाद कृतज्ञ भाव से लड़का बोला- 'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं किन शब्दों में आपका धन्यवाद करूँ मैं नहीं जानता। आपने ऐसी विकट स्थिति में मेरी सहायता की है कि मैं आपको बता नहीं सकता। और न ही मैं इसका कोई मूल्य चुका सकता हूँ। क्योंकि जो काम आपने किया है, उसका मूल्य चुकाया ही नहीं जा सकता। फिर भी, आप आदेश दीजिए मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।

यह सुनकर लड़की बोली- 'मैंने कुछ नहीं किया। मैंने तो केवल अपने मानवीय धर्म का पालन किया है, जोकि हम सबको करना चाहिए। और रही मूल्य की बात तो मेरे माता-पिता ने मुझे यही सिखाया है कि किसी भी प्राणी की मदद के लिए मूल्य नहीं लेना चाहिए। मैं आपसे कुछ नहीं ले सकती। अतः अब आप सब बात छोड़िए और खुशी-खुशी अपना काम कीजिए और जीवन में आगे बढ़िए। यह सुनकर लड़के ने लड़की को पुनः धन्यवाद कहा और मन ही मन सोचने लगा कि अभी संसार में मानवता बची है। न केवल उसने यह सोचा ही

बल्कि उसे दृढ़ विश्वास भी हो गया और उसने स्वयं भी संकल्प लिया कि वह भी प्राणिमात्र के हित के कार्य करेगा।

संयोग देखिए जब वह लड़की जवान हुई तो उसे एक ऐसी भयंकर बीमारी ने घेरा कि आस-पास कहीं उसका इलाज नहीं हो पा रहा था। डॉक्टरों ने कहा कि शहर में एक बहुत बड़ा निजी अस्पताल है शायद वहाँ इसका इलाज हो जाए। अतः इसे वहाँ ले जाइए। लड़की के घरवाले उसे वहाँ ले गए। डॉक्टर को मरीज का सारा विवरण मिला। उसे पढ़कर डॉक्टर को कुछ पुरानी बातें याद आई और वे तुरन्त लड़की का इलाज करने पहुँच गए। डॉक्टर का अनुमान सही निकला। यह वही लड़की थी जिसने कभी उसे एक गिलास दूध पिलाया था। उसने बड़े ही मनोयोग से लड़की का इलाज प्रारम्भ किया। उत्तम इलाज और सही देख-रेख से लड़की शीघ्र ही उस भयंकर बीमारी से मुक्त हो गयी। और होती भी क्यों नहीं डॉक्टर ने पवित्र भावों से और मन लगा कर उसका इलाज जो किया था। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि पवित्र भावों से किया गया कोई भी कार्य कभी निष्फल नहीं होता। अतः लड़की की स्वस्थता को देखते हुए उसे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। इलाज को खर्चा बहुत ज्यादा था, लेकिन डॉक्टर ने बिल के नीचे कृतज्ञता सहित लिखा- इस बिल का भुगतान वर्षों पहले एक गिलास दूध से किया जा चुका है। और जैसे ही वह बिल लड़की के हाथ में पहुँचा उसे पढ़ते ही लड़की के मुँह से अनायास ही निकला- 'भलाई कभी बेकार नहीं जाती।' क्योंकि वह अखबार बेचने वाला लड़का ही अब डॉक्टर बन गया था और वह ही इस निजी अस्पताल का मालिक था। अतः हम सबको भी पुण्य के कार्य करने चाहिए तथा पापकार्यों से बचना चाहिए। कहा भी जाता है कि-

त्रिभिवर्षैस्त्रिभिर्मासैः त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यौरिहैव फलमश्नुते।।

अर्थात् प्रत्येक प्राणी तीन वर्ष में, तीन मास में, तीन पक्ष में और तीन दिन में ही स्वकृत महान् पुण्य-पाप का फल इसी जन्म में प्राप्त

करता है।

मैं यहाँ पर एक बात कहना चाहता हूँ कि आज हर आदमी यह कहता सुनाई पड़ता है कि मेरे पास बहुत पैसा है और पैसे के बल पर मैं हर काम कर सकता हूँ। इसीलिए आज हर आदमी पैसे की रेलम-पेल में भाग रहा है। इसके लिए वह उचित-अनुचित सब कुछ करने को तैयार है। लेकिन यह नितान्त भ्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि पैसा ही सब-कुछ कर सकता है। हाँ पैसा कुछ हो सकता है, लेकिन सब-कुछ कदापि नहीं।

ऊपर जिस लड़के की हम चर्चा कर रहे हैं। सम्भव है उस समय उसकी जेब में पैसे हों। लेकिन, उस पैसे से क्या उस समय वह वहाँ भोजन खरीद सकता था? नहीं खरीद सकता था क्योंकि वहाँ आस-पास कोई खाने-पीने की वस्तुओं की दूकान ही नहीं थी। अतः मूल्य पैसों का नहीं अपितु मूल्य होता मानवीय मूल्यों का, हमारे शुभ भावों का। और मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि इस सृष्टि में जो भी खेल चल रहा है, वह सब भावों/विचारों का ही खेल है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इस सम्बन्ध में लॉ ऑफ अट्रैक्शन भी कहता हैं कि- 'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में हम जिस चीज पर ध्यान केंद्रित करते है, जिस चीज के बारे में ज्यादा सोचते हैं जिसकी ज्यादा चर्चा करते हैं उसमें आश्चर्यजनक रूप से ही विस्तार होता जाता है।'

एक सच्ची घटना मैंने अपनी आँखों से देखी है। एक बहुत ही धनी आदमी था। उसे अपने पैसे पर बड़ा घमण्ड था। वह बात-बात पर यह कहता था कि 'मेरे सब काम पैसे से होते हैं और होते रहेंगे। यहाँ तक कि वह अपने नाते-रिश्तेदारों, भाई-बहन, पुत्र-स्त्री आदि से भी यही कहता था।' धीरे-धीरे उसका अन्त समय आ गया और एक दिन उसे ऐसी भयंकर बीमारी हो गई कि वह न तो चल पा रहा था, न बोल पा रहा था। तब वे ही नाते-रिश्तेदार उसे अपने कंधों पर उठाकर अस्पताल लेकर गए। और कुछ दिन बाद उसका स्वर्गवास हो गया तो वही लोग अपने कंधों पर उठाकर उसे श्मशान लेकर गए।

अब आप ही बताइए- 'अगर पैसा ही सब कुछ था तो क्यों नहीं वह पैसा उसे उठाकर अस्पताल ले गया, क्यों नहीं श्मशान ले गया। अतः यह नितान्त भ्रम है कि पैसा ही सब कुछ है।

३६. दुःखों को हमने स्वयं पकड़ा है

राजस्थान के किसी गाँव में एक परिवार रहता था। घर में रूपए-पैसे की कोई कमी नहीं थी। परिवार के सभी सदस्य आवश्यकतानुसार पढ़े-लिखे भी थे। लेकिन, यह सब होते हुए भी वे छोटी-छोटी बातों को लेकर बड़े दुःखी रहते थे। जिसके कारण परिवार में हमेशा तनाव बना रहता था। परिवार के बड़े होने के नाते एक दिन पति-पत्नी ने सोचा क्यों न कोई ऐसा उपाय किया जाए? जिससे घर में सुख-शान्ति बनी रहे। यह सोचकर वे दोनों अपने एक परिचित के पास गए और उनको सारी बात बताई। तब परिचित ने उन्हें बतलाया कि जंगल में एक साधु रहते हैं और वे चुटकियों में सभी समस्याओं का समाधान कर देते हैं। अतः आपको उनके पास जाना चाहिए।

अन्धा क्या चाहे, दो आँखें और पति-पत्नी चल दिए जंगल की ओर और उदास व दुःखी मन से पहुँच गए साधु के पास। और विनम्रतापूर्वक दोनों ने साधु से निवेदन किया- 'हे परमदयालु! आपके पास दुनिया के कोने-कोने से दुःखी लोग आते हैं। आप उन सबकी झोली खुशियों से भर देते हैं, किसी को निराश नहीं लौटाते। हम भी बड़े दुःखी हैं। अतः आपसे हाथ जोड़कर विनती है कि आप हमारे भी दुःख दूर करें।

यह सुनकर साधु ने क्षण भर उनकी ओर देखा और मन ही मन कुछ सोचकर अपनी पर्णकुटी से बाहर निकल आये। कुटिया के बाहर एक पेड़ का सुखा ठूँठ खड़ा था। उन्होंने उपने दोनों हाथों से कसकर उस ठूँठ को पकड़ लिया और लगे चिल्लाने 'बचाओं बचाओं' 'छुड़वाओं-छुड़वाओं कोई मुझे इस ठूँठ से छुड़वाओं। साधु का शोर सुनकर आस-पास के सभी लोग एकत्रित हो गए और पूछने लगे- 'क्या

हुआ महात्मा जी आप चिल्ला क्यों रहें हैं? सुनकर साधु बोले– अरे! आप लोग देख नहीं रहे हैं? इस ठूँठ ने मुझे पकड़ लिया है छोड़ ही नहीं रहा है। यह देखकर सब आश्चर्यचकित होते हुए एक–दूसरे को देखने लगे। लेकिन, कोई भी बोलने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। तभी उन लोगों में से हिम्मत करके एक बुजुर्ग व्यक्ति आगे आया और कहने लगा– हे महात्मा! हम सब लोग तो आपके पास ज्ञान लेने आते हैं और आप खूब देते भी हैं। लेकिन आज आप स्वयं ऐसी अज्ञानता भरी बात क्यों कर रहें हैं? भला, ठूँठ ने आपको थोड़ा ही पकड़ रखा है, उलटा आपने ही ठूँठ का पकड़ रखा है।

यह सुनते ही साधु ठूँठ को छोड़ते हुए मुस्कराने लगे और बोले– यही बात तो मैं तुम सबको तथा विशेषकर इस नवागंतुक दम्पती को समझाना चाहता हूँ कि दुःख ने तुम्हें नहीं अपितु, तुमने ही दुःख को पकड़ रखा है। अगर, तुम छोड़ दो तो ये अपने आप छूट जाएंगे।

मित्रों! उक्त समस्या केवल उन चन्द लोगों की या केवल उस दम्पती मात्र की नहीं है। अपितु हम सबकी यही स्थिति है। हम सब साधु की इस बात पर गम्भीरता से चिन्तन–मनन करें तो निष्कर्ष (परिणाम) यही निकलेगा कि हमारे ये तथाकथित अतिथि दुःख, तकलीफ, टैंशन आदि इसलिए हमें घेरे हुए हैं कि हमने अपनी सोच वैसी विकसित कर रखी है। ऐसा न हुआ तो क्या होगा? वैसा न हुआ तो क्या होगा? ये सब दुःख हमारी अपनी ही नासमझाी की उपज हैं और कुछ नहीं। इसके लिए एक सटीक उदाहरण है जिसे मैं यहाँ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

किसी शहर में एक पति–पत्नी रहते थे। एक दिन दोनों में झगड़ा हो रहा था। पति कह रहा था मैं अपने बेटे को वकील बनाऊँगा। पत्नी कह रही थी मैं अपने बेटे को डॉक्टर बनाऊँगी। बस इसी बात पर दोनों झगड़ रहे थे। उसी समय उनका कोई परिचित वहाँ आ गया। उसने भी इन दोनों का झगड़ा सुना। क्योंकि उसके आने के बाद भी ये शान्त नहीं हुए थे।

परिचित ने कहा– 'आप दोनों क्यों आपस में झगड़ रहें हैं? क्यों न आप लड़के को ही बुलाकर पूछ लेते हो कि उसे क्या बनना है?'

यह सुनते ही दोनों बोले– 'लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ है'।

अब आप ही देखिए लड़के का अभी दूर-दूर तक नामोनिशान तक नहीं है और ये महाशय लगे हैं उसे वकील और डॉक्टर बनाने। अब ये दुःखों को पकड़ना नहीं है तो और क्या है? आप ही सोचिए। एक दृष्टान्त और देखिए।

एक रेलगाड़ी में दो यात्री यात्रा कर रहे थे। दोनों आमने-सामने बैठे थे। जैसे ही रेलगाड़ी चली तो उनमें से एक यात्री ने खिड़की बन्द कर दी। थोड़ी देर बाद दूसरा उठा उसने खिड़की खोल दी। पहले वाला फिर उठा और उसने खिड़की फिर बन्द कर दी। बस इसी बात पर दोनों झगड़ पड़े। पहला कहता बन्द करूँगा तो दूसरा कहता खोलूँगा। दोनों का झगड़ा सुनकर वहाँ एक रेलवे का अधिकारी आ गया। उसने दोनों की बात सुनी और बोला– देवताओं! क्यों लड़ रहे हो खिड़की में शीशा तो लगा ही नहीं है। यह सुनते ही दोनों झेंप गए और लगे एक-दूसरे की ओर देखने।

अब आप ही बताइए ये नासमझी और गलत सोच की ही पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है? अतः हम सबको यह भलीभाँति समझना चाहिए कि ये सब दुःख हमारी गलत सोच और नासमझी के कारण ही हमारे अन्दर विराजमान हैं। इसलिए हो सके तो अपनी सोच बदलिए उसके बदलते ही ये सारे दुःख नौ-दो-ग्यारह हो जाएंगे। कहा भी जाता है कि–

नजर को बदलिए नजारे बदल जाएंगे,
सोच को बदलिए सितारे बदल जाएंगे।
किश्तियां बदलने से कोई फायदा नहीं,
दिशा बदलिए किनारे बदल जाएंगे।।

हमारे देश में अनेक ऐसे सन्त - महात्मा हुए हैं जिन्होंने अपने निर्मल ज्ञान और सदाचरण के बल पर अपनी सोच को बदलते हुए, घर गृहस्थी में रहते हुए भी दुःखों पर विजय प्राप्त की है। ऐसा नहीं है कि उनके जीवन में सभी कुछ अच्छा-अच्छा ही घटित हुआ हो। लेकिन, फिर भी चौबीसों घण्टे अपनी मस्ती में मस्त रहते थे। तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र 'भरत' घर-गृहस्थी के अनेक झंझटों में रहते हुए भी मस्त रहते थे। कबीरदास जी आज कपड़ा बुनते थे तो अगले दिन उनके खाने का जुगाड़ हो पाता था। लेकिन फिर भी वे हमेशा यही कहते रहते थे कि **'मेरे अन्दर तो आनन्द के फव्वारे छूटते रहते हैं'।** गुरु नानक देव जी इकतारे की तान पर गीत गाते हुए हमेशा आनन्द से सरोबार रहते थे। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं। अतः हम सबको यह भलीभाँति सोच और समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार हमें बहुत-सी आदतें पड़ जाती है, जिनके बगैर हम से रहा नहीं जाता उसी प्रकार सुख और दुःख भी सिर्फ आदतें हैं। दुःखी रहने की आदत तो हमने डाल रखी है लेकिन, सुखी रहने की आदत हम डालना नहीं चाहते हैं। और जिस दिन हमने सुखी रहने की आदत को अपने अन्दर विकसित कर लिया उस दिन ये सब दुःख कोसों दूर भाग जाएंगे।

३८. वास्तविक दान

किसी शहर में दो मित्र रहते थे- धनपाल और दयामल। नाम के अनुरूप ही उनके काम थे। धनपाल वास्तव में धनी तो दयामल दयालु था। संयोगवश दोनों एक ही दिन पैदा हुए, एक साथ खेले-कूदे और बड़े हुए। और सुखपूर्वक जीवन-यापन करते हुए एक ही दिन परलोक सिधार गए। दोनों मित्रों ने मन ही मन सोचा था कि हम परलोक भी इकट्ठे ही जाएंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

उनकी आत्माओं को ले जाने के लिए परलोक से दो दूत उतरकर पृथ्वी पर आए थे। उनमें से एक देवदूत था- सुन्दर गोरा-चीटा। दूसरा यमदूत था- काला और डरावना। उन्हें देखकर धनपाल मन ही मन

सोचने लगा कि देवदूत मुझे लेने आया है क्योंकि मैं धनी भी हूँ और मैने दान-पुण्य भी भरपूर मात्रा में किया है। उधर दयामल भी मन ही मन सोचने लगा कि- मेरे पास तो न धन ही था और न ही मैंने जीवन में कोई दान-पुण्य ही किया है, अतः मेरे जैसे पापी को तो यमदूत ही लेने आएगा। लेकिन यह क्या? हुआ इसके बिल्कुल विपरीत।

गोरा देवदूत दयामल से बोला- 'तुम मेरे साथ इस पुष्पक विमान में बैठो। तुम्हें मेरे साथ चलना है।'

काला यमदूत धनपाल से बोला- 'महाशय! तुम मेरे साथ इस लोहे के पिंजरे में आ जाओ। तुम्हें मेरे साथ चलना है।'

यह सुनकर धनपाल आश्चर्यचकित होते हुए बोला- 'महाशय! शायद आपको कोई गलतफहमी हो रही है। मेरा नाम धनपाल है, मैंने जीवन भर दान-पुण्य के कार्य किए हैं जबकि दयामल ने जीवन में एक पैसा भी दान नहीं किया है, उसकी रग-रग से मैं वाकिफ हूँ। अतः लोहे के पिंजरे में जाने लायक दयामल है, मैं नहीं। फिर आप ऐसी उलटी गंगा क्यों बहा रहे हैं?'

यह सुनकर यमदूत बोला- 'देखो भाईसाहब! हम तो हैं धर्मराज के नौकर। उन्होंने हमें जो आदेश दिया है, हम तो उसी का पालन कर रहे हैं। और हाँ अगर तुम्हें यकीन नहीं हो तो हमारे पास उनका लिखित लैटर भी है, चाहो तो उसे देख लो। फोन की सुविधा वहाँ अभी हुई नहीं है, नहीं तो हम तुम्हारी बात फोन से भी करवा देते अतः अब तुम चुपचाप हमारे साथ चलो और जो भी बात तुम्हें करनी है वह धर्मराज की सभा में ही करना। यहाँ कोई फायदा नहीं।

पलक झपकते ही वे लोग जा पहुँचे धर्मराज की सभा में। धर्मराज अपनी सीट पर विराजमान थे। और वहाँ उपस्थित आत्माओं को उनके कर्मों के आधार पर स्वर्ग-नरक की प्रवेश टिकट दे रहे थे। यमराजों ने इन्हें भी लगा दिया लाइन में क्योंकि वहाँ भी भीड़ अधिक थी। कुछ समय बाद इनका भी नम्बर आ ही गया। और धर्मराज के

सहायक ने इनकी फाइल कर दी प्रस्तुत! और मुकदमें की सुनवाई शुरू हो गई।

धर्मराज ने पहले धनपाल को कटघरे में आने का आदेश दिया और पूछा- 'कहो सेठ धनपाल! तुम अपने कामों के विषय में क्या कहना चाहते हो?'

धनपाल बोला- हे न्यायशिरोमणि! मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन में दान-पुण्य और परोपकार के बड़े-बड़े काम किए हैं। गिनते जाइए, मैने पाँच लाख रुपये लगाकर बालकों के लिए एक संस्कृत विद्यापीठ बनवाया। आप स्वयं जाकर देख सकते हैं वह विद्यापीठ आज भी मेरे नाम पर चल रहा है- 'धनपाल संस्कृत विद्यापीठ वाराणसी'। उसमें इस समय कम से कम एक हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। और इतना ही नहीं, वहाँ सौ से अधिक अध्यापक और पचासों अन्य कर्मचारी भी काम करते हैं। उन सबको वेतन भी मैं ही देता हूँ। क्या इस महान् कार्य की आपकी नजरों में कोई कीमत नहीं?'

धर्मराज ने कहा- यह सब कुछ तुमने अपना नाम व कीर्ति फैलाने के लिए किया था। अतः इसे सच्चा दान या परोपकार नहीं माना जा सकता। धनपाल बोला- 'अच्छा! छोड़ो इसे। मैंने 2 लाख रुपये लगाकर गंगा किनारे एक मन्दिर बनवाया था। जिसमें हजारों श्रद्धालु रोज पूजा-अर्चना करते हैं। वह तो सच्चा दान है न?'

धर्मराज ने याद दिलाया- 'वहाँ पर भी तुमने पत्थर पर मोटे-मोटे अक्षरों में खुदवाकर अपना नाम लिखवाया था, यश कमाने के लिए। इसलिए उसे भी सच्चे दान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। यह सुनकर धनपाल बोला- 'अच्छा, चलो छोड़िए उसे भी। मैंने शहर के बीचोबीच एक कुआँ बनवाया था उससे तो हजारों-लाखों की पिपासा शान्त होती है। वह तो सच्चा दान होगा?'

यह सुनकर धर्मराज मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले- शायद तुम भूल रहे हो कुएँ पर तो तुमने अपना नाम सुनहरी अक्षरों में लिखवाया

था और हाँ वहाँ तुमने यह भी लिखवाया था कि यह कुआँ मै अपने पूर्वजों की आत्मा की शान्ति के लिए बनवा रहा हूँ। यहाँ तो तुमने अपने यशोगान के साथ-साथ अपने पूर्वजों को भी खुश करने का प्रयास किया था। अतः इसे भी वास्तविक अथवा सच्चा दान नहीं माना जा सकता।

अब धनपाल ने अपने वाणी रूपी तरकश से आखिरी बाण छोड़ा- 'अच्छा, ठीक है वो सब तो, मैंने करोड़ों रुपए खर्च करके एक चेरिटेबल ट्रस्ट बनाया। जिसमें हर रोज भूखों को भोजन कराया जाता है, बीमारों का इलाज किया जाता है, अनाथों को सहारा दिया जाता है, गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृति दी जाती है, बाढ़ और भूकम्पादि प्राकृतिक आपदाओं के समय पीड़ितों की यथासम्भव मदद की जाती है। अतः मेरे इस दान से तो करोड़ों लोगों की भलाई होती है। इसलिए आप बाकी सब छोड़ दीजिए। केवल मेरे इसी दान के बदले मुझे स्वर्ग दे दीजिए। इतना तो मेरा हक बनता ही है। अतः हे न्यायशिरोमणि न्याय कीजिए।'

धर्मराज बोले- 'सुन रे! ओ दुनिया के महानतम परोपकारी वह दान तुमने अफसरों और मन्त्रियों को खुश करने, टैक्स चोरी करने तथा दस लाख के काम को पचास लाख में लेने के लिए किया था। उसमें भी तुम्हारी दृष्टि स्वार्थ और लाभ की ही थी। तुमने अपने सम्पूर्ण जीवन में जो भी काम किया वह केवल और केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही किया। और हाँ एक बात और मैं कहना चाहता हूँ कि तुम ईर्ष्यालु भी बहुत हो। तुम तो कहते हो कि दयामल मेरा परम मित्र है, लेकिन जैसे ही तुम्हें पता चला कि मेरा परम मित्र स्वर्ग में जा रहा है तो लगे तुम उसकी बुराई करने कि उसने तो कभी जीवन में दान किया ही नहीं। और अगर वह स्वर्ग जा रहा है तो एक परम मित्र होने के नाते खुश होना चाहिए था कि चलो, मैं ना सही मेरा मित्र तो स्वर्ग जा रहा है। लेकिन नहीं वो क्यों जा रहा है? यह ईर्ष्या ही तो थी और क्या था? और हाँ सुनते जाओ ये तुम्हारा मित्र स्वर्ग में क्यों जा रहा है वरना तुम नरक में और भी अधिक कुलबुलाते रहोगे कि 'वह स्वर्ग में कैसे चला गया।' और धर्मराज ने दयामल की फाइल माँगी सहायक से तथा फाइल

देखते हुए बोले- इसने अपने जीवन में करोड़ों-अरबों से भी अधिक के दान किए हैं। और सुनो वे दान कौन-से हैं? इसके पड़ोस में एक गरीब बालक रहता था जो पढ़ाई में कमजोर था। इसने उसे बिना किसी स्वार्थ और लोभ के पढ़ाया। जो आज पढ़-लिखकर एक बहुत बड़ा विद्वान् बन गया और वह भी इसी की तरह निर्धन बालकों को पढ़ाता है। यह इसका विद्यादान है। कहा भी जाता है कि-

अन्नदानं महादानं विद्यादानं महत्तमम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर्यावज्जीवं तु विद्यया।।

एक बार नगर में सड़क दुर्घटना में एक युवक घायल हो गया। वहाँ पर अनेक लोग मौजूद थे। लेकिन, कोई भी उसकी मदद के लिए आगे नहीं आया। इसने तुरन्त उसे अपने कंधों पर उठाकर अस्पताल पहुँचाया। चोट लगने के कारण उसका बहुत खून बह गया था जिसके कारण उसमें खून की कमी हो गयी थी। इसने अपना खून देकर उसकी नसों में चढ़वाया और उसकी जान बचायी। यह था इसका रक्तदान।

एक बार एक खरगोश का बच्चा बरसाती नाले में डूब रहा था। इसने उसे डूबने से बचाया, अपने हिस्से का दूध उसे पिलाया और कई दिन तक उसकी सेवा की तथा बाद में उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। यह था इसका प्राणदान। इसने इन सब परोपकारी कार्यों के लिए न तो पैसा चाहा न ही कोई कीर्ति, यश या बड़ाई। बिल्कुल अनासक्त भाव से इसने ये सब काम किए। कहा भी जाता है कि- दान तो ऐसा ही होना चाहिए कि-**अगर तुम्हारा दायाँ हाथ दान दे रहा है तो तुम्हारे बाएं हाथ को भी नहीं पता चलना चाहिए कि दान दिया जा रहा है।** अतः तुम्हारे करोड़ों रूपये के दान से भी इसका दान श्रेष्ठ है। इसीलिए इसे स्वर्ग मिल रहा है और तुम्हें नरक।

३८. अमर फल

किसी गाँव में एक परिवार रहता था। एक दिन पिता ने लड़के को पैसे देते हुए कहा कि बाजार जाओ और फल ले आओ। पैसे लेकर

बालक चल दिया बाजार की ओर। रास्ते में उसे कुछ ऐसे बालक दिखाई दिए, जिनके शरीर पर पूरे वस्त्र तक नहीं थे उनके दीन-हीन चेहरों से स्पष्ट झलक रहा था कि उन्हें कई दिनों से शायद भोजन ही न मिला हो। यह देख करके बालक का हृदय द्रवित हो उठा और उसने सारे पैसे उन बालकों में बाँट दिए। इससे उसे अत्यन्त सुख और आत्मसन्तोष की अनुभूति हुई और चल दिया वापस घर की ओर।

घर पहुँचते ही पिता ने बालक से पूछा- 'फल ले आए बेटा।' उसने उत्तर दिया, 'पिताजी, आज तो मैं अमरफल लाया हूँ।'

यह सुनकर पिताजी बोले- 'दिखा तो भला। मैं भी देखूँ तुम कौन-सा अमरफल लाए हो।'

बालक बोला- 'पिताजी, बात यह है कि जब मैं बाजार जा रहा था तो रास्ते में मुझे कुछ ऐसे गरीब बच्चे मिले, जिनके शरीर पर वस्त्र तक नहीं थे। उन्हें देखकर मेरा हृदय द्रवित हो उठा और मुझे उन पर इतनी दया आ गई कि वे सारे पैसे मैने उन सब में बाँट डाले। अगर मैं अपने लिए फल लाया होता, तो शायद उनकी मिठास दो-चार दिनों तक रहती। किन्तु उससे मुझे **'अमरफल प्राप्त न हुआ होता।'** पिताजी भी यह सुनकर भावविभोर हो गए। और अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उन्होंने बेटे को शाबासी देते हुए उसकी पीठ थपथपाई।

यही बालक आगे चलकर 'सन्त रंगदास' के नाम से विश्वविख्यात हुआ।

३९. सच्ची सीख

बालक हरिदास का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ था लेकिन, वे बचपन से ही पढ़ने-लिखने में बड़े निपुण थे। कक्षा में हमेशा प्रथम स्थान पर आते थे। इसके कारण उसके गुरु जी भी उससे अतीव प्रसन्न रहते थे। और यथासम्भव उसको उत्तम शिक्षा देने के लिए प्रयासरत् रहते थे।

एक दिन हरिदास गुरु के पास आए और बोले- 'गुरु जी! रामदास मुझसे ईर्ष्या करता है' रामदास उसी का सहपाठी था। पढ़ने में वह भी दक्ष था। वह कभी-कभी हरिदास के प्रश्नों के भी उत्तर दे देता था। इससे उसको लगता था कि वह उससे ईर्ष्या करता है।

गुरु जी ने जब यह सुना तो वे मन ही मन कुछ सोचकर बोले- 'अच्छा! मान लिया कि रामदास तुमसे ईर्ष्या करता है, इसलिए तू पीठ के पीछे उसकी निन्दा कर रहा है। तू अपनी तरफ क्यों नहीं देखता कि तू भी उससे जलने लगा है? पीठ पीछे किसी की निन्दा करना तेरी दृष्टि में अच्छा काम है क्या? अगर उसने गलत मार्ग अपनाया है तो क्या तुम भी गलत मार्ग अपनाओगे? इसलिए पहले तुम आत्मचिन्तन करो कि कहीं तुम भी तो बुराई के मार्ग पर नहीं चल रहे हो?'

यह बात हरिदास के समझ में आ गई। और उसने उसी क्षण दृढ़ संकल्प किया कि आज के बाद किसी की बुराई नहीं करेगा।

हरिदास की समझ में तो यह बात आ गई। लेकिन, मैं समझता हूँ कि उक्त समस्या एक हरिदास की नहीं है, अपितु हम सब हरिदासों की है। हम सबका भी कहीं न कहीं यही हाल है। हमें दूसरों की तिल मात्र बुराई तो तुरन्त दिखाई दे जाती है। लेकिन, स्वयं की पहाड़ जैसी बुराई दिखाई नहीं देती।

अतः हम सबको इस पर चिन्तन करना चाहिए जिससे हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी भी स्वर्ग बन जाएगी। इसलिए कहा भी गया है कि- **'कृपया ईर्ष्या की आग को बुझा दीजिए, नहीं तो यह जहाँ-जहाँ जाएगी, वहाँ का कोना-कोना नरक बना डालेगी।'**

४०. महान् शत्रु

क्रोध-मान-माया-लोभ-भय-जुगुप्सा-राग-द्वेष-जिद्द-शोक-ईर्ष्यादि ये कुछ ऐसे शब्द हैं जोकि अत्यन्त खतरनाक हैं। खतरनाक ही नहीं अपितु यह कहा, जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये व्यक्ति के

महानतम् शत्रु हैं। इनके समक्ष बाकी सभी शत्रु फेल हैं।

आजकल विभिन्न अखबारों में, टेलीविजन में, इण्टरनेट में अथवा जितने भी संचार के माध्यम हैं, उन सब में शायद ही कोई ऐसा दिन होता हो जिस दिन यह समाचार ना छपता हो कि अमुक व्यक्ति ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी या पुत्र ने ही पिता का गला दबा दिया, या पिता ने ही पुत्री का बलात्कार कर दिया, सगे भाई ने भाई को मार दिया इत्यादि अनेक समाचार पढ़ने-सुनने और देखने को मिल जाते हैं। जोकि अत्यन्त भयावह और खून के पवित्र रिश्तों तक को कलंकित करते हैं। और व्यक्ति के जीवन को नरक बना देते हैं। व्यक्ति कीड़े की तरह चौबीसों घण्टे कुलबुलाता रहता है। हमारे यहाँ स्वर्ग-नरक की बात की जाती है। मैं समझता हूँ कि ये काल्पनिक स्वर्ग-नरक तो पता नहीं हैं कि नहीं। लेकिन यहीं इसी लोक में मैंने अनुभव किया है कि जिस व्यक्ति के जीवन में प्रेम है, भाईचारा है, सम्मान है, शान्ति है, धैर्य है, साम्यभाव है, पति-पत्नी में प्रेम है, बड़े-बुजुर्गों के लिए सम्मान है। उसके लिए यहीं स्वर्ग है और जिसके जीवन में ये सब नहीं है, उसके लिए यहीं नरक है। कहा जाता है कि जिस घर में पति-पत्नी में प्रेम नहीं है। उससे बड़ा कोई नरक नहीं है इस दुनिया में। और यह बिल्कुल वास्तविक सत्य है। जिसे नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि उन दोनों की विचारधारा बिलकुल भिन्न होती है। न पति उसकी बात मानेगा न पत्नी उसकी बात मानेगी। छोटी-छोटी बातों पर भिड़ जाएंगे दोनों और दोनों एक-दूसरे को देखकर कीड़े की तरह कुलबुलाएंगे, मारेंगे-पीटेंगे, गालियाँ बकेंगे, एक दूसरे को शारीरिक तथा मानसिक दुःख देंगे। आप ही बताइए कि नरक आखिर और क्या होता है? नरकों में भी तो जीव को दुःख ही मिलता है। जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता लेकिन, ऊपर बतलाए गए नरक के द्वार स्वरूप क्रोधादि तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं और इनका फल भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

अभी कुछ दिन पहले मेरे एक मित्र मुझसे मिलने आए। ऐसे ही बातें हो रहीं थी कि उन्होंने बतलाया कि मेरे पड़ोस में एक सम्पन्न

परिवार रहता है। लेकिन इस समय उनका जीवन नरक बन गया है। मैंने जिज्ञासावश पूछा कि वो कैसे? तो उन्होंने बताया कि उनके एक ही लड़का है कोई- 16-17 वर्ष का। इकलौता लड़का होने के कारण माता-पिता उससे खूब लाड-प्यार करते हैं तथा उसकी प्रत्येक इच्छा को भी पूरी करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। इस कारण वह लड़का जिद्दी हो गया है। उचित-अनुचित सभी बातें मनवाने की जिद्द करता है। इस कार्य में उसकी माँ भी कुछ ज्यादा ही समर्थन करती है। इसको माँ की ममता कहो या उनका भी कुछ जिद्दी स्वभाव।

अभी कुछ दिन पहले लड़का कहने लगा- मुझे मोटर साईकल चाहिए वह भी बजाज कम्पनी की 'पलसर'। पिता ने यह बात सुनी तो वे कहने लगे देख बेटा! पहली बात तो यह है कि अभी तेरे पास न तो ड्राइविंग लाईसेंस है और न ही भारत सरकार के नियमानुसार तू अभी लाईसेंस बनवा सकता है। इसलिए अभी तू कुछ दिन और इन्तजार कर ले।

लेकिन लड़का अड़ गया नहीं मुझे तो अभी चाहिए तर्क दे दिया कि मेरे सभी दोस्तों के पास भी तो है। मुझे शर्म आती है उनके साथ चलने में। और मैं चला भी तो लेता हूँ। रही लाईसेंस की बात तो वो सब तो चलता है। सौ-पचास दे दो तो कोई नहीं रोकता।

यह सुनकर पिता ने कहा कि- 'देख बेटा हमारे पास कार है, ड्राइवर है तू एक काम कर जब भी तुझे जरूरत हो ड्राइवर को बोल दिया कर वह तुम्हें ले जाया करेगा। ये सब बातें लड़के की माँ भी सुन रही थी वह अपनी तुनक मिजाजी दिखाते हुए बोली- 'आप भी पक्के लालची हो क्या करोगे इस धन का? जब बच्चों के ही काम नहीं आया तो हमारे किस काम का है यह धन? दुनिया को देखो वे क्या-क्या नहीं करते अपने बच्चों के लिए और एक आप हो कि बच्चे को मोटर साईकल तक नहीं ले के दे सकते। और भी कई उदाहरण उसने आस-पड़ोस के दे दिए कि अमुक ने बेटे के लिए यह किया, अमुक ने वो किया इत्यादि।'

यह सब सुनकर पिता ने कहा– 'अच्छा! एक काम करो मैं इसको एक कार खरीद देता हूँ और एक ड्राइवर भी रख देता हूँ। यह कार से रोज स्कूल आया–जाया करें।'

लेकिन वे दोनों नहीं माने और बोले– 'चाहिए तो मोटर साईकल चाहिए और कुछ नहीं।

अब आप ही बताइए क्या पिता लालची था? लालची होता तो क्या वह 60 हजार की मोटर साईकल के बदले में पाँच लाख की गाड़ी खरीदता? और अन्त में पिता, पत्नी और बेटे की जिद्द के आगे हार गया और उन्होंने बेटे को मोटर साइकल दिलवा दी। और अब वह खूब मोटर साइकल चलाने लगा। लड़के की युवावस्था थी इस अवस्था में जोश अधिक होता है लेकिन, होश कम रहता है। एक दिन वह लड़का खूब जोश में गाड़ी बहुत तेज चला रहा था कि अचानक दूसरी तरफ से उसके सामने सब्जी से लदा हुआ एक ट्रक आ गया और मोटर साईकल उससे टकरा गई। जिससे लड़के की टाँग टूट गई और वो जीवन भर के लिए अपाहिज हो गया।

एक दूसरी घटना है– दिल्ली के गोविन्दपुरी क्षेत्र की। एक लड़के की सगाई होने वाली थी। लड़की वाले घर पहुँच गए थे। घर में खूब हर्षोल्लास था। लड़का भी सगाई के लिए तैयार हो रहा था। तभी लड़के ने देखा कि सूट के साथ टाई नहीं है। बस इतनी–सी बात की खातिर वह आग–बबूला हो गया और माँ–बाप से झगड़ पड़ा और बोला– 'मैं अभी जाता हूँ और पहले टाई लेकर आता हूँ। माँ–बाप ने बहुत समझाया कि बेटा टाई के बिना भी काम चल जाएगा। ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन, लड़का था जिद्दी, नहीं माना और उसी तरह गुस्से में उठाई मोटर साइकल और बिना हैलमेट लगाए ही निकल पड़ा घर से। पहले तो घर से निकलते ही कुछ दूरी पर उसे पुलिस वालों ने रोक लिया, जिससे उसका पारा और भी चढ़ गया। खैर, पुलिस वालों ने तो उसे किसी तरह छोड़ दिया, लेकिन कुछ ही दूर चलने पर उसका एक बस के साथ भयंकर एक्सीडेंट हो गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

अब आप ही बताइए क्या फायदा हुआ ऐसी जिद्द और गुस्से का? थोड़ी देर पहले जो घर स्वर्ग की तरह चमक रहा था, बन गया वह नरक।

४१. सच्ची भक्ति

बहुत से लोगों को देखा जाता है कि वे दूसरों को भक्ति का पाठ पढ़ाते रहते हैं, जबकि वे स्वयं न तो भक्ति की A B C D जानते हैं और न ही जानने का प्रयत्न करते हैं।

एक बार गुरु नानकदेव यात्रा करते हुए सुल्तानपुर पहुँचे। वहाँ उनके प्रति लोगों की दृढ़ श्रद्धा को देखकर वहाँ के काजी को उनसे ईर्ष्या हो गई। उसने सूबेदार दौलतखाँ के खूब कान भरे और शिकायत की कि वह कोई ढोंगी है, इसीलिए आज तक कभी मस्जिद में नमाज पढ़ने भी नहीं आया। सूबेदार भी कान का कच्चा था। उसने काजी का यकीन कर तुरन्त सिपाही के हाथ नानकदेव को बुलावा भेजा, किन्तु नानकदेव ने उस ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। सुबेदार ने पुनः सिपाही को भेजा। अबकी बार नानकदेव सिपाही के साथ आ गए। उन्हें देखते ही सूबेदार डाँटते हुए बोले– 'आपको समझ नहीं आता क्या? पहली बार बुलाने पर क्यों नहीं आए?'

यह सुनकर नानकदेव बोले– मैं खुदा का बन्दा हूँ, तुम्हारा नहीं। 'अच्छा! तो तुम खुदा के बन्दे हो। लेकिन क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि किसी व्यक्ति के मिलने पर पहले उसे सलाम किया जाता है? तुमने सलाम किया मुझे?'

नानकदेव बोले– 'मैं खुदा के अतिरिक्त और किसी को सलाम नहीं करता।' 'तब फिर ओ खुदा के बन्दे! मेरे साथ नमाज पढ़ने चल। सब पता चल जाएगा कि तुम कितनी खुदा की इबादत करते हो।' क्रोधित होकर सूबेदार बोला। और गुरु नानकदेव उसके साथ मस्जिद गए। सूबेदार और काजी तो नीचे बैठकर नमाज पढ़ने लगे, लेकिन गुरु

नानकदेव वैसे ही खड़े रहे। नमाज पढ़ते-पढ़ते काजी सोचने लगा कि आखिर उसने इस घमण्डी व्यक्ति को झुका ही दिया, जबकि सूबेदार का ध्यान घर की ओर लगा हुआ था। कारण यह था कि उस दिन अरब का कोई व्यापारी बढ़िया घोड़े लेकर उसके पास आने वाला था। वह सोच रहा था कि घोड़े बिकवाने के बदले में उससे कैसे अधिक से अधिक कमीशन लिया जाए। इसी उदेड़-बुन में लगा हुआ था सूबेदार।

नमाज खत्म होते ही जैसे ही वे दोनों खड़े हुए, तो उन्होंने नानकदेव को चुपचाप खड़े पाया। सूबेदार आग-बबूला होते हुए बोला- 'तुम सचमुच ढोंगी हो। खुदा का नाम लेते हो, मगर नमाज नहीं पढ़ते।'

यह सुनकर नानकदेव बोले- 'नमाज पढ़ता भी तो किसके साथ? क्या आप लोगों के साथ, जिनका स्वयं का ही ध्यान खुदा की ओर नहीं था? अब आप ही बताइए, क्या आपका ध्यान उस समय कमीशन लेने की ओर था कि नहीं? और ये आपके काजी जी तो उस समय मन ही मन इतने खुश हो रहे थे कि जैसे उन्होंने मुझे मस्जिद में लाकर बड़ा तीर मार लिया हैं।'

यह सुनते ही दोनों झेप गए और गुरु नानक के चरणों में झुककर क्षमा माँगने लगे।

४२. जाकी रही भावना जैसी

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

अर्थात् मन्त्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषी में, वैद्य में और गुरु में मतलब सीधा-सच्चा यह है कि जैसी आपकी भावना होगी उसी प्रकार का फल आपको प्राप्त होगा। हमारे यहाँ कहा जाता है कि **'कंकर-कंकर में शंकर हैं।'** अर्थात् प्रत्येक कण में भगवान् विद्यमान हैं। अगर आप पत्थर में भी भगवान् की भावना भाते हो तो वह आपके

लिए भगवान् है। और अगर आपकी भावना ही नहीं है तो चाहे आप चार धाम की यात्रा कर लो। सब व्यर्थ है।

मुगल काल की बात है। बादशाह अकबर का दरबार लगा हुआ था। उसी समय वहाँ संगीताचार्य तानसेन पधारे। बादशाह ने उनका यथोचित सम्मान किया और उनसे एक भजन प्रस्तुत करने का आग्रह किया।

संगीताचार्य ने भजन प्रस्तुत किया-

जसुदा बार-बार यों भाखै।
है कोऊ ब्रज में हितु हमारो, चलत गोपालहिं राखै॥

उक्त पद का अर्थ बादशाह की समझ में नहीं आया। उन्होंने दरबारियों से इसका अर्थ स्पष्ट करने को कहा। तब तानसेन ही बोले- 'जहाँपनाह' इसका अर्थ है- 'यशोदा बार-बार कहती है, क्या इस ब्रज में हमारा कोई ऐसा हितैषी है, जो गोपाल को मथुरा जाने से रोक सके।

यह सुनकर सर्वप्रथम सभा में उपस्थित अबुल फैजल फैज बोले- 'नहीं, नहीं! शायद आपको इसका अर्थ समझ में नहीं आया। इस पद्य में प्रयुक्त बार-बार का अर्थ 'रोना' है। अर्थात् यशोदा रो-रो कर कहती है।'

बीरबल बोले- 'मेरे विचार से तो बार-बार का अर्थ द्वार-द्वार है। संयोगवश रहीम कवि भी सभा में उपस्थित थे। वे बोले- 'नहीं, नहीं, बार-बार का अर्थ बाल-बाल अर्थात् 'रोम-रोम' है।'

इतने में वहाँ उपस्थित एक ज्योतिषी महाशय उठ खड़े हुए और जोश से भरकर बोले- मेरी दृष्टि से तो इनमें से एक भी अर्थ ठीक नहीं है। वास्तव में 'बार' का अर्थ 'वार' अर्थात् दिन है, यानी यशोदा प्रतिदिन कहती हैं।'

उक्त सभी बातें सुनकर बादशाह बड़े ही आश्चर्यचकित हो गए और सोचने लगे बड़ा ताज्जुब है कि एक ही शब्द के हर कोई

अलग-अलग अर्थ कर रहा है। और वे बोले, 'यह कैसे सम्भव है कि एक ही शब्द के इतने अर्थ हों।'

यह सुनकर रहीम कवि बोले- 'जहाँपनाह! एक ही शब्द के अनेक अर्थ होना यह कवि का कौशल है और इसे 'श्लेष' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी शब्द का अर्थ अपनी-अपनी परिस्थिति और चित्तवृत्ति के अनुसार लगाता है। मैं कवि हूँ और किसी भी काव्य का प्रभाव कवि के रोम-रोम पर होता है, इसलिए मैंने इसका अर्थ 'रोम-रोम' लगाया। तानसेन गायक हैं, उन्हें बार-बार राग अलापना पड़ता है, इसलिए उन्होंने 'बार-बार' अर्थ लगाया। फैजी शायर है और उन्हें करुणा भरी शायरी सुन आँसू बहाने का अभ्यास है, अतः उन्होंने इसका अर्थ रोना लगाया। बीरबल ब्राह्मण हैं। उनको घर-घर घूमना पड़ता है, इसलिए उनके द्वारा 'द्वार-द्वार' अर्थ लगाना स्वाभाविक है। बाकी बचे ज्योतिषी महोदय, तो उनका तो काम ही है- दिन-तिथि-ग्रह और नक्षत्रों आदि का विचार करना इसलिए उन्होंने इसका अर्थ 'दिन' लगाया। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

'जाकी रही भावना जैसी।'

४३. यथार्थ भी व्यवहार भी

दक्षिण भारत के किसी गाँव में एक चरवाहा (गायों को चराने वाला) रहता था। वह गाँव के सभी लोगों की गायें चराता था। गाँव में दो दर्शन शिरोमणि (दार्शनिक) भी रहते थे। उनमें से एक थे वेदान्तदर्शन के मर्मज्ञ तो दूसरे थे बौद्धदर्शन के मर्मज्ञ। चरवाहा इन दोनों की भी गायें चराया करता था।

एक दिन महीना पूरा होने पर चरवाहा वेदान्तमर्मज्ञ विद्वान् के पास गया और बोला- 'महात्मन्! महीना पूरा हो गया मैंने आपकी गायें चराई हैं। अतः आप मुझे मेरी मेहनत की मजदूरी दीजिए जिससे मेरा तथा मेरे परिवार का जीवन निर्वाह हो सके।'

यह सुनकर वेदान्ती बोला– 'अरे भले आदमी! क्या तुम जरा भी वेदान्त नहीं पढ़े हो क्या? इतना भी नहीं जानते वेदान्त में क्या लिखा है? चलों, नहीं जानते तो मैं ही तुम्हें बता देता हूँ। उसमें लिखा है कि–

सर्वं खलु इदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन।

अब तुम्हीं बताओं भला, जब सारा जगत् ब्रह्ममय है तो हम सब भी ब्रह्ममय हैं और जब हम सब ब्रह्ममय हैं तो कौन किसको मजदूरी देगा? सोचो तुम!

यह सुनकर चरवाहा बेचारा मन ही मन बहुत दुःखी हुआ। वह बेचारा क्या जाने इन दार्शनिक बातों को? और इसी उहापोह की स्थिति में वह पहुँचा दूसरे विद्वान् के पास और बोला– 'हे दर्शन शिरोमणि! मैंने आपकी गायें चराई हैं। महीना पूरा हो गया कृपया मुझे मेरी मजदूरी दे दीजिए?

यह सुनते ही वह बोला– 'अरे भले मानुष! क्या तुम्हें जरा भी ज्ञान नहीं है कि महात्मा बुद्ध ने क्या कहा है? अच्छा नहीं पता तो मैं ही तुम्हें बता देता हूँ। सुनो! उन्होंने कहा है कि– **''सर्वं क्षणिकम्''** और इसका अर्थ है कि इस दुनिया में जो कुछ भी है सब क्षणिक है। जो गायें तुमने चराई, वे तो कब की मर चुकी हैं। वे तो पहले क्षण में ही मर गई। अब जो गायें हैं, वे तो उनकी सन्तान हैं। तुम भी मर चुके हो। मैं भी मर चुका हूँ। तुम्हारा भी नया जन्म हुआ है, मेरा भी नया जन्म हुआ है, गायों का भी नया जन्म हुआ है। अब भला तुम ही बताओ जब ना तुम वो हो, ना मैं वो हूँ, ना गायें ही वे हैं? तो मजदूरी किस बात की?

यह सुनकर चरवाहा स्तब्ध हो गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। और इसी मकड़जाल में उलझा हुआ वह अपने घर की ओर जा रहा था। तभी उसे वहाँ रास्ते में एक अपना पुराना कोई परिचित सज्जन मिल गया। चरवाहे के उदास चेहरे को देखकर उसने उससे पूछा– 'क्या बात है, तुम इतने परेशान क्यों हो? इतना सुनते ही चरवाहा फूट पड़ा और उसने सारी रामकहानी उस सज्जन को बतला दी।' वह

व्यक्ति बड़ा ही समझदार, व्यवहारज्ञ और बुद्धिमान था। उसने मन ही मन चरवाहे की समस्या को सुलझाने की युक्ति सोच चरवाहे से कहा- 'अभी गायें तो तुम्हारे पास ही हैं ना। चरवाहे ने तुरन्त उत्तर दिया हाँ मेरे ही पास हैं। तो तुम एक काम करो तुम उनको अपने पास ही रखो। मालिकों के घर भेजो ही मत। यह कहकर उसने आगे की सारी योजना उसको समझा दी कि आगे कैसे क्या करना है।

सूर्य अस्त होने को हो गया लेकिन अभी तक वेदान्ती जी के घर गायें नहीं पहुँची। वेदान्ती बड़े चिन्तित हो गए और भागे-भागे पहुँचे चरवाहे के घर और पूछा- 'अरे ओ चरवाहे! क्या बात है? आज हमारी गाएं घर क्यों नहीं पहुँची?' यह सुनते ही चरवाहे ने उत्तर दिया- हे दर्शनश्रेष्ठ! कौन-सी गाएं? कैसी गायें? शायद आप वेदान्त दर्शन के उस सूत्र को भूल गए? **''सर्वं ब्रह्ममयं जगत्''** अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय है तो फिर भला कौन गायें देने वाला और कौन गाय लेने वाला? अतः आप अब अपने घर जाएँ और चिन्तन करें। क्योंकि दार्शनिक का काम तो वैसे भी चिन्तन करना ही होता है। और हाँ अगर हो सके तो चिन्तन के साथ-साथ मनन भी अवश्य करें और उसके मूल को समझकर थोड़ा बहुत व्यवहारज्ञ बनने का भी प्रयत्न करें। कहा भी जाता है कि- **'लोकव्यवहारज्ञो हि सर्वज्ञोऽन्यस्तु प्राज्ञोऽप्यवज्ञायक एव।'** अर्थात् वास्तव में लोकव्यवहार जानने वाला मनुष्य सर्वज्ञ के समान और लोकव्यवहार शून्य विद्वान् होकर भी लोक द्वारा तिरस्कृत समझा जाता है।

बात वेदान्ती की समझ में आ गई और वह बोला- 'तुम ठीक कहते हो भाई केवल दार्शनिक चिन्तन करने मात्र से कुछ नहीं होता। यथार्थ के साथ-साथ व्यवहार का ज्ञान होना भी आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। अतः ये लो अपनी मजदूरी।'

कुछ देर बाद बौद्ध दार्शनिक भी पहुँच गया चरवाहे के घर और कहने लगा- 'अरे ओ चरवाहे! क्या बात है? मेरी गायें अभी तक घर क्यों नहीं पहुँची।'

चरवाहा तो पहले से ही तैयार था और तुरन्त बोला- 'कौन-सी गायें? क्या आप महात्मा बुद्ध के वाक्य को भूल गए हो? वे तो कब की मर चुकी। देने वाला भी मर गया और उनको चराने वाला भी मर गया। अतः अब आप अपने घर जाओ और **'सर्वं क्षणिकम्'** का मन लगाकर जाप करो और उसे समझो।

यह सुनकर बौद्ध दार्शनिक सकपका गया। स्वयं का तर्क जाल स्वयं को फँसा गया। और वह सोचने को मजबूर हो गया। कुछ देर सोचकर वह बोला- 'अच्छा ठीक है भाई ये लो अपनी मजदूरी और मेरी गाएं मुझे लौटा दो।' और चरवाहे ने मजदूरी लेकर गायें लौटा दी।

अब आप ही बताइए कि क्या यथार्थ के साथ हमें व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए या नहीं? व्यवहार के बिना यथार्थ की मंजिल पर पहुँचना शायद सम्भव ही नहीं। इसीलिए हमेशा विचार के साथ-साथ आचार की भी बात की जाती है। दर्शन को हमने केवल मानसिक खेल बना लिया है, जो कि अत्यन्त घातक है। और जब तक यह मानसिक खेल और दर्शन की प्रतियोगिताएं चलती रहेंगी तब तक न धर्म-धर्म होगा, न दर्शन-दर्शन होगा और न यथार्थ-यथार्थ होगा।

४४. प्रेम की कैंची उधार

एक बार की बात है। एक गुरु और एक शिष्य जंगल में गंगा किनारे पर्णकुटी बनाकर रहते थे। गुरु की पर्णकुटी गंगा के दक्षिण की ओर थी और शिष्य की उत्तर की ओर।

एक दिन शिष्य अकेला बैठा विद्याध्ययन में लीन था। उसी समय कहीं से घुमता-घामता मणिकण्ठ नाम का नागराज उसके पास आकर बैठ गया। कुछ समय पश्चात् जब शिष्य ने अपनी आँखे खोली तो नागराज को समक्ष देखकर आश्चर्यचकित हो गया। अपने मन की पवित्रता, गुरु के उपदेशादि के प्रभाव से न तो वह उससे डरा और न ही वहाँ से भागा। बल्कि, अपने सरल स्वभाव और **'अतिथिदेवो भव'**

की उक्ति को चरितार्थ करते हुए उसने नागराज का स्वागत करते हुए कहा कि– 'आइए नाग देवता पधारिए बड़ी कृपा की आपने मुझ पर जो यहाँ पधारकर आपने मेरी कुटिया को पवित्र किया।'

यह सुनकर नागराज भी अतीव प्रसन्न हुआ और बोला– 'तो ठीक है। आज से हम दोनों मित्र हैं। सुखः दुख में एक–दूसरे के काम आएंगे। इस प्रकार नागराज शिष्य से खूब प्रेम–पूर्वक बातचीत करने लगा। धीरे–धीरे वह लगभग प्रतिदिन ही शिष्य से मिलने लगा। और दोनों में घनिष्टता बढ़ने लगी। मित्रता की ओर शिष्य का एक कदम आगे बढ़ता तो नागराज दो कदम आगे बढ़ता। धीरे–धीरे मित्रता इतनी प्रगाढ़ हो गई कि नागदेवता उसके गले से लिपटने लगा।

लेकिन, ये क्या हुआ? अब शिष्य को उससे डर लगने लगा। मणिकण्ठ तो प्रेम से सराबोर होकर शिष्य से प्रगाढ़ आलिंगन करता प्रेमी–प्रेमिका की तरह, लेकिन, मारे भय के शिष्य के प्राण सूखने लगते। परन्तु अब वह करे तो आखिर क्या करे? वैसे भी वह ठहरा साधु। साधुओं का हृदय तो सरल एवं कोमल होता ही है। कहा भी जाता है कि–

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु, दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरते ज्योत्स्नां, चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः॥

अर्थात् सज्जन पुरुष गुणहीनों पर भी दया करते हैं। जैसे चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर से अपनी चाँदनी को नहीं सिकोड़ता।

उधर मणिकण्ठ का साहस इतना अधिक बढ़ गया कि वह शिष्य के गले में घण्टों लिपटा रहता। मारे भय के शिष्य की मनोदशा बड़ी चिन्तनीय थी। जब तक मणिकण्ठ वहाँ रहता, उसके प्राण–पखेरू मानो उड़े रहते। इस प्रकार दिनोदिन उसका शरीर मारे चिन्ता के बहुत कमजोर हो गया और वह ऐसा लगने लगा जैसे सालों से बीमार है।

संयोगवश एक दिन टहलते-टहलते गुरुजी उसकी कुटिया पर आ गए। उनके आने का एक कारण यह भी था कि बहुत दिनों से शिष्य उनसे मिलने नहीं गया था। गुरुजी ने उसे देखते ही तुरन्त पूछा- 'क्या कारण है कि तुम इतने कमजोर हो गए हो? कुशल मंगल तो है?'

शिष्य गहरी सांस लेते हुए बोला- 'गुरुजी! जिसकी साँप से प्रीति हो भला उसका कुशल मंगल कहाँ?' और इसके बाद शिष्य ने सारी आपबीती गुरुजी को सुनाई।

गुरुजी थे बड़े ही विद्वान् और बुद्धिशाली। अतः वे मन ही मन सोचने लगे कोई ऐसी युक्ति जिससे शिष्य की समस्या का समाधान भी हो जाए और न ही किसी दूसरे का भी अहित हो। क्योंकि वास्तविक गुरु तो निरन्तर शिष्य के हित में ही लगे रहते हैं। चाहे वह हित लौकिक हो अथवा पारलौकिक। कहा भी जाता है कि- **'को गुरुः? अधिगततत्त्वः शिष्यहितायोद्यतः सततम्।'** अर्थात् जिसने स्वयं तत्त्व को जान लिया है अर्थात् यथार्थ को जान लिया है और जो निरन्तर शिष्यों के हित के लिए अहर्निश तत्पर रहता है। उसे गुरु कहते हैं।

कुछ देर सोचने के बाद गुरुजी बोले- 'तुम नागराज से मित्रता रखना चाहते हो या उसका अन्त करना चाहते हो?'

शिष्य बोला- 'गुरुदेव! मैं इस मित्रता का अन्त करना चाहता हूँ। आप तो कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। अर्थात् मेरी समस्या का समाधान भी हो जाए और मणिकण्ठ का भी कोई नुकसान न हो।'

यह सुनकर गुरुजी बोले- 'तो इसमें इतनी चिन्ता की क्या बात है? बड़ा ही सीधा-सच्चा और सरल उपाय है। उधार को प्रेम की कैंची कहते हैं। इसलिए यदि किसी से मित्रता तोड़नी हो तो उससे उधार माँगना शुरू कर दो। वर्षों की मित्रता क्षण भर में खत्म हो जाएगी।'

गुरुजी की बात शिष्य की समझ में आ गई। इसके बाद गुरुजी भी अपनी कुटिया की ओर चले गए। अगले दिन जैसे ही मणिकण्ठ

आया तो शिष्य ने कहा– 'मित्र यदि कुछ दिनों के लिए आप अपनी मणि मुझे उधार दे सको तो मेरा बड़ा ही उपकार हो। मुझे इसकी बड़ी आवश्यकता है।' इतना सुनना था कि मणिकण्ठ बात को इधर–उधर घुमाते हुए बोला– 'मित्र! आज मुझे एक विवाह समारोह में जाना है, अतः मैं बहुत जल्दी में हूँ। आज तो मैं आ भी नहीं रहा था, लेकिन मैंने सोचा कि कहीं तुम मेरी प्रतीक्षा न करते रहो, इसलिए बताता जाऊँ कि आज मैं नहीं आ सकूँगा। और हाँ कल अवश्य ही मैं तुम्हारी बात पर गौर करुँगा।'

और इतना कहकर मणिकण्ठ वहाँ से ऐसा नौ–दो–ग्यारह हुआ कि पुनः कभी लौटकर नहीं आया। शिष्य तो चाहता ही यही था। इसीलिए कहते हैं कि– 'उधार प्रेम की कैंची है।'

मित्रों! इस कहानी से हमें प्रमुख दो शिक्षाएं मिलती हैं।

1. एक तो यह कि गुरु का महत्त्व हमारे जीवन में बहुत अधिक होता है। कहा जाता है कि–

कला बहत्तर पुरुष की, जामे दो सरदार।

एक जीव की जीविका, दूजा जीवोद्धार।।

जीविका की कला सिखाने वाले गुरु तो आज पग–पग पर कुछ दान–दक्षिणा देकर आसानी से सुलभ हो जाते हैं। और हम उन्हें ही गुरु मान भी लेते हैं। लेकिन वास्तविक गुरु तो वही होता है जो हमें उक्त दोनों कलाओं में पारंगत करे। अतः हमें गुरु बड़ा ही सोच–समझकर बनाना चाहिए।

2. माता–पिता और गुरु के बाद मैं समझता हूँ कि अगर हमारे जीवन में किसी का महत्त्व है तो वह है– 'मित्र का!' अतः हमें मित्र भी खूब सोच–समझकर बनाना चाहिए। ये नहीं कि अगर आपका सरल स्वभाव है तो आप जिस–किसी को मित्र बना लो। और बाद में पछताते रहो। अतः यहाँ भी हमें अपनी बुद्धि और विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए।

४५. अनुभव जरूरी

बहुत पहले की बात है। किसी गाँव में बारह विद्वान् रहते थे। एक दिन वे सभी किसी शास्त्र-सभा में भाग लेने के लिए जंगल के रास्ते से किसी दूसरे गाँव जा रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक नारियल के पेड़ पर पके हुए नारियल लगे हुए हैं। उन्हें देखते ही वे सभी नारियल खाने के लिए लालायित हो गए। बस फिर क्या था? उन्होंने अपने एक साथी को पेड़ पर चढ़ा दिया नारियल तोड़ने के लिए। वह नारियल तोड़-तोड़कर लगा नीचे गिराने।

संयोगवश जहाँ वह नारियल गिरा रहा था, उस जगह पर घास में दो साँप बैठै थे। जैसे ही नारियल गिरने लगे वे दोनों अपनी जान बचाने के लिए घास में से निकलकर नारियल के पेड़ पर चढ़ने लगे। ऊपर चढ़े हुए विद्वान् ने जब यह देखा तो वह चिल्लाया- साँप-साँप! इन्हें मारो।' वरना ऊपर चढ़कर ये मुझे डस लेंगे। नीचे खेड़े विद्वान् साथी दूर हट गए और वहीं से पत्थर मारने लगे, लेकिन अधिक दूरी होने के कारण एक भी पत्थर साँपों को नहीं लगा। यह देखकर ऊपर वाला विद्वान् फिर चिल्लाया- अरे! तुम सब नजदीक आकर क्यों नहीं इन्हें मारते? और अगर तुम इनसे डरते हो तो शीघ्र ही कोई अन्य उपाय करो। जिससे कि मेरे प्राणों की रक्षा हो।

नीचे खड़े सभी विद्वान् देखने लगे एक-दूसरे की ओर। कुछ देर तक सोचने के बाद जब उन्हें कुछ भी नहीं सूझा कि क्या करें? तो लगे सभी अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने। और ऊपर चढ़े हुए साथी को उपदेश देने लगे।

पहला बोला- देखो, तुम रोओ मत। मुसीबत में धैर्य धारण करना चाहिए।

दूसरा बोला- इस समय तुम भगवान् से प्रार्थना करो। वे बड़े ही दयालु हैं, वे सभी की रक्षा करते हैं। तुम्हारी भी अवश्य करेंगे।

तीसरा बोला– अगर साँप तुम्हारे पास पहुँच भी जाएं तो तुम उन्हें नारियल से मारना।

चौथा बोला– शास्त्रों में तो स्पष्ट लिखा ही है कि मनुष्य को स्वावलम्बी होना चाहिए। अतः तुम अपनी रक्षा स्वयं करो।

पाँचवा बोला– घबराओं मत, सभी साँप विषैले नहीं होते। शायद वे तुम्हें काटें भी नहीं।

छठा बोला– तुम बिलकुल भी चिन्ता मत करो। अगर साँपों ने तुम्हें काट भी लिया तो हम तुम्हें अच्छे से अच्छे अस्पताल में ले जाएंगे।

सातवाँ बोला– तुम चिन्ता बिलकुल मत करो। शास्त्रों में यह भी स्पष्ट लिखा है कि– जो भाग्य में होता है वही होता है। तुम एक काम करो ऊपर से नीचे कूद जाओ।

अब आप समझ सकते हैं कि नारियल के पेड़ की ऊँचाई कितनी होती है? अगर वह कूदता तो क्या होता? प्राण न भी जाते तो हाथ–पैर अवश्य ही टूट जाते। अतः वह नीचे नहीं कूदा।

तदुपरान्त अन्य विद्वानों के मन में भी जी–जो आया उन्होंने कहा। लेकिन उसको बचाने की कोई उचित युक्ति किसी ने नहीं सोची। और असल बात तो यह थी कि डर के मारे स्वयं उनके होश उड़ रहे थे। डर के कारण वे एक कदम आगे बढ़ने तक की हिम्मत जुटा नहीं पा रहे थे। लेकिन अपनी कमजोरी को वे न तो प्रकट करना चाहते थे और न ही स्वीकारना चाहते थे। और अब वे उल्टा अपने साथी पर ही दोष गढ़ने लगे कि– क्या जरूरत थी इसे ऊपर चढ़ने की? हम तो फल बाजार से खरीद कर भी खा सकते थे।

अब तक दोनों साँप ऊपर वाले विद्वान् के काफी नजदीक पहुँच चुके थे। नीचे खड़े विद्वानों ने जब यह देखा तो वे मारे डर के इधर-उधर भागने लगे। संयोगवश उसी समय वहाँ पर एक जगंल में काम करने वाला माली आ गया। उसने विद्वानों की वेशभूषा आदि से तुरन्त अनुमान लगा लिया कि अवश्य ही ये विद्वान् पण्डित हैं। और किसी बात से डरे हुए हैं। उसने उनसे पूछा- पण्डित जी! कुशल मंगल तो है?

घबराते हुए सभी ने एक स्वर में कहा- अरे! कुशलमंगल कहाँ! हम बहुत भारी मुसीबत में फँसे हुए हैं। और उन्होंने सारी बात माली को बता दी।

यह सुनकर माली बोला- तो आप लोग भाग क्यों रहे हैं? अपने साथी को बचाने का कोई उपाय क्यों नहीं करते? अगर आपको डर लगता है तो आओ मेरे साथ।

इतना कहकर माली ने तुरन्त आपना ओढ़ा हुआ कम्बल उतारा और कम्बल का एक कोना स्वयं पकड़ा और बाकी के तीन कोने तीन विद्वानों को पकड़ा दिए और कहा कि कस के पकड़ना, छूटना नहीं चाहिए।

जब कम्बल छत की तरह तन गया तब माली ने ऊपर वाले विद्वान् को कहा- आप केवल कम्बल पर कूद जाएं। आपको चोट भी नहीं लगेगी और आप साँपों से भी बच जाएंगे। और उसने ऐसा ही किया। वह कम्बल पर कूद गया और उसके प्राण बच गए। इस प्रकार जो काम सारे विद्वान् नहीं कर सके वही काम माली के अनुभव ने कर दिखाया। इसीलिए कहा जाता है कि ज्ञान से भी अधिक महत्त्व अनुभव होता है। और यह अनुभव हमारे बड़े-बुजुर्गों के पास खूब होता है। जिसे हम सब को लेना चाहिए।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि किताबी ज्ञान के साथ-साथ हमें व्यवहारिक ज्ञान भी रखना चाहिए। क्योंकि, व्यवहारिक ज्ञान के बिना हमारी जीवन रूपी गाड़ी चलनी सम्भव नहीं है। और वह

व्यवहारिक ज्ञान हमें मिलता है अनुभवों से।

इस कहानी से हमें एक शिक्षा यह भी मिलती है कि हमें कब क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए कुछ कहने या करने का भी उचित स्थान व समय होता है। जिसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए कहा भी जाता है कि– **'उपदेशो यथाकालम्।'**

४६. प्रायश्चित्त का फल

उत्तर प्रदेश में एक गाँव/कस्बा है– बाराबंकी। एक दिन वहाँ एक अजीबोगरीब घटना घटी। दिन भर कस्बे के बच्चे आँख-मिचौली खेलते रहे। उस दिन बच्चों ने जैसा खेल खेला शायद ही पहले कभी वैसा खेल खेला हो। हुआ यह कि उस दिन दो अनजान बालक भी उनके खेल में सम्मिलित हो गए थे जो बहुत अच्छा खेलते थे। कौन थे, कहाँ से आए थे, क्यों आए थे, ये सब जानने की शायद बच्चों को कोई आवश्यकता भी नहीं थी। क्योंकि उनके लिए तो मात्र इतना ही पर्याप्त था कि वे खेलते बहुत अच्छा थे। अतः गाँव के सभी बालक दिनभर उनसे खेलते-खेलते ऐसा घुल-मिल गए कि कोई कह भी नहीं सकता था कि ये बालक अनजान हैं और कहीं बाहर से आए हैं। अपितु ऐसा आभास होता था कि ये तो सदा से ही इस कस्बे के निवासी हो।

उसी रात को एक घटना घटी। और वह घटना यह थी कि अचानक गाँव में कोलाहल मच गया, चोर! चोर! पकड़ो! पकड़ो!

कोलाहल सुनकर सभी गाँव वाले एकत्रित हो गए। तभी भीड़ में से किसी आदमी ने एक बालक का हाथ पकड़कर कहा यही चोर है।

तुरन्त दूसरा भी बोला– हाँ! मैंने भी इसे घर से बाहर निकलते हुए देखा है।

तीसरा बोला– हाँ, इसके दो साथी भी थे। वे चोरी का सारा माल लेकर नो–दो–ग्यारह हो गए। मैंने अपनी आँखों से उन्हें भागते हुए देखा है।

भीड़ में बहुत लोग खड़े थे, लेकिन किसी ने भी यह सोचने का प्रयत्न नहीं किया कि वास्तव में यह बालक चोर है या नहीं। अपितु सभी ने एक स्वर में कह दिया कि यही बालक चोर है। क्योंकि पब्लिक की तो आदत ही होती है– भेड़ चाल की। जैसे एक भेड़ को देखकर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी और क्रमशः सारी उसी का अनुकरण करने लगती हैं। ठीक वैसे ही। अतः अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय हुआ कि इस बालक को पुलिस के हवाले कर दिया जाए।

पुलिस थाने मे सूचना दी गई। पुलिस आई और बालक को पकड़कर ले गई। यहाँ एक आश्चर्यचकित करने वाली बात और भी थी कि वह बालक भी न तो कुछ बोला। बस अवाक् खड़ा सारा खेल देखता रहा। जैसे सच में ही वहाँ कोई खेल चल रहा हो।

थाने जाने के बाद उस बालक पर एफ.आई.आर. दर्ज हुई। मामला कोर्ट में पहुँचा, मुकदमा चला और अन्ततोगत्वा उस बालक को पाँच वर्ष की कैद की सजा हो गई।

एक दिन अचानक न जाने उस बालक के दिमाग में क्या आया कि वह जेल से भाग गया। उसे बहुत जोरों की भूख लगी थी और वह भागते–भागते एक झोपड़ी में पहुँच गया। और अन्दर जाते ही उसने कहा– मुझे कुछ खाने को दो। मैं बहुत भूखा हूँ। संयोगवश उस झोपड़ी में एक बहुत ही गरीब आदमी रहता था। उसने उत्तर दिया– बेटा! मैं तुम्हें खाने को क्या दे सकता हूँ। हम तो स्वयं भूखे हैं। मेरा बेटा दवा न मिलने के कारण मरणासन्न है। बताओ मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ।

यह सुनकर बालक का मन द्रवित हो उठा और वह अपनी भूख–प्यास सब भूल गया। और सोचने लगा कि किस प्रकार इस व्यक्ति की सहायता की जाए? क्योंकि परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव ही कुछ

ऐसा होता है। कहा भी जाता है कि–

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

वृक्ष परोपकार के लिए फल देते हैं, नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं, गायें परोपकार के लिए दूध देती हैं, यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है, परोपकार के बिना शरीर की सफलता नहीं मानी जा सकती।

तभी उस बालक ने सुना कि बाहर मुनादी हो रही है कि एक बालक जेल से भाग गया है। अगर कोई व्यक्ति उस बालक को पकड़वाएगा तो उसे पूरे पाँच हजार रुपये इनाम में मिलेगा।

यह सुनकर बालक ने मन ही मन एक योजना बनाई और उस व्यक्ति से बोला कि आप मुझे पकड़वा दें और ईनाम की राशि ले लें।

यह सुनकर वह व्यक्ति बोला– मैं अपने स्वार्थ के लिए तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँ, ऐसा करने को मेरा मन नहीं मानता। आखिर तुम भी तो किसी के बालक हो।

बालक बोला– देखो, मुझे तो एक न एक दिन पकड़े ही जाना है और तुम न सही तो कोई और मुझे पकड़वाएगा। और इनाम वह ले लेगा। और मेरी कैद की अपेक्षा तुम्हारे पुत्र के प्राणों का मूल्य अधिक है। कैद तो एक न एक दिन खत्म हो ही जाएगी। लेकिन, अगर तुम्हारे पुत्र के प्राण चले गए तो वो दोबारा नहीं आ सकते। अतः तुम मुझे थाने में ले चलो। और अन्त में वह व्यक्ति बालक को पकड़वाने के लिए तैयार हो गया और उसने उसे पकड़वा भी दिया तथा इनाम भी ले लिया।

अब इस बालक के मुकदमें की फाइल दोबारा खुल गई क्योंकि थानेदार नया आ गया था। वह पुनः सारी बातें पूछने लगा बालक से कि कैसे तुम बन्द हुए थे? तुम्हारा अपराध क्या था? इत्यादि।

बालक क्रमशः हर प्रश्न का उत्तर देने लगा। उस बालक के उत्तरों को सुनकर अचानक उस व्यक्ति को कुछ याद आया। वह तुरंत बालक के चरणों में गिर पड़ा और कहने गला– बेटा! मुझे माफ कर दो। अपने हाथों की हथकड़ी मुझे पहना दो। और तुम स्वतन्त्र होकर अपने घर जाओ।

यह सब देखकर थानेदार भी सकपका गया और बोला– अरे! ओ बुढे, ये थाना है तेरे घर की पंचायत नहीं है कि जो मरजी कर लिया। इस बालक ने चोरी की है। अतः दण्ड भी यही भुगतेगा।

यह सुनकर वह व्यक्ति बोला– साहब जी! चोर यह बालक नहीं, अपितु मैं हूँ। असल में जिस चोरी के अपराध में इस निर्दोष को पकड़ा गया था, वह चोरी मैंने की थी। मैंने और मेरे साथियों ने इसे फँसाया था। आज ये सारी बातें सुनकर मुझे अपने पापकर्म की याद आ गई। मैंने ही इसे बिना अपराध के अपराधी बनाया था और इसकी महानता देखो इसने आज मुझ अपराधी पर ही दया की है। केवल मेरे पुत्र के प्राणों को बचाने के लिए यह स्वयं मेरे साथ आया है। अतः हे थानेदार साहब! अब बिना बिलम्ब किए आप इसे छोड़ दीजिए और मुझे पकड़ लीजिए। और बेटा, तुम जाओ और अगर मेरे बीमार बेटे के लिए कुछ कर सको तो करना वरना, छोड़ देना उसे अपने हाल पर।

यह सारी घटना न्यायालय पहुँची। उस असली चोर के पश्चाताप और अपनी गलती को स्वीकार करने के कारण जज साहब ने दोनों को एक साथ छोड़ दिया।

४७. सत्य की जीत

यथा चित्तं तथा, वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः।
चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता॥

सज्जनों के जैसा मन में होता है वैसा ही वचन में और जैसा वचन में होता है वैसी ही उनकी क्रिया होती है। इस प्रकार मन, वचन

और क्रिया में सज्जनों के एकरूपता पायी जाती है।

उक्त श्लोक का भावार्थ यही है कि व्यक्ति के मन, वचन और काम में समानता होनी चाहिए। यह नहीं कि मन में कुछ चल रहा है, बोल कुछ और रहा है, और कर कुछ और कर रहा है। यह स्थिति बड़ी खतरनाक होती है, मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है। कहा भी जाता है कि-

मन मैला तन उजला, बगुले जैसा भेख।
वासे तो कौआ भला, बाहर भीतर एक॥

इस सन्दर्भ में मैं एक छोटी-सी कहानी यहाँ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

प्राचीन समय में उत्तर भारत में एक बड़े ही दयालु, सत्यनिष्ठ और न्यायप्रिय राजा थे। वे स्वयं राज्य में घूम-घूमकर प्रजा का हाल-चाल व राज्यव्यवस्था सुचारू रूप से चल रही है अथवा नहीं यह देखते थे।

एक बार वे यह देखने के लिए कि राज्य की जेल में किसी व्यक्ति के साथ अमानवीय व्यवहार तो नहीं हो रहा है जेल में गये।

संयोगवश उसी दिन चार नए कैदी जेल में आए थे। राजा ने सोचा क्यों न इन्हीं से पूछताछ की शुरुआत की जाए? अतः उन्होंने पहले कैदी से पूछा, 'तुमने क्या अपराध किया है?'

वह बोला- महाराज, मैने तो कोई अपराध नहीं किया। मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। असल में हुआ यह कि आपका थानेदार असली गुनाहगार को तो पकड़ नहीं पाया और अपनी असफलता छिपाने के लिए मुझ पर झूठा इल्जाम लगाकर मुझे सजा दिलवा दी।

इसके बाद राजा ने दूसरे कैदी से वही सवाल पूछा। वह बोला- महाराज, बड़ा अनर्थ हो रहा है। मैं भी निर्दोष हूँ। असल में बात यह है कि थानेदार हमारा पड़ोसी है और एक दिन उसकी पत्नी और मेरी पत्नी में किसी बात पर कहा-सुनी हो गई। बस उसी दिन से थानेदार मुझे

अपना दुश्मन समझने लगा। अपनी दुश्मनी निकालने के लिए ही उसने मुझ पर झूठा इल्जाम लगाकर मुझे फँसा दिया और सजा दिलवा दी।

अब राजा ने तीसरे कैदी से भी वही सवाल पूछा।

वह बोला– महाराज, घोर अनर्थ हो रहा है आपके राज्य में। आपका कोतवाल मुझ से रिश्वत माँग रहा था। जब मैंने उसे रिश्वत नहीं दी तो उसने मुझे भी झुठे आरोप लगाकर फँसा दिया।

राजा ने तुरन्त बड़े अधिकारियों को बुलाया और पूछा कि क्या ये सत्य कह रहे हैं? इससे पहले तो हमारे राज्य में ऐसा काम कभी नहीं हुआ। फटाफट जाओ और हकीकत का पता लगाओ।

चौथा कैदी विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर खड़ा था। आगे बढ़कर राजा ने उससे भी वही प्रश्न किया जो बाकी के तीनों से किया था। लेकिन कोई जबाव न देकर वह उसी तरह सिर झुकाए खड़ा रहा। राजा ने थोड़ा झुंझलाकर कहा– 'क्या तुमने मेरा प्रश्न सुना नहीं? वह बोला– अच्छी तरह सुन लिया महाराज! लेकिन, मैं सोच रहा हूँ कि क्या जबाब दूँ और कैसे दूँ। सिर झुकाए ही वह बोला।

यह सुनकर राजा बोला– तुम निर्भय होकर सत्य बोलो। जो तुम्हारे साथ हुआ वह सच-सच बताओ। डरने की कोई जरुरत नहीं है। अगर तुम्हारे साथ कोई अन्याय हुआ होगा तो तुम्हें अवश्य ही न्याय मिलेगा।

वह बोला– महाराज, मैं आपके राज्य का एक गरीब लकड़हारा हूँ, घर में मेरी माँ बीमार थी। उसकी जान बचाने के लिए दवाई चाहिए थी। दवाई के लिए पैसे मेरे पास थे नहीं। मैं पैसे के लालच में इन तीनों चोरों के साथ मिल गया। इन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि तुम्हें खूब सारे रूपये मिलेंगे।

अतः मैंने भी इनके साथ मिलकर चोरी की है। चोरी करना महान् अपराध है और अपराध की सजा मिलनी ही चाहिए। इसलिए

मुझे अपनी सजा से कोई शिकायत नहीं है।

चौथे कैदी की बात सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने गौर से देखा और अनुभव किया कि उसकी बातों में पश्चाताप झलक रहा है। उन्होंने उसे न सिर्फ तुरन्त रिहा कर दिया अपितु उसे जेल में ही सिपाही की नौकरी पर रख लिया। और उन तीनों को सख्त से सख्त सजा देने का निर्देश दे दिया।

इस कहानी से हम सबको यही शिक्षा लेनी चाहिए कि सदा सत्य का आचरण करना चाहिए।

४८. मित्र का लक्षण

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

अर्थात् जो पाप से बचाता है, हित में लगाता है, दुर्गुणों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति के समय साथ देता है अर्थात् मुसीबत के समय साथ नहीं छोड़ता, सन्तों ने उसे ही सद्मित्र कहा है।

हमारे देश में सुक्तियों, कथाओं, कहानियों और सुभाषितों का महत्त्व प्राचीन काल से ही रहा है और वर्तमान में भी है तथा भविष्य में भी रहेगा। पहले तो इन्हीं के माध्यम से बच्चों को विद्या का अध्ययन कराया जाता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं तक को इन्हीं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। विष्णुशर्मा का 'पञ्चतन्त्र' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। गूढ़ एवं गम्भीर बात भी इनके माध्यम से ऐसी सरल-सरस और मधुर शैली में समझा दी जाती है कि शायद, ही कोई मनोयोग से सुनने-समझने के बाद भूलता हो। इसीलिए इन्हें रत्नों तक की संज्ञा प्रदान की गई है-

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञा विधीयते।।

अतः यह जग जाहिर (संसार प्रसिद्ध) सत्य है कि उक्त विधाओं का महत्त्व किसी से छिपा हुआ नहीं है। उपरोक्त श्लोक में मित्र के लक्षण बतलाए गए हैं। अब जरा हम वर्तमान परिस्थिति को देखें तो बिलकुल विपरीत परिस्थिति दिखाई देती है। अच्छे-अच्छे, बड़े-बड़े घर बर्बाद हो जाते हैं, पापकार्यों में प्रवृत्त कराने वाले मित्र तो पग-पग पर मिल जाते हैं, लेकिन इन पापकार्यों से बचाने वाला शायद ही कोई विरला मिलता हो। अतः उक्त श्लोक से शिक्षा प्राप्त करके हम सबको अपने कर्तव्य को समझना चाहिए। इस सन्दर्भ में मैंने एक कहानी पढ़ी थी। मैं यहाँ उसको लिखने का प्रयत्न करूँगा।

प्राचीन समय की बात है। मध्यप्रदेश की चम्बल घाटी के बीहड़ में एक वटवृक्ष पर कबूतर और कबूतरी का जोड़ा रहता था। संयोगवश एक दिन ऐसा आंधी-तूफान आया कि जंगल के बड़े-बड़े पेड़ तक हिल गए और उनके घोंसले का एक-एक तिनका हवा में उड़ गया। वे निरीह पक्षी बेघर हो गए। लेकिन, अच्छी बात यह हुई के उनको किसी प्रकार की शारीरिक हानि नहीं हुई। और जैसे ही मौसम साफ हुआ, वे दोनों पुनः अपना घोसला बनाने के बारे मे विचार-मन्थन करने लगे।

कबूतर बोला- यहाँ से कुछ ही दूर मैंने एक खण्डहर देखा है, अब हम अपना घोंसला वहीं बनाएंगे। क्योंकि उसके पास से नदी बहती है। अतः वहाँ खाने-पीने की भी कमी नहीं आएगी। और दूसरी बात यह है कि अब हमें अधिक सुरक्षित स्थान की आवश्यकता है, क्योंकि आने वाले दिनों में तुम्हें प्रसव भी होने वाला है।

यह सुनकर कबूतरी बोली- वो सब तो ठीक है। लेकिन, मुझे यह बताओ कि उस नए स्थान पर क्या तुम्हारा कोई मित्र भी है कि नहीं? क्योंकि बड़े-बुजुर्गों ने यह स्पष्ट कहा है कि- जहाँ अपना कोई मित्र या सम्बन्धी न रहता हो वहाँ एक पल भी नहीं रहना चाहिए। भले

ही चाहे वहाँ सोने-चाँदी और धन की वर्षा ही क्यों न होती हो। अगर वहाँ घोंसला बनाना है तो पहले यह देखो कि वहाँ कोई अपना हितैषी भी है या नहीं। और अगर नहीं है तो पहले वहाँ अपना हितैषी बनाओ।

कबूतर की समझ में यह बात आ गई कि हमें अपने बड़े-बुजुर्गों की बात अवश्य माननी चाहिए। और वह निकल पड़ा मित्र की तलाश में।

खण्डहर के पास ही एक फूलों से लदा हुआ बड़ा ही सुन्दर बगीचा था। तभी उसकी नजर पड़ी कि कुछ मधुमक्खियाँ गुलाब की फुलवारी का रास्ता भूल गई हैं और बबूलों पर भटक रही हैं। कबूतर ने बिना समय बर्बाद किए तुरन्त उन्हें फुलवारी का रास्ता बतलाया तो मधुमक्खियाँ भी तुरन्त एक स्वर में बोली- 'जो मुसीबत में काम आए उसे ही सच्चा मित्र कहते हैं।' इसलिए हे कबूतर! आज से तुम हमारे प्रिय मित्र हो। यदि भविष्य में कहीं भी, कभी भी आपको हमारी आवश्यकता पड़े तो हमें अवश्य याद करना। हम तुरन्त दौड़ी चली आएंगी।

यह सुनकर कबूतर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और आगे चल दिया। अभी कुछ ही दूर गया था कि उसने देखा एक बन्दरिया अपने बच्चे को सुलाने का प्रयत्न कर रही थी। पर बच्चा था कि सो ही नहीं रहा था। कबूतर तुरन्त पहुँच गया बन्दरिया के पास और अपनी गुटर गूँ-गुटर गूँ की लोरी सुनाने लगा तथा अपने पंखों से हवा भी झलने लगा। बस फिर क्या था बालक तो पलक झपकते-झपकते तुरन्त सो गया।

यह देखकर प्रसन्नचित्त हुए बन्दरिया बोली- जो उलझे काम सुधारे वही सच्चा मित्र होता है।' अतः हे कबूतर ! आज से तुम मेरे मित्र हुए। यदि कभी मेरी आवश्यकता पड़े तो मुझे अवश्य याद करना।

यह सुनकर कबूतर प्रफुल्लित हो गया और मस्त हवा में उड़ता हुआ कबूतरी के पास लौट आया। सारी बात उसने कबूतरी को सुना दी कि अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैंने खण्डर के आस-पास ही दो

मित्र बना लिए हैं। और फिर उन दोनों ने मिलकर खुशी-खुशी वहाँ अपना घोंसला बनाया और उसमें रहने लगे। कुछ समय उपरान्त कबूतरी का प्रसव काल आ गया उसने बहुत ही सुन्दर दो अण्डे दिए। कुछ समय पश्चात उन अण्डों में से चूजें भी निकल आए। और वे सब बड़े मजे से सुखपूर्वक वहाँ अपना समय व्यतीत करने लगे।

अचानक एक दिन कुछ बहेलिए घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। रात्रि का समय था। गहन अन्धेरा हो गया था। अतः उन लोगों ने परस्पर विचार किया कि क्यों न रात्रि में यहीं रुका जाए, और अन्त में उन्होंने रात्रि वहीं बिताने का निश्चय किया। अन्धेरा दूर करने के लिए संयोगवश उन्होंने जमीन पर उसी जगह आग सुलगा दी जहाँ कबूतर का घोंसला था।

आग सुलगने के कारण अत्यन्त कडुआ धुआँ घोंसले में पहुँचा तो कबूतर के बच्चे तिलमिला उठे और लगे शोर मचाने। उनका कोलाहल सुनकर एक बहेलिया बोला- 'लगता है, ऊपर कोई घोंसला है और जरूर उसमें किसी पक्षी के बच्चे हैं।'

तुरन्त दूसरा बोला- 'देख क्या रहे हो, चढ़ो ऊपर और सब बच्चों को उतार लाओ नीचे।'

तीसरा बोला- 'बहुत अच्छा! मुझे जोरों की भूख भी लगी है। हम उनको आग मे भूनकर खाएंगे।'

चौथा बोला- 'अच्छा हो कि बच्चे बड़े-बड़े हो ताकि हम सब की भूख शान्त हो।'

ऊपर बैठी कबूतरी यह सारा वार्तालाप सुन रही थी। उसने तुरन्त कबूतर को सचेत करते हुए कहा- 'सुनते हो! ये लोग हमारे बच्चों को पकड़कर खाना चाहते हैं। जब तक ये दुष्ट लोग ऊपर चढ़कर बच्चों को पकड़े उससे पहले हमें अपने जान से प्यारे बच्चों को इनसे बचाने का उपाय कर लेना चाहिए। जरा भी देर हुई तो एक भी बच्चा नहीं बचेगा।

अपनी आँखों के सामने ही अपने बच्चों को आग में भूनता देखकर मैं पल भर भी जीवित नहीं रह सकूँगी। अत: तुम एक काम करो कि पल भर भी गवाँये बिना अपने मित्रों को बुला लाओ। ऐसे आड़े वक्त ही मित्र काम आते हैं।'

यह सुनकर कबूतर बोला– ठीक कहा तुमने। लेकिन, तम एक काम करो। येन–केन प्रकारेण तुम कुछ पल इन्हें अपनी बातों में उलझा लो। बस मैं यूँ गया और यूँ आया।

कबूतरी ने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करते हुए उन दुष्टों को कुछ देर इधर–उधर की बातों में उलझा लिया। जिससे उन्हें कुछ समय मिल गया। इतनी देर में कबूतर अपने दोनो सुहृदयों (मित्रों) के पास पहुँच गया और बन्दरिया व मधुमक्खियों को बुला लाया। तथा रास्ते मे सारी बातें उन्हें बता दी। इधर एक बहेलियाँ ऊपर चढ़ चुका था और घोंसले मे अपना हाथ डालने ही वाला था कि मधुमक्खियाँ बिजली जैसी फुर्ती दिखाते हुए झपट पड़ी बहेलिए पर। और उसके आँख, नाक, कान तथा शरीर का जो भी अंग उन्हें मिला उस पर अपने तीक्ष्ण डंक का प्रहार कर दिया। अगर वे क्षण–भर भी देर कर देती तो शायद ही बच्चों की जान बच पाती। डंक लगते ही बहेलिया तिलमिलाकर धड़ाम से नीचे आ गिरा। जैसे ही दूसरे बहेलिए, अपने साथी को उठाने के लिए दौड़े इतने में बन्दरिया ने उन दुष्टों की पोटली उठाई और भाग गई नदी की ओर। देखते ही देखते उसने पोटली को नदी में फेंक दिया। गठरी में उन दुष्टों की जीवन भर की कमायी थी। भला वे उसे बहते हुए कैसे देख सकते थे। वे भूल गए कबूतर के बच्चे और भागे नदी की ओर अपनी गठरी पकड़ने के लिए। देखते ही देखते वे कूद गए नदी में। संयोगवश उस दिन नदी का बहाव भी बहुत अधिक था। न जाने कहाँ गई उनकी गठरी और कहाँ गए वे बहेलिए। लेकिन मित्रों यह परम सत्य है कि मित्रों तथा कबूतर–कबूतरी के बुद्धिकौशल के कारण उनके बच्चों के प्राण बचे और वे बहेलिए फिर कभी वहाँ लौटकर नहीं आ सके।

इस कहानी से वैसे तो हमें कई शिक्षाएं मिलती हैं, लेकिन मैं समझता हूँ इसमें दो शिक्षाएँ प्रमुख हैं-

1. हम सबको मित्र बहुत सोच-समझकर बनाना चाहिए। क्योंकि जीवन में मित्र ही एक ऐसा व्यक्ति होता है जिससे हम हर तरह की बातें चाहे सुख-दुःख की हों, चाहे घर-परिवार की हों? मन खोलकर करते हैं।

2. हमें अपने बड़े-बुजुर्गों की बातों का हमेशा सम्मान करना चाहिए। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

४९. परोपकार का फल

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्, को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।।

अर्थात् इस संसार में अपने स्वार्थ (मतलब) के लिए कौन नहीं जीता, लेकिन जो दूसरों की भलाई के लिए जीता है, वास्तव में जीना उसी का सफल है।

उक्त श्लोक का तात्पर्य सीधा-सीधा है कि हम सबको परोपकार के कार्य करने चाहिए। इसी सन्दर्भ में मैंने एक कहानी पढ़ी थी, यहाँ मैं उसी को लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

दक्षिण भारत के किसी गाँव में एक निःसन्तान किसान दम्पती रहते थे। एक बार किसान बहुत बीमार हो गया। उसकी आयु भी काफी हो गई थी अतः अब उसके शरीर में इतनी ताकत नहीं थी कि वह बीमारी से संघर्ष कर सके। उसने यह अनुमान लगा लिया था कि अब उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं है। वह सोचने लगा मेरे मरने के बाद मेरी पत्नी का क्या होगा ? यह बेचारी भी तो अब वृद्ध हो गयी है। ये

सब सोचते-सोचते उसने अपनी पत्नी को बुलाकर एक डिब्बा दिया और स्वयं स्वर्ग सिधार गया। यह सब देखकर किसान की पत्नी दुःखी होकर विलाप करने लगी। उसके रोने-धोने की आवाज सुनकर पड़ोसी एकत्रित हो गए और उन्हें समझने में तनिक भी देर नहीं लगी कि किसान का परलोक गमन हो गया है। वे सब उसको सांत्वना देने लगे और कहने लगे कि अब विलाप करने से कोई फायदा नहीं, जो होना था वो तो हो गया। अब तो आप इनकी अन्तिम यात्रा की तैयारी करिए।

यह सुनकर उसने किसान का दिया हुआ डिब्बा सम्भालते हुए घर के अन्दर रख दिया और लगी तैयारी करने। देखते ही देखते पड़ोसियों ने सब समान जुटा दिया। और ले गए किसान को अन्तिम यात्रा के लिए।

एक दिन जब सब काम निपट गए तो किसान की पत्नी सोचने लगी कि- मेरे पति ने मरते समय मुझे एक डिब्बा दिया था, अवश्य ही उसमें कुछ होगा। और यही सोचते हुए उसने डिब्बे को खोला तो उसमें तीन पर्चियाँ निकलीं। उसने तुरन्त एक पर्ची उठाई और खोली। वह लिखना-पढ़ना जानती थी इसलिए उसे पढ़ने में कोई परेशानी नहीं हुई। उस पर लिखा था- 'हमेशा दूसरों की भलाई करनी चाहिए। यह पढ़कर उसने मन ही मन संकल्प लिया कि- 'मैं सबका भला सोचूँगी। और यथासम्भव सभी की मदद करूँगी।'

अब उसने दूसरी पर्ची खोली। उसमें लिखा था कि- 'मेरे मरने के बाद मेरा खेत मेरी पत्नी को मिले और वो उसमें खेती करे।'

अब उसने फिर मन ही मन में संकल्प किया कि 'अगर मेरे पति की यही इच्छा थी तो मैं अवश्य ही यह काम करूँगी।'

अब उसने तीसरी पर्ची खोली जो कि पहले की दो पर्चियों से कुछ अधिक बड़ी और मोटी थी। इस पर्ची में तीन सौ रुपये निकले जो कि एक कागज में लिपटे हुए थे। तथा लिखा हुआ था कि इन रूपयों को किसी अच्छे और नेक काम में लगाना।

यह देखकर उसने फिर अपने-आप से कहा कि- मैं अवश्य ही इन रूपयों को नेक काम में लगाउँगी।

इसके बाद किसान की पत्नी ने देखा कि- घर में कम से कम एक साल के लिए भोजन की कोई कमी नहीं है। पर्याप्त मात्रा में गेहूँ, चावल, नमक, हल्दी आदि रखे हुए हैं उसने सोचा- 'अगर मै अभी से खेत बोने की तैयारी करूँ तो अगले वर्ष तक मेरी फसल तैयाार हो जाएगी। और तब तक के लिए मेरे पास खाने की कोई कमी नहीं है। लेकिन एक समस्या थी कि खेत को खोदे कौन? बाकी काम तो वह कर लेगी। वह यही सोच रही थी।

तभी उसने सुना कि बाहर कुछ शोर मच रहा है। वह घर से बाहर आयी और देखा कि- एक सुअर अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहा है। और कुछ लोग उसे पकड़ने के लिए उसके आगे-पीछे दौड़ रहे हैं। किसान की पत्नी ने उन लोगों से पूछा- 'तुम इसे पकड़कर क्या करोगे?'

वे बोले- इसे पकड़कर हम बेचेंगे। इसका अचार थोड़े ही डालेंगे।'

किसान की पत्नी ने मन ही मन सोचा- किसी की जान बचाने से अच्छा काम और क्या हो सकता है? ऐसा सोचकर उसने उन्हें पचास रूपए देकर सूअर को खरीद लिया।

यह देखकर लोग उसका मजाक उड़ाने लगे कि देखो कितनी पागल है, भला यह सूअर का क्या करेगी? लेकिन, उसने कोई जबाब नहीं दिया। चुपचाप अपने घर के अन्दर चली गयी।

अगले दिन किसान की पत्नी ने देखा कि एक चिड़िया बार-बार उड़ने का प्रयास कर रही है लेकिन उड़ नहीं पा रही है। तभी अचानक वहाँ एक बहेलिया आ गया और चिड़िया पर गुलेल से निशाना लगाने लगा।

यह देखकार वह तुरन्त बोली– अरे! यह तुम क्या कर रहे हो? यह बेचारी तो पहले ही अपाहिज है। इसे मारकर तुम क्या करोगे? बहेलिया बोला– करूँगा क्या? मारकर खाऊँगा इसे।

किसान की पत्नी ने सोचा– 'मेरे पति ने पर्ची में लिखा था, दूसरों का भला करना। ये रूपये किसी अच्छे काम में लगाना। क्यों न मैं कुछ रूपए इस बहेलिए को देकर इस चिड़िया की जान बचा लूँ।' वह बोली– सुनो! मैं तुम्हे दस रूपये दूँगी तुम उन रूपयों से कोई अच्छी एवं सात्विक चीज खरीदकर खा लो। तुम्हारा पेट भी भर जाएगा और तुम पापकर्म से भी बच जाओगे।

बहेलिया उसकी बात मान गया और उसने उसे रूपए दे दिए। फिर किसान की पत्नी ने बड़े प्यार से चिड़िया का उपचार किया। क्योंकि वह बेचारी उड़ भी नहीं सकती थी। उसे भरपेट रोटी के टुकड़े आदि खिलाए, पानी पिलाया, घाव पर दवाई लगाई। और कुछ ही दिनों में चिड़िया स्वस्थ हो गई खूब उड़ने भी लगी। और चिड़िया उसकी छत पर ही घोंसला बनाकर रहने लगी।

अभी कुछ ही दिन बीते थे कि किसान की पत्नी के समक्ष एक घटना और घटी। और वह घटना यह थी कि– कुछ शरारती लड़कों ने मोर को पकड़ लिया। कोई उसके सुन्दर पंखों की चाहत में उसके पंख खींच रहा था तो कोई उसे अपने घर ले जाने की चाह में खींच रहा था। वे सब उसे खूब दुःखी कर रहे थे।

किसान की पत्नी को मोर पर दया आ गई उससे यह सब न देखा गया तो वह मन ही मन कुछ सोचकर बोली– देखो बच्चों तुम इस मोर को छोड़ दो। मैं तुम्हें भरपेट मिठाई खिलाऊँगी।

बच्चों ने बात मान ली। और उसने भी उन्हें भरपेट मिठाइयाँ खिला दी। और वह मोर भी कभी उसके घर में तथा कभी उसके खेत में रहने लगा।

कुछ दिन बाद फिर एक विचित्र बात हुई और वह यह हुई कि किसान की पत्नी अपने खेतों को देखने गयी। तभी उसने देखा कि एक बकरी का मेमना अपने झुण्ड से बिछुड़ गया है और बहुत उदास होकर इधर-उधर दौड़ रहा है। उसको फिर अपने पति की बात याद आ गई और वह उस मेमने को अपने घर ले आई। धीरे-धीरे खूब खा-पीकर वह भी मस्त रहने लगा।

अब धीरे-धीरे फसल के दिन भी नजदीक आ गए तो किसान की पत्नी ने सोचा अब फसल बोने की तैयारी शुरु कर देनी चाहिए। लेकिन, वह सोचने लगी कि बाकी काम तो जैसे-तैसे मैं कर भी लूँगी पर खेत को खोदेगा कौन? यही सोचते-सोचते वह खेत की ओर चल दी कि शायद वहीं जाकर समस्या का कोई समाधान मिल जाए। लेकिन, यह क्या जैसे ही उसने खेत की तरफ देखा वह आश्चर्यचकित हो गयी। उसने देखा कि सूअर ने घास की जड़े खाने के लिए सारा खेत ही खोद दिया है।

वह अत्यंत प्रसन्न हो गई। अब वह सोचने लगी कि इसमें क्या बोया जाए? बीज किससे मँगाऊं? अभी वह ये सब सोच ही रही थी कि न जाने चिड़िया कहाँ से फुर्र से उड़कर आई और उसकी झोली में एक तरबूज का बीज डाल दिया। और उसने भी बिना देर लगाए वह बीज खेत में बो दिया।

अब वह सोचने लगी कि खेत में पानी भी देना होगा तभी बीज अंकुरित होगा। वह यह सोच ही रही थी कि उसी समय मोर वहाँ आ गया और मस्ती से झुम-झुमकर नाचने लगा। उसका नाच देखकर बादल प्रसन्न हो गए और छम-छम पानी बरसाने लगे।

अब वह सोचने लगी कि इसमें खाद भी डालना चाहिए। और इस काम को पूरा किया मेमने ने अपनी मिंगन की खाद डालकर।

इस प्रकार किसान की पत्नी की सारी समस्याएं चुटकियों में हल हो गई।

सुअर ने खेत खोदा, चिड़िया बीज लाई।
बकरी ने खाद दी, और मोर ने पानी बरसवाया।

और यही नहीं, पुण्योदय से तरबूज की बेल इतनी फैली की सारे खेत में छा गई। उसमें एसे मीठे व रसीले तरबूज लगे कि एक-एक तरबूज पाँच-पाँच रूपये में बिकने लगा। और देखते ही देखते कुछ दिनों में सारे तरबूज बिक गए। उसकी कमाई से किसान की पत्नी का घर भर गया। यह सब देखकर गाँव वाले कहने लगे कि- 'यह बेल नहीं फली इसका परोपकार फला है।

अब किसान की पत्नी अत्यन्त प्रसन्न थी। उसकी प्रसन्नता के चार मुख्य कारण थे। सबसे पहला प्रसन्नता का कारण तो यह था कि उसने अपने पति की इच्छा को पूरा किया था। दूसरा कारण यह था कि- दु:ख के बाद सुख मिलने से और गरीबी के बाद धन मिलने से कौन प्रसन्न नहीं होता। अत: दूसरा कारण धन था। तीसरा कारण था कि उसने किसी बुरे तरीके से धन नहीं कमाया था, अपितु कई प्राणियों का भला करके यह वरदान पाया था। और चौथा कारण यह था कि उसकी परोपकारी भावना को देखकर गाँव के लोगों को परोपकार करने की प्रेरणा मिली थी। उसके समक्ष गाँव के अनेक लोगों ने प्रतिज्ञा की कि वे भी अपने जीवन में जितना भी अधिक से अधिक हो सकेगा, उतना परोपकार करेंगे।

इस कहानी से हम सबको भी यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीवन में अधिक से अधिक परोपकार करना चाहिए। और चिन्तन किया जाए तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह सृष्टि परोपकार पर ही चल रही है। हम सब यह कहे कि प्राणिमात्र एक-दूसरे पर परोपकार ही तो करते हैं। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।
रविश्चन्द्रो घनवृक्षाः, नदी गावश्च सज्जनाः।
एते परोपकाराय, समुत्पन्नाः स्वयम्भुवि॥

अर्थात्- सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, पेड़-पौधे, नदी, गायें, पशु-पक्षी तथा सज्जन ये सब पृथ्वी पर परोपकार के लिए स्वयं उत्पन्न हुए हैं।

५०. लोभ बुरी बला है

शतीच्छति सहस्रं वै, सहस्री लक्ष्मीहते।
लक्षाधिपस्तथा राज्यं, राज्यस्थः स्वर्गमीहते।।

अर्थात् जिसके पास सौ रूपए हैं, वह हजार की चाह करता है, जिसके पास हजार हैं, वह लाख की चाह करता है। जिसके पास लाख है वह करोड़ की, अरब की अथवा राज्य की चाह करता है। और जिसके पास ये सब हैं, वह स्वर्ग की चाह करता है।

उक्त श्लोक का अर्थ तो आप समझ ही गए होंगे। इसका सीधा-सच्चा अर्थ है कि मनुष्य की इच्छाओं का कोई अंत नहीं है। उसके मन में एक ऐसा गहन गढ्ढा है, जो कभी भर नहीं सकता।

लेकिन, हमारे पूर्वजों ने एक छोटी-सी सूक्ति कही है कि- **'अति सर्वत्र वर्जयेत।'** अर्थात् कोई भी काम हो चाहे खाने का, पीने का धन पाने का इत्यादि। अगर हम अति करेंगे तो वह खतरनाक ही होगी। और यह बात बिलकुल **'हस्तामलकवत्'** सत्य है। अगर किसी को यकीन न हो तो वह करके देख ले। रिजल्ट मिल जाएगा।

इस सन्दर्भ में मुझे एक लोभी सेठ की कहानी याद आ रही है, जो कभी मेरे गुरुजी ने मुझे सुनाई थी। उसे ही मैं यहाँ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

राजस्थान के किसी शहर में एक सेठ जी रहते थे। नाम था उनका धनदास। वह इतना लोभी था कि उसके पास अपार धन-दौलत होते हुए भी और चाहने की इच्छा के कारण कभी खुश नहीं रहता था। बस, इसी उधेड़-बुन में लगा रहता था कि कैसे और धन प्राप्त किया जाए।

एक दिन घूमते-घूमते वह सेठ एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास पहुँच गया। और कहने लगा- हे स्वामी! आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं। अतः मुझे कोई ऐसा उपाय बताएँ जिससे मेरा घर सोने-चाँदी, हीरे-मोती-पन्ने इत्यादि से भर जाए। और मैं इस विश्व का सबसे बड़ा धनी व्यक्ति बन जाऊँ।

यह सुनकर ज्योतिषी बोला- देखो सेठ जी! धन की देवी तो लक्ष्मी है। यह सारा डिपार्टमेंट (विभाग) उन्हीं का है। अगर तुम जप-तपस्या करके उनको प्रसन्न कर लो तो वे अवश्य ही तुम्हारी मनोकामना पूरी कर सकती हैं।

बस, फिर क्या था, सेठ जी तो लग गये उसी क्षण से जप-तप करने। और उसने प्रचण्ड जप-तप करके कर लिया प्रसन्न लक्ष्मी जी को। और वे तुरन्त प्रकट भी हो गईं बिना विलम्ब के। लक्ष्मी बोली- हे सेठ ! मैं तेरे पूजा-पाठ और जप-तप से अतीव प्रसन्न हूँ बता तेरी क्या इच्छा है, क्योंकि बिना किसी इच्छा के तो कोई शायद ही मुझे याद करता हो। अतः तू तो बेझिझक होकर वरदान माँग।

यह सुनकर धनदास बोला- हे देवी, यदि आप हकीकत में ही मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपया आप मेरा घर सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि से भर दीजिए।

यह सुनकर लक्ष्मी बोली- ठीक है, मैं तेरा घर तो उक्त सभी कीमती वस्तुओं से भर दूँगी। लेकिन, मेरी एक शर्त है कि जब तुम्हारा घर इन सब चीजों से भरेगा तो अन्य लोगों का भी घर इन वस्तुओं से भर जाएगा।

यह सुनकर धनदास सोचने लगा- कहीं ऐसा तो नहीं हो जाएगा कि अन्य लोगों के घर अधिक सम्पति हो जाए। लेकिन, तभी उसे ख्याल आया कि नहीं ऐसा नहीं हो सकता। इसका एक कारण तो यह है कि मेरे पास पहले से ही अथाह धन-दौलत है और दूसरा यह कि लक्ष्मी जी की पूजा-अर्चना मैंने की है। अतः लक्ष्मी उनको बिना कुछ

करे-कराए अधिक धन थोड़े ही दे देंगी। और इस विचार-मंथन के उपरान्त वह बोला- ठीक है देवी जी, ये तो अच्छी ही बात है कि सभी सम्पन्न हो जाएंगे।

इतना सुनते ही लक्ष्मी जी बोलीं- तथास्तु! बस फिर क्या था? भर गया सेठ का घर धन-दौलत से। पैर रखने तक को जगह नहीं घर में। जहाँ देखो वहीं धन-दौलत। सेठ की तो बाछें खिल गई और वह अत्यन्त खुश हो गया। अब उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। कुछ देर बाद जब उसने अपना होश संभाला तो सोचने लगा कि अब इस दौलत को सम्भालकर पैकिंग-सैकिंग करके तरीके से रखा जाए। अब धन इतना अधिक था कि उसकी पैकिंग-सैकिंग वह अकेला तो कर नहीं सकता था। इस काम के लिए उसे मजदूर चाहिए थे। अतः वह घर से बाहर मजदूर लेने गया।

लेकिन यह क्या? जैसे ही सेठ ने मजदूरों से चलने को कहा वे बोले- ओ सेठ जी! अब हमें तुम्हारी मजदूरी की कोई आवश्यकता नहीं है अब हमारे घरों में भी धन के ढेर लगे हुए हैं तुम ही हमारे यहाँ मजदूरी कर दो।

इतने में सेठ को भूख लगी। तो उसने सोचा इतनी जल्दी घर में तो रोटी बनेगी नहीं। क्यों न बाहर से ही कुछ लेकर खा लिया जाए? और वह बढ़ गया एक रेस्टोरेंट की ओर। वहाँ जाकर वह बोला- मुझे भोजन दीजिए। लेकिन, यहाँ भी वही स्थिति रेस्टोरेंट का मालिक बोला- अब हम भोजन-वोजन नहीं बनाते। जिस चीज के लिए हम सब यह काम करते थे, उसके तो अब हमारे यहाँ ढेर लगे पड़े हैं अब तुम चाहो तो ये भोजन-वोजन बनाने का काम कर सकते हो। हमें भी भोजन मिल जाएगा।

यह सब देख-सुनकर सेठ ने सोचा चलो, भोजन न सही दूधिए से दूध लेकर पी लिया जाए। और वह चल दिया दूधिया की ओर। लेकिन, जैसे ही वह दूधिया के पास पहुँचा तो उसने देखा दूधिया धन

के ढेर सम्भाल रहा है।, वह बोला– सेठ जी अब मैं दूध नहीं बेचता। अब मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है अतः जाओ! कहीं और दूध ढूँढों।

इसके बाद सेठ हलवाई की दूकान पर गया। वहाँ भी उसे वही उत्तर मिला। इसके बाद सेठ जहाँ भी गया उसे यही उत्तर मिला। सब यही कहते कि– अब सबके पास धन के ढेर लगे हैं, अब रूपए की या धन की कोई कीमत नहीं हैं, यह देख–सुनकर सेठ बहुत असहाय, निराश, हताश और उदास हो गया। सेठ ही नहीं शहर के अन्य लोगों की हालत भी ऐसी ही हो गयी थी। क्योंकि सबके काम–धन्धे बन्द हो गए। रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुएं मिलनी बन्द हो गयी। लोग विलाप करते हुए कह रहे थे कि– सिर में मारे इस धन को जिससे कुछ मिलता ही नहीं। क्या इस धन को हम चांटे? क्या इस धन को हम खाएं या इसके वस्त्र पहनें?

यह सब देख–सुनकर सेठ सोचने लगा– यह तो बहुत ही विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इसका तो तुरन्त कुछ उपाय करना चाहिए। वरना सब मर जाएंगे। और वह दोबारा ज्योतिषी के पास गया। और ज्योतिषी के सामने सारी घटना सुना दी।

ज्यातिषी बोला– इसका जो कुछ भी उपाय है वह लक्ष्मी जी ही तुम्हें बता सकती हैं। हो सकता है वे अपना वरदान वापस ले लें और तुम्हारी समस्या का समाधान हो जाए। अतः तुम पुनः लक्ष्मी जी का आह्वान करो वे अवश्य ही प्रकट होंगी।

सेठ जी ने पुनः पूजा–अर्चना की। लक्ष्मी जी फिर से प्रसन्न होकर प्रकट हो गयी। और जैसे ही वे प्रकट हुई सेठ ने निवेदन किया– हे लक्ष्मी माता! हमें अधिक धन नहीं चाहिए। कृपया हमें फिर से पहले जैसे साधारण बना दीजिए।

लक्ष्मी जी बोली– तुमने तो बड़े चाव से अधिक धन का वर माँगा था। अब क्या हो गया, जो तुम उसे लौटाते हो?

यह सुनकर सेठ बोला- मैंने बचपन में एक कहावत सुनीं थी कि **'दूर के ढोल सुहावने होते हैं।'** उसे आज प्रकट रूप में देख भी लिया। मैं समझता था कि अधिक धन प्राप्त करने से मनुष्य सुखी होता है। किन्तु आज मैंने स्वयं यह अनुभव कर लिया है कि आवश्यकता से अधिक धन दुख का कारण होता है। उसके कारण मेरा खाना-पीना, बैठना, सोना-जागना, सब कुछ हराम हो गया है। और हाँ, मैंने यह भी भलीभाँति समझ लिया है कि न केवल धन अपितु, कोई भी काम आवश्यकता से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि 'अति' हमेशा ही खतरनाक होती है। अतः मैं अब आप से पुनः विनती करता हूँ कि- आप हमें फिर से साधारण मनुष्य बना दीजिए। जिससे हम परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह कर सकें। कहा भी जाता है कि-

पश्य कर्मवशात् प्राप्तं, भोजनकालापि भोजनम्।
हस्तोधमं बिना वक्त्रे, प्रविशेन्न कथञ्चन॥

अर्थात् देखो! भोजन के समय भाग्यवश भोजन तो प्रप्त हुआ, किन्तु हाथ के उद्योग (चलाने) बिना कभी वह स्वयं अपने मुख में प्रविष्ट नहीं होता।

उद्यमेन ही सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

कार्य परिश्रम करने से ही सफल होते हैं? विचार करने मात्र से नहीं। जिस प्रकार सोये हुए शेर के मुँह में पशु स्वयं आकर नहीं घुसते। अपितु, इसके लिए शेर को प्रयास करना पड़ता है।

उद्यमेन विना तात् न सिध्यन्ति मनोरथाः।
कातरा इति जलपन्ति, यद् भाग्यं तद् भविष्यति॥

डरपोक और आलसी मनुष्य ही ऐसा कहते हैं कि जो भाग्य में होगा, वही होता है। क्योंकि पुरुषार्थ किये बिना विचार मात्र से कार्यसिद्धि कभी सम्भव नहीं होती।

विहाय पौरुषं यो हि, दैवमेवावलम्बते।
प्रासादसिंहवत्तस्य, मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसा:॥

जो व्यक्ति पुरुषार्थ को छोड़कर केवल भाग्य के भरोसे बैठा रहता है। वह ऐसे होता है जैसे महल के ऊपर बना हुआ सिंह जिस पर अनेक कौवे आकर विष्ठा करते रहते हैं, लेकिन वह उन्हें भगा नहीं सकता।

यह सब सुनकर लक्ष्मी जी ने पुनः उन सबको पहले जैसा बना दिया। और सभी मेहनत करने लगे तथा सुखपूर्वक रहने लगे। वैसे तो इस कहानी से हमें कई शिक्षाएं मिलती हैं लेकिन उसमें दो प्रमुख हैं–

1. कभी भी हमें अधिक लोभ नहीं करना चाहिए।

2. किसी भी काम में 'अति' (बहुत अधिक) नहीं करनी चाहिए। चाहे वो खाना, पीना, चलना, टी.वी देखना, इण्टरनेट पर बैठना, फिल्म देखना, पढ़ना, लिखना इत्यादि चाहे कुछ भी हो।

५१. सच्चा भक्त कैसा हो?

उत्तर भारत के राजस्थान प्रांत के किसी गाँव में एक दिन प्रवचन सभा चल रही थी। प्रवचन के पश्चात् एक जिज्ञासु ने प्रवचनकार महात्मा से पूछा, 'हे महात्मन्! कृपया आप मुझे यह बतलाएं कि भगवान् का सच्चा भक्त कौन और कैसा होता है?' यह सुनकर महात्मा बोले, 'सुनो, मैं तुम्हें अपने पड़ोसी का एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। जिसमें तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान निहित है।

जिनदत्त नामक एक धनी सेठ मेरा पड़ोसी था। वह अपने सार्थवाहों (साथी व्यापारियों) के साथ लाखों का माल खरीदने व बेचने विदेश जाया करता था। एक बार जब वे विदेश जा रहे थे तो रास्ते में लुटेरों ने उसका तथा उसके साथी का सारा माल-मत्ता लूट लिया। मुझे जब इस घटना का पता चला तो मैंने सोचा पड़ोसी होने के नाते मुझे

जिनदत्त को सान्तवना जरूर देनी चाहिए तथा और मैं दे भी क्या सकता था? बस, यही सोचकर मैं उसके घर चला गया। संध्या की वेला (समय) थी। भोजन का भी समय हो गया था। मेरे पहुँचते ही जिनदत्त ने सेवकों को मेरे लिए भोजन लाने को कहा। मैंने उससे कहा, 'भाई! भोजन के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद! मैं तो तुम्हें सान्तवना देने के लिए आया था।'

यह सुनकर जिनदत्त बोला, हाँ भाई यह सत्य है कि लुटेरों ने मेरा काफी माल लूट लिया। जिससे मुझे काफी नुकसान हुआ है। लेकिन, मुझे इस बात की खुशी है कि मैंने जीवन में किसी को लूटना तो दूर वाणी से अपशब्द तक नहीं कहे। मैं तो भगवान् का कृतज्ञ हूँ कि लुटेरों ने मेरी नश्वर सम्पत्ति का ही कुछ भाग लूटा है, सारा नहीं। उन्होंने मेरी शाश्वत सम्पत्ति को तनिक भी हाथ नहीं लगाया। और वह शाश्वत सम्पत्ति है- भगवान् के प्रति मेरी दृढ़ श्रद्धा। जिसे कोई नहीं छीन सकता। यही मेरे जीवन की कमाई और सच्ची सम्पत्ति है। अतः मुझे जरा भी दुःख नहीं है तुम तो खुशी-खुशी भोजन करो। सेठ जिनदत्त की बात सुनकर मेरी भी समझ में बात आ गई और उसी दिन से मैं भी लगा हुआ हूँ भगवान् की भक्ति में। अतः मेरी दृष्टि में तो जिनदत्त सच्चा भक्त है और जिनदत्त जैसा ही सच्चा भक्त होता है। भगवान् के वास्तविक स्वरूप की भक्ति करके भी अगर हम इस नश्वर सम्पत्ति में ही रचे-बसे रहे तो हम सच्चे भक्त कभी नहीं बन सकते है।

५२. भूत-भविष्य की चिंता क्यों?

हम में से अधिकांश व्यक्ति भूत व भविष्य की चिंता में डुबे रहते हैं। जिससे हमारा वर्तमान भी दुखदायी बन जाता है। कहा जाता है कि- शानदार भूत था, भविष्य भी महान् है, अगर हम सम्भाल लें, जो कि वर्तमान है। देखिए, कितनी अच्छी बात है कि अगर हम अपने वर्तमान को ठीक कर लें तो भूत और भविष्य तो अपने आप ही सुधर जाएंगे। और यह एक यथार्थ सत्य है कि भय और आशा हमें प्राप्त सुख

का भी आनन्द नहीं लेने देते हैं। हमें भूत का डर बना रहता है और भविष्य की आशाओं के लिए चिन्ता बनी रहती है। इसी संदर्भ में मैं यहाँ एक छोटी-सी कहानी लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

कलकत्ता मैट्रो सिटि में एक सम्पन्न सेठ जी रहते थे। भगवान् की कृपा से उनके घर में कोई कमी नहीं थी। सन्तान, रूपया-पैसा, घोड़ा-गाड़ी सब कुछ उनके पास था। लेकिन, जैसे ही वे घर लौटते तो बड़े आशंकित, चिन्तित एवं भयभीत नजर आते। इस बात को लेकर घर का कोई और सदस्य तो शायद ही उनकी ओर ध्यान देता हो, लेकिन उनकी पत्नी जरूर समझ गई कि हो न हो कोई ऐसी बात जरूर है जिसके कारण सेठ जी की ऐसी हालत है। और एक दिन उसने सेठ जी की इस चिंता का कारण पूछ ही लिया। और सेठ जी ने भी बता दिया कि मैं यह सोचता रहता हूँ कि पहले एक बार बुरे दिन आ गए थे कहीं वे दोबारा न आ जाएं। तथा कल को अगर मैं ही ना रहूँ तो तुम्हारा और बच्चों का क्या होगा? बस, यही सब सोचकर मैं चिन्तित और भयभीत रहता हूँ।

सेठ जी की पत्नी पढ़ी -लिखी, समझदार और व्यवहार-कुशल थी। उसने मन ही मन पति को इस चिन्ता से उबारने के लिए एक युक्ति सोच ली। अगले दिन जैसे ही सेठ जी दुकान के लिए गए, उसने बीमारी का बहाना बनाकर चारपाई पकड़ ली। और न ही घर का कोई काम किया तथा उदास एवं चिन्तित-सी सारा दिन चारपाई पर पड़ी रही।

शाम को जब सेठ जी घर आए तो उन्होंने देखा कि पत्नी बड़ी ही उदास एवं चिन्तित चारपाई पर लेटी हुई है। इससे उनकी चिन्ता और बढ़ गई कि अब घर का काम कौन करेगा। उसने तुरन्त पत्नी से इस सब का कारण पूछा।

यह सुनकर पत्नी बोली- 'शहर में एक बहुत ही पहुँचे हुए ज्योतिषी आए हुए हैं, लोगों का कहना है कि वे त्रिकालदर्शी हैं और उनका बतलाया हुआ कभी झूठ नहीं होता। पड़ोसन की सलाह पर मैं भी

आज उनसे अपना भविष्य पूछने गई थी। उन्होंने मेरी जन्म-कुण्डली देखकर बताया कि तुम अस्सी साल तक जीवित रहोगी। मैं यह सोच-सोचकर परेशान हो रही हूँ कि अस्सी साल में मैं कितना अनाज खा जाऊँगी, कितने कपड़े पहनूँगी, कितने गहन बनवाऊँगी, इतना पैसा कहाँ से आएगा?'

यह सुनकर सेठ जी बोले- 'अरे बुद्धु! बस, इतनी-सी बात। ये भी भला कोई पेरशानी की बात है क्या? ये सब खर्चा एक दिन में ही थोड़े ही होगा। समय के साथ-साथ हमारी आमदनी भी बढ़ती जाएगी, बच्चे भी जवान होंगे, वे भी कमाएंगे। अतः समय के साथ-साथ हमारा खर्च चलता जाएगा। तू व्यर्थ में ही चिंता करती है।'

इतना सुनते ही पत्नी बोली- 'फिर आप भला रोज व्यर्थ की चिंता करके क्यों स्वयं दुःखी होते हैं? और हमें भी दुःखी करते हैं। क्या ये उपदेश जो अभी-अभी आपने दिया है वह आपके ऊपर लागू नहीं होता क्या? या उपदेश केवल दूसरों के लिए ही होता है? आप भी ऐसा क्यों नहीं सोचते हैं कि समयानुसार यदि समस्याएं आएंगी, तो उनका हल भी निकालते रहेंगे।' सेठ जी को अपनी भूल समझ में आ गई। और उसी दिन से उन्होंने चिंता करनी छोड़ दी।

मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि जो दूसरों को उपदेश देने की बात है। यह हम सब करते हैं। हम सब भी दूसरों को समझाने में खूब माहिर होते हैं, लकिन खुद समझने में हमारी नानी मर जाती है। जिससे हम नित नई चिन्ताओं से जुझते रहते हैं। यहाँ तक कि हम मानसिक रोगी बन जाते हैं। जो कि अत्यन्त भयावह स्थिति है। मैं यहाँ यह भी कहना चाहूँगा कि हम सबको सोचना चाहिए लेकिन क्या सोचना चाहिए? अगर भूतकाल में हमसे कोई गलती हो गई हो, कोई पापकर्म हो गया हो, किसी का अहित हो गया हो तो हमें यह जरूर सोचना चाहिए कि भविष्य में फिर कभी भूल से भी मुझसे यह गलती दोबारा न हो जाए। इससे आपका भविष्य स्वयं ही सुधर जाएगा। किसी ज्योतिषी से आपको सलाह लेने की जरुरत नहीं पड़ेगी। और हाँ यहाँ यह भी स्पष्ट करना

आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि सोचने और चिन्ता करने में जमीन-आसमान का फर्क होता है। कहा भी जाता है कि-

चिन्ता चिता समा ह्युक्ता बिन्दुमात्रविशेषतः।
निर्जीवे दहति चिता सजीवे दहति चिन्ता॥

५३. उपदेशदाता का आचरण कैसा हो?

बहुत समय पहले की बात है। एक स्त्री अपने पुत्र को लेकर एक महात्मा के पास आई और कहने लगी, 'महाराज यह गुड़ बहुत खाता है। मैं घर में महीने भर का गुड़ लाकर रखती हूँ, जिसे यह दो-तीन दिन में ही खा जाता है। जिसके कारण इसके शरीर में फोड़े-फुँसी भी हमेशा निकले रहते हैं। और यह है कि डॉक्टर के मना करने पर भी गुड़ छोड़ना तो दूर कम भी नहीं करता है। अतः आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे यह गुड़ खाना बन्द कर दे।'

यह सुनकर महात्मा बोले- 'ठीक है बहन! इसे कल ले आना?' अगले दिन जब वह स्त्री पुत्र को लेकर उनके पास आई तो उन्होंने लड़के से पूछा, 'क्यों भाई! तू गुड़ ज्यादा खाता है?' उसने कहा- 'हाँ खाता हूँ।' उन्होंने कहा, तू गुड़ खाना बन्द कर दे। वरना तुझे और भी भयंकर बीमारी हो सकती है, जिससे तेरे प्राणों तक पर संकट आ सकता है। और यह तो स्पष्ट कहा जाता है। कि- **'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'** अर्थात् कोई भी काम हो अगर उसमें अति की जाती है तो वह खतरनाक होती है। चाहे वह खाने की ही क्यों न हो? लड़के की होनहार अच्छी थी। वह महात्मा की बात समझ गया। और उसने वहीं दृढ़ संकल्प कर लिया कि भविष्य में भी कभी वह न केवल खाने में बल्कि, किसी भी काम में अति नहीं करेगा।

यह सब देख-सुनकर लड़के की माँ कुछ चिन्तित होते हुए बोली- 'महाराज! बस इतनी-सी बात थी तो यह तो आप कल भी बता सकते थे?

यह सुनकर महात्मा बोले- बहन! तुम ठीक कह रही हो लेकिन कल मेरी स्वयं की ऐसी स्थिति नहीं थी कि मैं इसको गुड़ खाने के लिए मना करता क्योंकि, कल जब तुम आई थी तब तक मैं स्वयं भी खूब गुड़ खाता था ओर संयोगवश उस समय भी मेरे समक्ष गुड़ रखा हुआ था। उस समय अगर मैं इसको यह कहता कि तुम गुड़ मत खाया करो, तो यह भले ही कुछ कहता नहीं अपितु, मन ही मन यह अवश्य सोचता कि- देखो, खुद ता गुड़ खाता है और मुझे मना करता है। तब भला, यह मेरी बात को कैसे मानता?

इसीलिए पहले मैंने स्वयं गुड़ खाना बन्द किया। और हाँ एक बात और है कि यह तो जो सोचता सो सोचता लेकिन मेरी स्वयं की आत्मा तो मुझे जरूर धिक्कारती कि स्वयं तो प्लेट भर-भर कर गुड़ खाता है और दूसरों को गुड़ न खाने का उपदेश देता है। जोकि मेरे लिए बड़ा ही कष्टदायी होता। अतः मैंने कल यह बात नहीं बताई और तुम्हें अगले दिन आने को कहा। अतः हम सबको उपदेश देने से पहले यह जरूर सोचना चाहिए कि- जो उपदेश हम दूसरों को दे रहें हैं। क्या हम स्वयं भी उसका पालन कर रहे हैं अथवा नहीं। क्योंकि उपदेशदाता के आचरण का अनुकरण उपदेश सुनने वाला अवश्य करता है। जिस प्रकार शिष्य गुरु का अनुकरण करता है। कहा भी जाता है कि-

गुरुजनशीलमनुसरन्ति शिष्याः।

अर्थात् शिष्य अपने गुरुजनों के शील (आचार-विचार) का अनुशरण करते हैं।

५४. विद्या का महत्त्व

सद्विद्या यदि का चिन्ता, वराकोदरपूरणे।
शुकोप्यशनमाप्नोति, रामरामेति च ब्रुवन्॥

यदि उत्तम विद्या (ज्ञान) पास में है तो इस दरिद्र पेट को भरने की क्या चिन्ता? जिस प्रकार राम-राम रटते हुए तोता बिना प्रयास किये

केवल विद्या के बल से ही भोजन प्राप्त कर लेता है।

उक्त श्लोक में विद्या का महत्त्व बतलाया गया है। इसी सन्दर्भ में मैं यहाँ एक कहानी लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। कालक्रमानुसार उसका विवाह हुआ। विवाह के दो साल बाद उसके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। खूब हर्षोल्लासपूर्वक उसका जन्मोत्सव मनाया गया तथा उसका नाम रखा गया- मोटेराम। धीरे-धीरे जब मोटेराम पाँच वर्ष का हो गया तो ब्राह्मण ने उससे कहा- **'बेटा, अब तुम पढ़ने जाया करो।'** लेकिन मोटेराम को न तो पढ़ने में रुचि थी और न ही कोई प्रयत्न करता था। बल्कि, इसके विपरीत वह पिता जी को कोई कुतर्क दे देता था। एक दिन उसके पिता ने जब पुनः प्रयत्न किया तो वह कहने लगा।

पाठ रटारट, दाँत कटाकट।
मैं मर जाऊँगा, पर पढ़ने न जाऊँगा।।

यह सुनकर पिता जी बड़े दुःखी हुए। लेकिन वे यह सोचकर चुप लगा गए कि अगर इसने कोई उल्टा-सीधा कदम उठा लिया तो मैं क्या करूँगा? यह मेरा इकलौता पुत्र है।

इसी प्रकार समय फिर अपनी गति से बढ़ने लगा। मोटेराम 15 वर्ष का हो गया। पिता ने फिर कुछ सोचकर उससे कहा- 'देख बेटा, तुमने पढ़ाई तो नहीं की। लेकिन, जीवन निर्वाह के लिए मनुष्य को कुछ तो करना ही पड़ता है। अतः अब तू खेती किया कर, हल चलाया कर। अपने पास अच्छे-भले कई खेत हैं, उनसे तुम्हारा और भविष्य में होने वाले तुम्हारे परिवार का जीवन-निर्वाह अच्छी तरह हो पाएगा।' यह सुनकर मोटेराम बोला-

कौन बैल हाँके, कौन धूल फाँके।
मैं मर जाऊँगा, पर हल न चलाऊँगा।।

पिता जी यह सुनकर बड़े ही चिन्तित हुए और उसके भविष्य की चिन्ता करते हुए बोले– 'अच्छा, तुम मत करो खेती, तुम व्यापार कर लो, मैं तुम्हें एक दुकान खोल देता हूँ और किसी अच्छे व्यापारी से तुम्हें व्यापार करना भी सिखवा देता हूँ।' पिता की बात सुनकर वह बोला–

नौ नगद न तेरह उधार, आज चढ़ाव कल उतार।
मैं मर जाऊँगा, पर दुकान न चलाऊँगा।।

तब पिता जी ने खीजते हुए पूछा– आखिर तुम करना क्या चाहते हो? 'न पढ़ाई, न जुताई, न दुकान की कमाई– तो फिर नौकरी करेगा क्या? यह सुनते ही मोटेराम बत्तीसी दिखाते हुए हँसा और बोला–

हींग लगे न फिटकरी, सबसे अच्छी नौकरी।
मैं नौकरी करने जाऊँगा, खूब कमाकर लाऊँगा।।

यह बात सुनकर पिता जी ने उसे समझाने का भरसक प्रयत्न किया और कहा कि– 'देख बेटा, जितना आसान तू समझ रहा है न उतना आसान नहीं है नौकरी करना। ऊपर से तू ठहरा अनपढ़। पहली बात तो यह है कि तुझे कोई नौकरी पर रखेगा नहीं और दूसरी बात यह कि अगर कोई रख भी लेगा तो मेहनत-मजदूरी ही करवाएगा। या तो पशुओं की रखवाली करवाएगा या घरेलू काम करवाएगा। जो कि तुझसे होंगे भी नहीं।' इस प्रकार पिता जी ने और भी कई बातें उसे बताई। लेकिन, मोटेराम तो था मोटेराम और उसने जिद पकड़ ली कि करेगा तो नौकरी ही करेगा। इसके अलावा कुछ नहीं।

और इसके बाद पिता जी ने दूसरे गाँव में किसी सेठ के यहाँ मोटेराम की नौकरी लगवा दी। उसने वहाँ पाँच वर्ष तक नौकरी की। छठे वर्ष जब वह छुट्टी लेकर घर जाने लगा तो सेठ ने उसे पाँच हजार रुपए वेतन के रूप में दिए। रूपए लेते हुए मोटेराम नाक-भौं सिकोड़ते हुए बोला– **'रुपए खटाखट। नोट फटाफट। कैसे इन्हें भुनाऊँगा। मैं तो फुटकर लेकर जाऊँगा।'**

यह सुनकर सेठ ने उसे पाँच हजार रूपयों के फुटकर सिक्के दे दिए। जिनसे एक बोरी भर गई। और मोटेराम ने बोरी को अपने कंधों पर लाद लिया। वह कुछ ही दूर चला था कि उसने देखा सामने एक घुड़सवार जा रहा है। उसे रोककर मोटेराम बोला– **'तू घोड़े पर सवार। बोरा मुझ पर सवार। ले-ले बोरा, दे दे घोड़ा।'** अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। उसने तुरन्त सौदा मंजूर किया और ले लिया सिक्कों से भरा बोरा और दे दिया अड़ियल घोड़ा। मोटेराम क्या जाने अड़ियल घोड़े की सवारी। वह जैसे ही घोड़े पर चढ़ा और घोड़ा ऐसी (STYLE) से फूदका कि मोटेराम महाशय गिर पड़े नीचे।

अब मोटेराम घोड़े की नकेल पकड़कर पैदल-पैदल उसके साथ चलने लगा। अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसने देखा कि सामने से एक ग्वाला गाय लेकर आ रहा था। मोटेराम ने ग्वाले को रोका और कहने लगा– **'घोड़ा अटक-अटक। मुझको देता है पटक-पटक। ले लो घोड़ा हाय। मुझको दे दो गाय।'**

ग्वाले ने भी मौके का फायदा उठाया और अपनी गुस्सैल गाय दे दी और घोड़ा ले लिया।

अब चलते-चलते शाम हो गयी तो मोटेराम ने सोचा– क्यों न गाय का दूध दुह लिया जाय। भूख भी लगी है, दूध पी कर उसे भी शांत कर लिया जाए। अतः उसने पास ही एक वृक्ष से गाय को बाँध दिया। और कही से एक बाल्टी भी माँग लाया और लगा गाय को दुहने। लेकिन जैसे ही वह गाय को दुहने के लिए बैठा कि गाय ने ऐसी लात मारी कि मोटेराम दस फुट दूर जा गिरा। उसी समय संयोगवश एक बकरी वाला वहाँ से गुजर रहा था। मोटेराम ने उसे रोक कर कहा– **'तुम मेरी गाय ले लो और अपनी बकरी मुझे दे दो।'** बकरीवाले ने तुरन्त उसे बकरी दे दी और बदले में गाय ले ली।

मोटेराम ने बकरी को खूब घास-पत्ते खिलाए। लेकिन, उसका पेट था की कुँआ। वह भरने का नाम ही नहीं ले रहा था। तभी वहाँ एक

मुर्गीवाला मुर्गियों के साथ दिखाई दिया और मोटेराम उससे बोला– **'ले लो बकरी, पेट की बड़ी। जो खाए थोड़ा, दे दो मुर्गो का जोड़ा।'** और मुर्गीवाले ने तुरन्त दे दी मुर्गी और ले ली बकरी।

इधर मुर्गियां मल–मूत्र में चोंच मारने लगी, तो मोटेराम को बड़ा बुरा लगा। तभी संयोग से उधर से एक तोते वाला आ निकला। मोटेराम ने तुरन्त उससे पुछा– 'क्यों भाई तोते वाले, तेरे तोते मल–मुत्र तो नहीं खाते'। तोते वाला बोला– 'अरे! कैसी बात करते हो? ये तो विशुद्ध शाकाहारी प्राणी हैं, केवल फल–सब्जियां खाते हैं।' यह सुनकर मोटेराम बोला– 'तो तुम यह मुर्गियों का जोड़ा ले लो और तोतों का जोड़ा मुझे दे दो।' अब मोटेराम बड़ा खुश था। लेकिन, यह क्या? अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसके हाथों से तोते उड़ गए। और बेचारा मोटेराम हताश–निराश खाली हाथ अपने घर पहुँचा। इसलिए कहा जाता है कि–

अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव स॥

अर्थात् अनेक सन्देहों का नाशक, परोक्ष वस्तु का दर्शक, सबका नेत्र स्वरूप शास्त्रज्ञान (विद्या) जिसके पास नहीं है वह अन्धे के समान है।

घर पहुँचकर मोटेराम ने सारी राम कहानी पिता को सुनाई उसकी कहानी सुनकर पिता बोले– 'बेटा, मैने तुम्हें बचपन में बहुत समझाया था कि पढ़ लो। लेकिन, तुम थे कि मानते ही नहीं थे। अब तुम्हें आभास हो रहा होगा कि विद्या का कितना महत्त्व होता है– जीवन में।'

यह सुनकर मोटेराम बोला– 'आप ठीक कह रहे हैं पिता जी! क्या मैं अब भी पढ़ सकता हूँ? अब मेरी समझ में आ गया है– विद्या का महत्त्व।'

पिता जी बोले– क्यों नहीं? विद्या का अध्ययन तो कभी भी किया जा सकता है बस यह निर्भर करता है व्यक्ति की रुचि पर। और

तुम तो अभी बीस वर्ष के ही हुए हो। अतः जुट जाओ आज से ही विद्या अध्ययन में। और मोटेराम ने किया भी यही, लग गया दिन-रात पढ़ने। अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और रुचि के कारण उसने शीघ्र ही इतनी योग्यता प्राप्त कर ली की वह एक विख्यात दार्शनिक बन गया। दूर-दूर से लोग अपनी समस्याओं का समाधान और अपने बच्चों तथा स्वयं को पढ़ाने के लिए उससे निवेदन करने लगे।

५५. मोह मार्जन

एक व्यक्ति अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता था। उसके मोह में वह मधुमक्खी की तरह लिप्त था। दैवयोग से एक दिन उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। व्यक्ति उस विछोह का सहन नहीं कर पा रहा था। वह पत्नी की शव यात्रा में विलाप करते हुए कहने लगा, 'तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकता, अब मैं भी तुम्हारे साथ चिता में जलकर प्राण त्याग दूँगा। उस व्यक्ति पर उसके गुरु की बहुत कृपा दृष्टि थी जब उन्होंने यह सब देखा तो मन-ही मन में सोचने लगे कि किस प्रकार इसको समझाया जाए। तुरन्त ही उनके मन में एक युक्ति उत्पन्न हुई। वे हाथों में एक मटका लेकर शव यात्रा में शामिल हो गए और शमशान जा पहुँचे जैसे ही लोगों ने उसकी पत्नी के शव को चिता पर रखा तो गुरुजी ने अचानक मटका जमीन पर पटक दिया। मटका टूटकर चकनाचूर हो गया। वे जोर-जोर से विलाप करने लगे।

अपने गुरुदेव का विलाप सुनते ही वह व्यक्ति उनके पास पहुँचा और कहने लगा, 'गुरुजी आप क्यों विलाप कर रहे हैं? आप तो इस संसार के मायाजाल से विरक्त हैं। आज आपको रोना क्यों पड़ रहा है?

अब गुरुजी ने उत्तर दिया, 'देख नहीं रहे हो, मेरा मटका हाथ से गिरकर टूट गया इसलिए रो रहा हूँ। तब वह व्यक्ति बोला- 'आप जैसे विरक्त व्यक्ति मिट्टी का मटका टूट जाने पर विलाप करें यह उचित नहीं है। तब गुरुजी ने कहा- 'मैं तो केवल रो रहा हूँ, तुम तो पंच तत्त्वों से बने शरीर के निष्प्राण होने पर प्राण देने पर उतारू हो।' गुरुजी के

शब्दों ने व्यक्ति के विवेक को जगा दिया। तब उस व्यक्ति ने पत्नी का विधिवत संस्कार किया और अपने घर लौट गया।

५६. कर्म ही आवरण है

एक व्यक्ति था। उसे एक बार मालूम हुआ कि गंगा किनारे रहने वाले एक साधु के पास एक पारसमणि है। पारसमणि को प्राप्त करने की इच्छा से वह व्यक्ति साधु की सेवा करने लगा। एक दिन अवसर देखकर उसने अपनी इच्छा साधु को बतला दी। यह सुनकर साधु ने कहा- मैं अभी गंगा स्नान करने जा रहा हूँ वापस आकर मैं तुम्हें पारसमणि दूँगा। लेकिन व्यक्ति के मन में पारसमणि के लिए आकुलता बढ़ गयी वह सोचने लगा पता नहीं साधु पारसमणि देगें या नहीं। उसने उनकी अनुपस्थिति में सारी झोपड़ी छान डाली, लेकिन उसको पारसमणि कहीं भी नहीं मिली और अंत में परेशान होकर बैठ गया।

साधु वापस आये उन्होंने सब कुछ जान लिया और कहने लगे- 'क्या इतना भी धैर्य नहीं है तुम्हारे अंदर।' पारसमणि तो उस डिबिया में रखी है। ऐसा कहकर उन्होंने एक डिबिया नीचे उतारी। वह डिबिया लोहे की थी। व्यक्ति सोचने लगा इस पारसमणि ने डिबिया को सोने की क्यों नहीं बनाया? क्या यह पारसमणि नकली है? साधु से पूछा कि यह डिबिया पारसमणि का स्पर्श पाकर भी लोहे की क्यों रह गयी, सोने की क्यों नहीं हुई ? तब साधु ने उसे बताया कि वह पारसमणि एक मोटे वस्त्र में लपेट कर रखी हुई है। वह आवरण युक्त होने से डिबिया सोने की नहीं बन पायी। इसी प्रकार हमारी आत्मा हमारे अन्दर ही है पर, कर्मरूपी आवरण होने के कारण वह हमें दिखाई नहीं देती।

५७. भगवान् कहाँ हैं?

एक बार भगवान् ने अपनी सभा के सभी सदस्यों को एकत्र करके एक समस्या रखी। भगवान् ने कहा- 'मैं एक समस्या से बड़ा परेशान हूँ वह समस्या यह है कि ये जो मनुष्य है ये मुझे कहीं भी शान्ति

से टिकने नहीं देता। चाहे मैं गुफा में बैठ जाऊँ, और चाहे मैं मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे में बैठ जाऊँ हर जगह मुझे तलाश कर लेता है। अब आप ही मुझे कोई ऐसी जगह बतलाएं जहाँ मैं शान्ति से रह सकूँ। सभी सभासद आपस में खुसर-फुसर करने लगे। तभी उनमें से एक वयोवृद्ध सभासद खड़े हुए और बोले- आप इस मनुष्य के अंदर छुपकर बैठ जाओ क्योंकि इसकी प्रवृति ही ऐसी है कि यह हर जगह तलाश करता है लेकिन अपने अंदर कभी तलाश नहीं करता है।

५८. मनुष्य की आयु

सृष्टि की रचना करते हुए ब्रह्माजी प्राणियों में आयु का बँटवारा कर रहे थे। सबसे पहले उनके पास गधा आया। ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारी आयु 40 वर्ष की है जाओ आराम से जीवन-यापन करो। यह सुनकर गधा बोला- हे प्रभु मैं इतनी लंबी आयु लेकर क्या करूँगा! इसको कुछ कम करो! ब्रह्माजी बोले- अरे! तुम्हें बहुत काम करना है खूब बोझा ढोना है। अपने मालिक की खूब सेवा करनी है। इसलिए यह आयु तुम्हारे लिए ठीक है। गधा बोला- नहीं प्रभु मुझे इतनी आयु नहीं चाहिए। कुछ कम करो तब ब्रह्माजी ने गधे को 20 वर्ष की आयु दे दी।

दूसरे नम्बर पर उनके पास कुत्ता आया। ब्रह्माजी ने उसे भी यही कहा जाओ तुम्हारी आयु 40 वर्ष की है आराम से जीवन-यापन करो। कुत्ते ने भी वही समस्या रखी जो गधे ने रखी थी। ब्रह्माजी ने उसे भी 20 वर्ष की आयु दे दी।

तीसरे नम्बर पर उनके पास उल्लू आया। ब्रह्माजी ने उसे भी यही कहा- जाओ तुम्हारी आयु 40 वर्ष की है सुखपूर्वक जीवन-यापन करो। उल्लू ने भी वही समस्या रखी जो गधे और कुत्ते ने रखी थी। ब्रह्माजी ने उसे बहुत समझाया लेकिन वह नहीं माना। तब ब्रह्माजी ने उसे भी 20 वर्ष की आयु दे दी।

चौथे नम्बर पर उनके पास आदमी आया। ब्रह्माजी ने उसे भी यही कहा जाओ तुम्हारी आयु 40 वर्ष की है सुखपूर्वक जीवन-यापन करो। यह सुनते ही मनुष्य बोला- हे प्रभु! यह तो बहुत कम आयु है। मैं इतनी-सी आयु में क्या करूँगा? यह सुनकर ब्रह्माजी बोले यह तो बहुत आयु है। बचपन में खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, पद-पोस्ट प्राप्त करना, शादी-विवाह करना, गृहस्थ जीवन जीना आदि। इन सबके लिए यह आयु पर्याप्त है। लेकिन मनुष्य नहीं माना। अंत में ब्रह्माजी ने कहा- अच्छा तुम नहीं मानते तो एक काम करो मेरे पास 20 वर्ष गधे की आयु के हैं वे तुम ले लो। मनुष्य फिर भी नहीं माना तो ब्रह्माजी बोले अच्छा मेरे पास 20 वर्ष कुत्ते की आयु के हैं वे भी तुम ले लो। लेकिन मनुष्य फिर भी नहीं माना तो ब्रह्माजी ने कहा कि मेरे पास अंतिम 20 वर्ष उल्लू के शेष है वह भी तुम ले लो इस प्रकार 100 वर्ष की आयु प्राप्त करके मनुष्य बड़ा प्रसन्न हुआ।

इसलिए मनुष्य 40 वर्ष की आयु तक सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करता है। उसके बाद गधे की 20 वर्ष आयु लेकर गधे की तरह संसार का भार वहन करता है। तत्पश्चात् कुत्ते की 20 वर्ष आयु लेकर घर की रक्षा करता है। इसी प्रकार उल्लू के 20 वर्ष लेकर मनुष्य रात में जागता है।

५९. ज्ञान का प्रभाव

एक सेठ का बहुत बड़ा कारखाना था। उससे बहुत से परिवारों की आजीविका चलती थी। सेठजी की करोड़ों की आमदनी थी।

एक दिन अचानक कारखाना बन्द हो गया। किसी मशीन में कोई खराबी आ गई। काम बन्द हो गया। लोग इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे। बहुत लोगों ने अपना-अपना दिमाग लगाया लेकिन मशीन ठीक नहीं हो सकी।

उसी समय वहाँ पर एक व्यक्ति आया। उसने मशीन को बड़े ही मनोयोग और ध्यान से देखा और बोला– 'सेठजी, मैं आपकी मशीन को ठीक कर सकता हूँ। यह इसी समय चालू हो जाएगी, लेकिन आपको इसके लिए दस हजार रूपये देने होंगे।'

सेठजी मन ही मन सोचने लगे, तथा विचार करने लगे कि अगर मशीन नहीं चली तो आने वाले दिनों में भारी नुकसान होगा। यह सोचकर सेठजी ने कहा, 'ठीक है। मैं तुम्हें पूरे दस हजार रूपये दूँगा। तुम जल्दी से मशीन को ठीक कर दो।'

इसके बाद उस व्यक्ति ने हथौड़ा लिया और एक विशेष स्थान पर जोर से मारा। हथौड़े का लगना था कि मशीन फटाफट चलने लगी।

सेठजी ने यह देखा तो बोले, ' अरे भाई, इसमें तो कुछ भी काम नहीं था। तुम दस हजार रूपये किस बात के माँगते हो?

तब उस व्यक्ति ने कहा, 'सेठजी, हथौड़े की चोट तो कोई भी मार सकता था, लेकिन यह हर कोई नहीं जानता कि कहाँ मारनी चाहिए?

यह सुनकर सेठजी निरुत्तर हो गए और तुरन्त उस व्यक्ति को दस हजार रूपये दे दिए।

६०. हलका लेकिन बहुत भारी

एक साधु पहाड़ी क्षेत्र में तीर्थयात्रा के लिए निकले। उनके पास अधिक कुछ नहीं बस एक थैले में दो वक्त की रोटी और कुछ नित्य उपयोगी आवश्यक वस्तुएं थीं। चलते–चलते एक दिन उन्हें ऐसा आभास हुआ कि वे मार्ग भटक गए। तथा इसके साथ ही पहाड़ के दुर्गम मार्ग पर आगे बढ़ना उन्हें बड़ा मुश्किल लग रहा था।

उसी समय मार्ग में उन्होंने एक वटवृक्ष देखा और आराम करने के लिए वृक्ष के नीचे बैठ गये। थोड़ी देर बाद ही उन्होंने अपने थैले को

सिर के नीचे दबाया और लेट गये। उसी समय वहाँ से एक छोटी-सी कन्या अपनी पीठ पर एक छोटे से बालक को लिए हुए निकली। वह भी खूब पसीने से भीगी हुई और थकी हुई लग रही थी। लेकिन फिर भी वह उस दुर्गम पहाड़ी मार्ग पर आगे बढ़ती जा रही थी। साधु यह देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। उन्होंने सहानुभूति प्रकट करते हुए बड़े ही मधुर शब्दों में कन्या से पूछा- 'बेटी, तुम तो बहुत ही समझदार और बहादुर हो। इस पहाड़ी मार्ग पर इतना बोझ पीठ पर लादकर आगे बढ़ती जा रही हो। तुम्हें थकान नहीं होती क्या?'

कन्या ने बड़े ही अनमने ढ़ग से साधु को देखा और बोली- 'स्वामी जी, बोझ तो आपने अपने सिर के नीचे दबा रखा है। यह तो मेरा छोटा भाई है, कोई बोझ नहीं।'

सत्य ही तो है। वास्तविक बोझ तो वही होता है जो हमारे मन-मस्तिष्क पर सवार होता है। सच्चे प्रेम और कर्तव्य के भाव के साथ कोई बोझ भी बोझ नहीं प्रतीत होता। वर्ना, छोटी-छोटी चीजें भी हमारे लिए अक्सर बहुत बोझिल हो जाती है।

६१. आत्मान्वेषण

कुछ समय पहले की बात है। एक जौहरी रेल में यात्रा कर रहे थे। उनके पास एक बहुत कीमती रत्न था। उसी रेल के डिब्बे में एक प्रसिद्ध ठग भी यात्रा कर रहा था। किसी प्रकार उस ठग को ज्ञात हो गया कि जौहरी के पास कीमती रत्न है और मन ही मन में उस रत्न को ठगने का उपाय सोचने लगा।

जौहरी भी बहुत समझदार था। क्योंकि उनको तो व्यापार के लिए हर तीसरे दिन यात्रा करनी पड़ती थी। ठग मन ही मन सोच रहा था कि पता नहीं जौहरी ने रत्न कहाँ छिपाकर रखा होगा, तभी वह देखता है कि जौहरी तो सो गया है। अब उसने सोचा कि मैं आराम से रत्न को ढूँढ लूँगा। और वह इधर-उधर हर स्थान पर ढूँढने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते

जब उसे काफी देर हो गयी तो वह परेशान हो गया और सोचने लगा कि कमाल हो गया। आखिर जौहरी ने रत्न कहाँ छिपाकर रखा है। और उसने एक बार फिर ढूँढ़ना शुरु कर दिया। लेकिन उसे रत्न कहीं भी नहीं मिला। अंत में उसने खूब थक-हारकर जौहरी को जगाया और कहा कि- 'आप मुझे पहचानते ही होंगे मैं प्रसिद्ध ठग हूँ आज तक मैने बहुत लोगों को ठगा है। लेकिन, आज पहली बार मैं अपने काम में असफल हुआ हूँ। कृपया आप मुझे बताइए की आखिर वह रत्न आपने कहाँ छिपा कर रखा है। मैं आपको कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा बल्कि आज के बाद मैं आपको अपना गुरु मानूँगा।

यह सुनकर जौहरी ने मुस्कुराते हुए कहा कि- जरा अपना थैला मेरे पास लाओ। ठग ने तुरन्त अपना थैला जौहरी को दे दिया।

जौहरी ने थैले में से रत्न निकाला और ठग को दिखाते हुए बोला रत्न तो आपके ही थैले में था। आपने हर जगह ढूँढ़ा लेकिन अपने थैले में नहीं ढूँढ़ा। इसी प्रकार हम सबकी स्थिति भी ठग की तरह ही है क्योंकि हम भी अपने को अपने अन्दर ढूँढ़ने का प्रयास नहीं करते हैं।

६२. मनोनिग्रह

किसी राजा के पास एक बकरा था। एक बार राजा ने घोषणा करवायी कि जो कोई भी व्यक्ति इस बकरे को चराकर तृप्त कर देगा, उसे मैं अपने राज्य का आधा हिस्सा उपहार में दूँगा, लेकिन मेरी एक शर्त है कि बकरे का पेट पूरा भरा है कि नहीं इसकी परीक्षा मैं स्वयं करूँगा।

उक्त घोषणा सुनकर राजदरबार में व्यक्तियों की लाइन लग गयी सभी कहने लगे मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा क्योंकि, आधे राज्य का सवाल था इसलिए हर कोई अवसर पाना चाहता था। सभी आपस में बात कर रहे थे कि यह भी कोई बड़ी बात है क्या? भला इस काम को कौन नहीं कर सकता? अन्त में राजा ने एक व्यक्ति को यह काम सौंप दिया।

व्यक्ति बकरे को लेकर वन में गया। वहाँ उसने सारा दिन कोमल-कोमल हरी घास अपने हाथों से तोड़-तोड़कर खिलायी। जैसे ही शाम हुई उसने सोचा कि अब तो बकरे का पेट भर गया होगा, क्योंकि सारा दिन मैंने अपने हाथों से तोड़कर घास खिलायी है। वह बकरे को लेकर राजा के सामने उपस्थित हो गया। राजा ने थोड़ी हरी घास बकरे के सामने रखी, तो बकरा तुरन्त ही उसे खाने लगा। यह देखकर राजा व्यक्ति से बोला- तुमने इसे पेटभर खिलाया ही नहीं वर्ना, यह घास क्यों खाने लगता?

इसी प्रकार कमशः राज्य के कई व्यक्तियों ने प्रयत्न किया लेकिन कोई भी सफल न हो सका।

उसी समय उस राज्य में किसी तत्त्वचिंतक व्यक्ति का आगमन हुआ। उसने भी सारी बात सुनी। उसने मन-ही-मन सोचा कि अवश्य ही इस घोषणा में कोई रहस्य है, तत्त्व है। उसने मन में किसी युक्ति का विचार किया और राज दरबार में उपस्थित हो गया और राजा से बोला- मैं आपके बकरे को तृप्त कर के लाऊँगा। राजा ने उन्हें बकरा दे दिया और वह बकरे को लेकर वन में चला गया। अब जब भी वह बकरा घास खाने लगता तो वह व्यक्ति उसे डंडे से मारता। पूरे दिन यही प्रक्रिया चलती रही। अंत में बकरे के मन में यह बात अच्छी तरह से बैठ गयी कि मैं जब भी घास खाने का प्रयास करता हूँ तो मार खानी पड़ती है।

शाम को वह व्यक्ति बकरे को लेकर राजदबार में उपस्थित हुआ। बकरे को बिल्कुल भी घास नहीं खिलाई गयी थी, लेकिन उसने राजा से कहा कि मैंने इसे भरपेट घास खिलाई है, अतः यह अब बिल्कुल घास नहीं खाएगा। आप परीक्षा कर लीजिए।

राजा ने घास डाली लेकिन बकरे ने खाना तो क्या उसे देखा और सूँघा तक नहीं। बकरे के मन में यह बात अच्छी तरह से बैठ गयी थी कि अगर मैं घास खाऊँगा तो मार पड़ेगी।

यह बकरा कोई और नहीं अपितु हमारा मन ही है। इस पर जितना अंकुश करोगे वह उतना ही सुधरेगा।

६३. सबसे शीतल क्या है?

प्राचीन काल की बात है। अयोध्या नगरी में राजदरबार लगा हुआ था। राजगुरु ने सभी से एक प्रश्न पूछा कि- इस संसार में सबसे शीतल वस्तु क्या है?

सबसे पहले एक किसान बोला- हे राजगुरु, इस संसार में सबसे शीतल वटवृक्ष की छाया है। मैं हर रोज दोपहर की भीषण गर्मी में उसकी घनी छाया में बैठकर भोजन ग्रहण करता हूँ। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि- दुनिया में इससे शीलत कोई वस्तु नहीं है।

इसके बाद वहाँ उपस्थित एक ब्राह्मण बोला- गुरुजन! इस संसार में सबसे शीतल गंगा का जल है। मैं रोज उसमें स्नान करता हूँ मुझे महान् शीतलता का अनुभव होता है।

इसके बाद राजा ने कहा- गुरुजन! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। और मेरा यह मानना है कि इस संसार में सबसे शीतल शरदपूर्णिमा का चन्द्रमा होता है, क्योंकि उस रात्रि में जब मैं रानी के साथ राजमहल की छत पर आराम करता हूँ तो मुझे इस संसार में उससे शीतल कोई वस्तु नहीं दिखती।

इसके बाद रानी बोली- हे! गुरुवर मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ और मेरा कहना ये है कि इस संसार में अगर कोई शीतल वस्तु है तो वह है- बसेरे के मोतियों से बना हुआ हार। जिसको पहनते ही जुखाम होने लगता है। अत: मेरी दृष्टि में तो यही सबसे शीतल होता है।

इस प्रकार और भी बहुत से लोगों ने अपनी-अपनी दृष्टि से शीतल वस्तुओं के बारे में बतलाया। उसी समय वहाँ पर एक व्यापारी उपस्थित हुआ और वह बोला- गुरुवर मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता

हूँ और मेरा निवेदन यह है कि– इस संसार में सबसे शीतल चन्दन होता है, क्योंकि उसको घिसकर शरीर पर लगाने से महान् शीतलता का अनुभव होता है।

वर्तमान में अगर लोगों से पूछा जाए तो लोग जवाब देगें कि– कोकाकोला सबसे शीतल होती है क्योंकि अंग्रेजी में उसका नाम ही कोल्डड्रिंक है, कोई कहेगा की आईसक्रीम सबसे शीतल होती है, कोई कहेगा अमुक कम्पनी का एयरकंडीशनर, कूलर, फ्रिज, कपड़े, गाड़ी आदि ये सभी शीतलता देते है। अतः ये सब शीतल होते हैं।

संयोगवश उस राज्यसभा में एक साधु भी बैठे हुए थे वे बिल्कुल मौन–चिंतन मुद्रा में बैठे हुए बड़े ही मनोयोग से उन सभी की बातें सुन रहे थे।

अंत में जब उन सबकी बातें खत्म हो गयी तो उन्होंने भी निवेदन किया कि– मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ, और मेरा मानना यह है कि– यहाँ उपस्थित इन लोगों ने शीतलता से संबंधित जिन–जिन वस्तुओं के नाम लिए हैं वे वस्तुएं क्वचित्, कदाचित, कथंचित् शीतल हो सकती हैं शरीर के लिए, आत्मा के लिए नहीं और शरीर को मिली हुई शीतलता वास्तव में शीतलता नहीं होती है। उससे शरीर को कुछ देर की शीतलता मिल जाती है आत्मा को नहीं।

आत्मा को अगर कोई वस्तु शीतलता प्रदान कर सकती है तो वह वस्तु है– **सम्यक्ज्ञान** और सम्यक्ज्ञान है– **आत्मज्ञान** और जिस दिन यह हो जाता है वही होती है असली शीतलता। कहा भी गया है–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

६४. श्रम ही सौं सब मिलत है, बिन श्रम मिले न काहि

हमारे देश में सदा से ही सूक्तियों का विशेष महत्त्व रहा है। सूक्तियों का अर्थ बड़ा गंभीर होता है। उनके पीछे अनेक प्रेरक प्रसंग भी अवश्य छिपे रहते हैं। ऊपर शीर्षक में लिखित सूक्ति प्रायः संसार की सभी भाषाओं में थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ उपलब्ध होती है, जिसका अभिप्राय है कि परिश्रम से मानव जीवन का घनिष्ठ संबंध है। संसार में परिश्रम के द्वारा ही मनुष्य को सब कुछ प्राप्त हो सकता है। परिश्रम के बिना संसार में किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं होता, जीवन की सम्पूर्ण सफलताएँ परिश्रम की ही देन है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को इस कहानी द्वारा भी भली प्रकार से समझा जा सकता है-

एक सेठ जी के चार पुत्र थे। वे सभी आलसी थे, परिश्रम बिल्कुल नहीं करते थे। एक दिन सेठ जी ने अपना अंतिम समय निकट जानकर पुत्रों से कहा- 'हे पुत्रों! देखो मैं अब जा रहा हूँ लेकिन, जाते-जाते तुम्हें एक बात समझाना चाहता हूँ।' पुत्रों ने कहा- 'हाँ जी पिता जी! जरूर समझाइए, हम आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करेंगे।' सेठ जी बोले- **'पुत्रों! हमेशा छाया में ही जाना, छाया में ही आना और खूब मीठा खाना, जीवन में बहुत सफल होओगे।'**

इतना कहकर सेठ जी स्वर्ग सिधार गए। अब वे चारों छाता लेकर घर से निकलते और छाता ही ओढ़कर सब काम करते। शरीर को बिल्कुल धूप नहीं लगने देते तथा खूब मिठाइयाँ खाते। थोड़े दिन बाद सेठ जी द्वारा संचित की गई जमा पूँजी समाप्त हो गई और वे बड़े परेशान रहने लगे।

एक बार उन्हें उनके पिता जी के एक मित्र मिले। उन्होंने समझाया कि तुम्हारे पिता जी का अभिप्राय था कि सूर्य उदय होने से पहले काम पर जाना और सूर्य अस्त होने के बाद ही घर लौटना, खूब

मेहनत करना ताकि खाना अच्छा लगे।

अब उनके समझ में सही बात आई और उन्होंने वैसा ही किया। कुछ दिन बाद ही वे खुशहाल हो गए।

इस कहानी से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के जीवन में परिश्रम का बहुत अधिक महत्त्व है। मनुष्य जीवन अत्यन्त संघर्षमय है। जीवन में पग-पग पर विपरीत परिस्थितियों से जूझना पड़ता है, और इसमें उन्हीं व्यक्तियों को सफलता मिलती है जो परिश्रम करते हैं अथवा जिनके जीवन में पुरुषार्थ या परिश्रम होता है। पुरुषार्थ या परिश्रम के द्वारा मनुष्य उन साधनों को अपने पास एकत्रित कर लेता है, जो उसे उन परिस्थितियों से जूझने में अत्यधिक सहायता प्रदान करते हैं।

परिश्रम एक ऐसी साधना है, जिसके माध्यम से मनुष्य महान्-से-महान् कार्य कर सकता है। परिश्रमी मनुष्य के सामने ऐसा कोई काम नहीं जिसे वह न कर सके। जिस मनुष्य में परिश्रम रूपी गुण विद्यमान् होता है, वह अपने जीवन में कभी भी दु:ख और निराशा से भयभीत नहीं होता। वह दु:ख और निराशा के क्षणों में वीर की भाँति आगे बढ़ता है और गहन अंधकार में भी अपना प्रशस्त पथ खोज लेता है। इसी श्रम (परिश्रम) की महत्ता के कारण ही भारत भूमि पर एक दर्शन का प्रादुर्भाव श्रमणदर्शन के रूप में ही हुआ है। यह दर्शन श्रम/परिश्रम (तप) पर बहुत बल देता है। जीवन में परिश्रम से अनेक लाभ होते हैं। मनुष्य चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य करता हो, बिना परिश्रम के उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। उद्योग और परिश्रम का महत्त्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए विद्यार्थी जीवन को ही देखिए यदि उस समय विद्यार्थी दिन-रात परिश्रम करके विद्याध्ययन न करे, तो वह कभी भी अपनी परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण नहीं हो सकता। अत: परीक्षा चाहे जैसी भी हो, पढ़ने की हो अथवा कार्य करने की हो, यदि मनुष्य परिश्रम न करे तो वह अपने कार्य में कभी सफल नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा में एक प्रसिद्ध सुभाषित है कि-

''उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥''

अर्थात् परिश्रम के द्वारा ही कार्य सिद्ध होते हैं, केवल कल्पनाओं से नहीं। क्या कभी सोते हुए शेर के मुख में हिरणों को घुसते हुए देखा है?

वर्तमान में हमारे समक्ष जितनी भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं चाहे वो भौतिकता संबंधी हैं या आध्यात्मिकता संबंधी, सभी परिश्रम की ही देन है।

संसार में ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने परिश्रम के बल पर ही जीवन में सिद्धि प्राप्त की है तथा ऐसे-कार्य सम्पन्न करके दिखलाए हैं जिनकी कभी हमने कल्पना भी नहीं की थी। अतः यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि जीवन में परिश्रम की सर्वाधिक आवश्यकता है। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

* **उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।**
* **देवेन देयमिति कापुरुषाः वदन्ति।**
* **यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।**

६५. किसका कैसा नाता रे

एक श्रेष्ठी पुत्र प्रतिदिन एक महात्मा जी के प्रवचन सुनने जाता था, लेकिन वह प्रवचन समाप्त होने से पहले ही वहाँ से उठकर चला आता था। एक दिन मुनि-महाराज ने उससे ऐसा करने का कारण पूछा।

श्रेष्ठी पुत्र बोला- महात्मा जी! मैं अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ यदि घर पहुँचने में थोड़ी-सी भी देर हो जाती है तो वे मुझे ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं तथा मेरी पत्नी और रिश्तेदार सभी मेरे लिए अपने प्राण बिछाते हैं। आप तो संसारियों के संबंध को मिथ्या बतलाते हैं, किन्तु आपको कोई अनुभव तो है नहीं। इसलिए आप कहते हैं इस संसार में

कोई किसी का नहीं होता मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं है।

यह सुनकर महात्मा जी सोचने लगे कि इसको समझाना चाहिए क्योंकि, यह वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ है, और वे उससे बोले अगर ऐसी बात है तो क्यों न हम उनके प्रेम की परीक्षा करके देखें? श्रेष्ठी पुत्र इसके लिए तैयार हो गया। महात्माजी ने श्रेष्ठी पुत्र को ऐसी जड़ी-बूटी दी जिसके सेवन से व्यक्ति अपनी श्वास क्रिया को रोक सकता है और देखने वाले समझते हैं कि इसकी तो मृत्यु हो गई है। महात्माजी ने उसे समझाते हुए कहा कि कल सुबह तुम इस जड़ी-बूटी का सेवन कर लेना और जब तक मैं ना आऊँ और तुम्हें उठने के लिए ना कहूँ तब तक उठना मत, चुपचाप सब सुनते रहना।

अगले दिन श्रेष्ठी पुत्र ने वैसा ही किया जैसा महात्माजी ने बतलाया था। आज जब वह उठकर नहीं आया तो घर के सभी लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अन्दर जाकर देखा तो तुरन्त रोने-चिल्लाने लगे। कई डॉक्टरों और वैद्यों को बुलाया गया परन्तु उनके सभी उपाय असफल रहे। सभी सम्बन्धी प्रलाप कर रहे थे। पिता जी कह रहे थे- हे भगवान्! इसके स्थान पर आप मुझे उठा लेते, माता जी कह रही थी मुझे उठा लेते, पत्नी कह रही थी मुझ उठा लेते। इस प्रकार वे लोग प्रलाप कर रहे थे।

उसी समय महात्माजी वहाँ आ पहुँचे। सभी ने उनसे पुत्र का इलाज करने की प्रार्थना की। महात्माजी ने इलाज करना स्वीकार कर लिया तथा इलाज करते हुए कहने लगे- शायद किसी ने जादू-टोना कर दिया है, मैं इसका उपाय कर देता हूँ। उन्होंने एक बर्तन में पानी मँगवाया और उस पुत्र के मस्तक पर घुमाकर कहा, मैंने मंत्रशक्ति से उस जादू-टोने को इस पानी में उतार लिया है। अब यदि आपको इसे बचाना है तो यह पानी आप सब में से किसी एक को पीना होगा।

उन सभी ने एक स्वर में पूछा- लेकिन महात्मा जी यह तो बताइए कि पानी पीने वाले की हालत क्या होगी?

महात्माजी बोले- हो सकता है पानी पीने वाला मर भी जाए किन्तु, यह युवक बच जाएगा। वैसे भी आप सभी कुछ समय पहले कह ही रहे थे कि इसके स्थान पर मैं मर जाता, मैं मर जाता।

सर्वप्रथम महात्माजी युवक की माता से बोले तो माताजी इस पानी को आप पी लें, आप वैसे भी वृद्ध हो गई हैं आपका प्रयाणकाल वैसे भी नजदीक ही है।

यह सुनकर माता जी बोली- मैं अपने लाडले के प्राण बचाने के लिए यह पानी पीने को तैयार हूँ किन्तु मैं पतिव्रता हूँ। मेरी मृत्यु के बाद मेरे वृद्ध पति की सेवा कौन करेगा? तथा अभी तो मुझे अपने नाती-पोतों के विवाह आदि देखने हैं, अगर मैं मर गई तो वो सब कैसे देख पाऊँगी? अतः मैं अभी नहीं मरना चाहती।

अब महात्माजी पिता से बोले- तो आप यह पानी पी लीजिए। यह सुनकर पिताजी बोले। महात्माजी! मैं यह पानी पी तो लूँ, लेकिन मेरी मृत्यु के बाद मेरी पत्नी का क्या होगा, मेरी इतनी जमीन-जायदाद है, उसका क्या होगा, मुझे सरकारी पैंशन मिलती है, उसका क्या होगा? और अभी तो मुझे बहुत से काम करने हैं, उन सबको किए बना मैं अभी नहीं मर सकता।

महात्मा जी ने विनोद करते हुए कहा- आप दोनों आधा-आधा पी लो, दोनों के सभी क्रियाकर्म एक साथ हो जाएंगे। लेकिन वे तैयार नहीं हुए।

अब महात्माजी ने श्रीमती जी (उसकी पत्नी) से कहा कि आप ही इस पानी को पी लीजिए जिससे आपके पतिदेव पुनः जीवित हो जाएं।

यह सुनकर श्रीमती बोली- मेरे वृद्ध सास-ससुर ने तो संसार के सभी सुख भोग लिए हैं, जब वे ही नहीं पीना चाहते तो मैं कैसे पीऊ? मैं तो अभी जवान हूँ मैंने तो अभी संसार के सुख देखे भी नहीं हैं, मैं तो इनकी जायदाद और पेंशन से ही सुखपूर्वक जी लूँगी।

इस प्रकार महात्माजी ने क्रमशः उस श्रेष्ठी पुत्र के सभी रिश्तेदारों से पानी पीने को कहा लेकिन कोई भी तैयार नहीं हुआ। बल्कि, वे सब अब महात्माजी से ही कहने लगे कि- महात्माजी! क्यों न इस पानी को आप ही पी लें। आपके तो आगे-पीछे कोई रोने-धोने वाला है नहीं, न ही आपके पास कोई जमीन-जायदाद ही है। वैसे भी आप हमेशा प्रवचनों में कहा ही करते हैं कि परोपकार सबसे बड़ा धर्म है। इसलिए आप ही यह परोपकार का काम कर दें, आपको सद्गति मिलेगी। हम हर साल आपकी मृत्यु के पश्चात् श्राद्ध और जन्म जयन्ती आदि समारोह करेंगे आप कोई चिन्ता मत करना।

महात्माजी ने वह पानी पी लिया तथा श्रेष्ठी पुत्र को उठाते हुए बोले- क्यों पुत्र! अब मालूम पड़ गया कि कौन किससे कितना प्रेम करता है। श्रेष्ठी पुत्र बोला- हाँ महात्माजी! आज आपकी बात मेरी समझ में आ गयी मैंने संसार की असारता को आज जान लिया। आप ठीक ही कहा करते थे कि- कोई किसी का नहीं है। सभी संबंध स्वार्थपरक ही हैं। इसी संबंध में कबीरदास जी का निम्न पद्य चिन्तनीय है-

मन फूला-फूला फिरे जगत् में किसका कैसा नाता रे।
पेट पकड़ कर माता रोवे, बाँह पकड़ कर भाई॥
लपट-झपट कर तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई॥मन॥
जब तक जीवे माता रोवे, बहन रोवे दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवे, फेर किए घर बासा॥मन॥

६६. शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम्

पुराने समय की बात है। राजस्थान में एक बादशाह था। कर्मोदय से उसे कुष्ठ रोग हो गया। वह बहुत परेशान था। उसी समय उनके राज्य में एक महात्मा का आगमन हुआ। किसी ने बादशाह को बतलाया कि महात्मा बहुत ही पहुँचे हुए संत हैं, क्यों न आप उनसे इस रोग का उपचार पूछ लो? बादशाह को बात समझ में आ गई और वह तुरन्त महात्मा के पास पहुँच गया। महात्मा ने सारी बात सुनकर बादशाह को

कहा कि आप सौ अमेरिकन गायों का दान करो आपका रोग दूर हो जाएगा।

बादशाह ने तुरन्त अपने सैनिकों को आदेश दिया कि सौ अमेरिकन गायें खोज कर लाओ। सैनिकों ने खोज आरम्भ कर दी। लेकिन उन्हें सौ गाएं कहीं नहीं मिल रही थी। बादशाह का रोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। उसी समय किसी ने सूचना दी कि किसी दूसरे राज्य में एक गायों का व्यापारी रहता है। उसके पास आपको इतनी गाएं इकट्ठी मिल सकती हैं। बादशाह अब मरणासन्न था, बोलचाल भी नहीं सकता था, किसी तरह उसने सैनिकों को इशारा करके वहाँ जाने के लिए कहा।

सैनिक एक-दो दिन की यात्रा कर के उस व्यापारी के पास पहुँच गए और सारी बात बताई। व्यापारी बोला- सौ क्या, आप हजार गाएं ले जाइये। सैनिकों ने गायों का मूल्य पूछा तो व्यापारी कहने लगा। आप गायों को ले जाओ और बादशाह से कहना- कभी समय आए तो मैं मूल्य ले लूँगा। सैनिकों को बड़ा आश्चर्य हुआ और गायों को लेकर चले गए। बादशाह ने भी जब यह बात सुनी तो उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ लेकिन, उस समय तो उसे अपने प्राण प्यारे थे इसलिए ज्यादा सोच-विचार न करके गायों का दान कर दिया। भाग्यवशात् उसका रोग दूर हो गया। ठीक होते ही बादशाह ने सम्मानपूर्वक व्यापारी को बुलवाया और गायों का मूल्य लेने को कहा लेकिन, व्यापारी ने बादशाह को भी वही बात कही जो सौनिकों को कही थी। तत्पश्चात् व्यापारी चला गया और बादशाह भी अपने काम में व्यस्त हो गया।

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया। दैववशात् एक बार उस व्यापारी का ऐसा बुरा समय आया कि उसका सारा व्यापार नष्ट हो गया। धीरे-धीरे उसके घर की सभी वस्तुएं पेट की आग बुझाने के लिए साहूकार के यहाँ बिकने चली गयी तथा एक दिन कर्जदारों ने उसके घर को भी नीलाम कर उसे घर से बेघर कर दिया। वह अपने बाल-बच्चों के साथ वन में भटकने लगा। उसी समय उसकी पत्नी ने उसे याद दिलाया कि आपने बहुत समय पहले दूसरे राज्य के बादशाह की मदद

की थी, क्यों ने हम उनकी शरण में चलें। पत्नी की बात व्यापारी की समझ में आ गई और वे उस राज्य की ओर चल पड़े। जैसे ही वे महल के प्रवेश द्वार पर पहुँचे तो पहरेदार ने उन्हें अन्दर जाने से रोका तथा उनके हालात देखकर कहने लगा- न जाने कहाँ से भिखमंगे चले आते हैं। लेकिन, उसी समय वहाँ से एक सैनिक निकला उसने व्यापारी को पहचान लिया तथा पहरेदार से बोला इन्हें यहीं ठहराओ, मैं अभी दो मिनट में बादशाह के पास जाकर आता हूँ।

सैनिक ने अंदर जाकर बादशाह को सारी बात बतलाई। वह सुनते ही तुरन्त दौड़ पड़ा तथा प्रवेशद्वार पर जाकर उन्हें अंदर लिवा लाया। बादशाह ने सारे हालात जानकर सैनिको को आदेश दिया कि इन बच्चों को और इनकी पत्नी को राजमहल में ले जाओ और इनके रहन-सहन, खान-पान आदि का शाही प्रबंध करो। उन सबके चले जाने पर बादशाह ने दूसरे सैनिकों को आदेश दिया कि व्यापारी को किसी अलग कमरे में रखो और इनके खाने-पीने का सब प्रबंध वहीं कर दो।

समय व्यतीत होने लगा। बादशाह प्रतिदिन सैनिकों से व्यापारी का हाल-चाल पूछते रहते। एक दिन बादशाह ने एक सैनिक को एक रूपया देकर कहा कि बाजार जाओ और इस एक रूपये का जूट (जिससे रस्सी बनती है) व्यापारी को लाकर दो और उससे कहो कि वह उसे बाँटकर रस्सी तैयार करे और शाम को तुम उस रस्सी को बाजार में बेचकर आओ और मुझे बताओ कि वह रस्सी कितने रूपयों में बिकी। सैनिक ने वैसा ही किया। शाम को वह रस्सी बेचने बाजार में गया तो वह रस्सी चार आने (25 पैसे) की बिकी। सैनिक ने सारा हाल बादशाह को सुनाया। बादशाह ने सैनिक को फिर वैसा ही करने को कहा। अगले दिन व्यापारी द्वारा तैयार की गयी रस्सी आठ आने (50 पैसे) की बिकी। इसी प्रकार क्रम चलता रहा और एक दिन ऐसा आया कि वह रस्सी पाँच रूपये में बिकी। अगले दिन सात रूपये की इसी प्रकार धीरे-धीरे व्यापारी द्वारा तैयार की गयी रस्सी और भी अधिक रूपयों में बिकने लगी।

अब बादशाह ने सैनिक को आदेश दिया कि व्यापारी को मेरे पास बुलाकर लाओ और उसे अच्छे-अच्छे वस्त्र आभूषण पहनाओ।

सैनिकों ने वैसा ही किया। व्यापारी यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य-चकित हुआ तत्पश्चात् बादशाह ने उस व्यापारी को व्यापार करने के लिए प्रचुर मात्रा में धन दिया और कहा कि जाओ तुम जाकर खुशी-खुशी अपना व्यापार पुनः प्रारंभ करो।

इस सारी घटना को देखकर व्यापारी तो आश्चर्यचकित था ही, लेकिन दरबार के अन्य लोग भी बहुत आश्चर्यचकित थे। वे सभी यह जानने के लिए लालायित हो रहे थे कि यह सारा माजरा क्या है? उन सबकी उत्सुक्ता को देखकर बादशाह बोला- आप सब यही सोच रहे होंगे कि यह बादशाह भी अजीब स्वभाव का इंसान है, लेकिन यह सब मैने इसकी भलाई के लिए ही किया है। क्योंकि दैववशात् कुछ समय मनुष्य के जीवन में ऐसा आता है कि चाहे दूसरा व्यक्ति उस मनुष्य की कितनी भी मदद करने की कोशिश करे लेकिन, वह मुसीबत से छुटकारा नहीं पा सकता है। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि-

शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम्।

६७. सियार की चतुराई

एक जंगल में चिंपू नाम का शेर राज्य करता था। वह प्रतिदिन जंगल के जानवरों का शिकार करके अपनी पेट की भूख को शांत करता था। एक दिन घूमते-घूमते सुबह से दोपहर हो गई लेकिन, उसे कोई जानवर नहीं मिला। इतने में ही उसे कुछ दूरी पर भोलू नाम का सियार दिखाई पड़ा तो वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि लो बन गयी बात अब तो मजे से इसे चट कर जाऊँगा।

भोलू सियार ने भी अपनी तिरछी नजरों से चिंपू को देख लिया और मन ही मन सोचने लगा कि अब जान बचाने का कोई तरीका नहीं है। अगर मै भागूं तो ये मुझे दोड़कर पकड़ लेगा और मैं कहीं झाडियों में छिपूँ तो यह सूँघ कर खोज लेगा, इसलिए अब बचने का कोई तरीका नजर नहीं आता। सियार होता ही बहुत चतुर प्राणी है। इसलिए अब उसने स्वयं से मन ही मन कहा अब मरना तो है ही क्यों ना किसी युक्ति का

प्रयोग किया जाए और उसने तुरंत अपने मन में एक युक्ति की योजना बना ली।

अब भोलू स्वयं ही जोर-जोर से हँसते हुए राजा चिंपू की ओर बढ़ने लगा। चिंपू को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ जैसे ही भोलू चिंपू के पास पहुँचा उसने पूछा कि भाई क्या बात है? तुम्हें तो भयभीत होना चाहिए तुम हो कि हँसते हुए मेरे पास चले आ रहे हो।

तब भोलू कहने लगा- क्या बताऊँ महाराज बात ही कुछ ऐसी है। आज सुबह ब्रह्ममूहुर्त के समय प्रतिज्ञा की थी कि आज मैं जब तक दस शेरों को नहीं मार दूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। और हुआ यह कि नौ शेर तो मैंने दिन निकलते ही एक घण्टे के अन्दर मार गिराए लेकिन दसवां शेर खोजते-खोजते दोपहर हो गयी। तथा भूख के मारे मेरा बुरा हाल हो रहा है अब तुम मिले हो मेरी प्रतिज्ञा पूरी होने का समय आ गया है। इसलिए मैं हँसते हुए चला आ रहा हूँ।

अब चिंपू शेर मन ही मन भयभीत हो गया कि जब इसने नौ शेरों को मार गिराया है वह भी एक घंटे में तो मुझे मारने में यह कितनी देर लगाएगा। और शेर ने न इधर देखा और न उधर देखा वह तुरंत दुम दबाकर भाग गया। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं हि रक्षितुमिच्छन्ति धिया संयोजयन्ति तम्॥

अर्थात् देवता चरवाहे की तरह लाठी लेकर रक्षा नहीं करते हैं। जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं उसे वे सुबुद्धि से संयुक्त कर देते हैं।

६८. मुक्ति का उपाय

वाराणसी में एक महात्माजी रहते थे। उनके पास एक तोता रहता था। वह तोता सारे दिन महात्माजी की बातें सुनता रहता। धीरे-धीरे सत्संगति के प्रभाव से वह तोता बहुत सारी अच्छी बातें बोलना भी सीख गया। आने-जाने वालों का मधुर भाषा में स्वागत, अभिवादन भी करने लगा तथा तत्त्वज्ञान की भी बहुत कुछ बातें बोलने लगा जैसे- नमस्कार!

आइए बैठिए, आत्मा को जानिए, आत्मा अलग है, शरीर अलग है, मुक्ति का रास्ता होता है, मुक्ति प्राप्त की जाती है इत्यादि। अच्छे वातावरण का प्रभाव पड़ता ही है चाहे कोई भी प्राणी हो।

दैववशात् एक दिन उस आश्रम में कहीं से दो चोर आ गए। तोता अपने विचारों में मग्न था और उन दोनों को देखकर बोलने लगा– आइए, बैठिए, नमस्कार, आपका स्वागत है। महात्माजी अभी आ रहे हैं नदी पर स्नान करने गए हैं।

यह सब देखकर उन चोरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। मन ही मन सोचने लगे कि यह तोता तो हमारे बहुत काम का है, इसे तो अपने अड्डे पर ले ही जाना होगा, और कुछ मिले या न मिले।

इतने में महात्मा जी आ गए। चोर बोले– महात्मा जी! हमें आपका यह तोता चाहिए। महात्माजी बोले– क्या कहा? आप दोनों को यह तोता चाहिए अरे! यह तो मेरा बहुत ही प्रिय है बचपन से मेरे पास खेलकूद कर बड़ा हुआ है, इसे मैं नहीं दे सकता भले ही इसके बदले मेरे आश्रम का सारा सामान ले जाओ।

यह सुनकर दोनों चोर क्रोधित होकर बोले– आप हमें जानते नहीं हो, हम कौन हैं? अगर सीधे हाथ से नहीं दोगे तो हम दूसरा रास्ता भी जानते हैं। सोच लो अभी हम आपको मौका देते हैं।

सारी बात सोच समझ कर महात्मा ने निर्णय किया कि इन्हें तोता देने में ही भलाई है देखा जाएगा जो होगा। महात्मा बोले– ले जाओ भाई लेकिन इसे अच्छी तरह रखना और हो सके तो कभी–कभार इसका हाल–चाल मुझे भी देना।

चोर तोते को लेकर अपने अड्डे पर आ गए और तोते का पिंजरा वृक्ष पर लटका दिया। वे तोते को अच्छी–अच्छी चीजें खाने को देते मगर तोता बहुत उदास रहता और विचारों में खोया रहता। महात्माजी से बिछुडने का दुःख उसे था ही लेकिन, इससे भी अधिक वह वहाँ के वातावरण से दुःखी था। कहाँ तो आश्रम था जहाँ सारा दिन अच्छी–अच्छी बातें सुनने को मिलती थी और कहाँ यह चोरों का अड्डा जहाँ सारा दिन

उल्टी-सीधी और गंदी बातें सुनने को मिलती हैं।

ऐसे ही कुछ दिन व्यतीत हुए थे कि चोरों को आश्रम की ओर जाना था। उन्हें महात्माजी की बात याद आ गयी और कहने लगे- भाई! तोते हम आश्रम की तरफ जा रहे हैं। अगर तुम महात्मा को कुछ संदेश देना चाहते हो तो बता दो हम कह देंगे।

तोता बोला- संदेश तो क्या है पर उनसे एक प्रश्न पूछ कर आना कि मुक्ति का उपाय क्या है? चोरों को आश्रम में आया देखकर महात्माजी ने पूछा- क्यों भाई! मेरा तोता ठीक-ठाक है ना उसका स्वास्थ्य ठीक है ना।

अब चोर बोले- महात्माजी यहाँ से जाने के बाद वह बहुत ही उदास रहने लगा है। खाता-पीता भी कम ही है। न जाने किन विचारों में खोया रहता है। लेकिन आपसे एक प्रश्न पूछकर आने को कहा है इस लिए हम आपके पास आए हैं।

महात्माजी बोले- क्या प्रश्न पूछा है उसने मुझे बताओ मैं उसका उत्तर दूँगा।

चोर बोले- उसने पूछा है कि मुक्ति का उपाय क्या है?

यह सुनकर महात्माजी ने कुछ सोचा और धड़ाम से नीचे गिर गए। यह सब देखकर चोर एकदम घबरा गए और सोचने लगे अरे! यह महात्मा तो मर गया इसकी मृत्यु के अपराध में पुलिस हमें पकड़ेगी और हमारा तो सारा काम धंधा ही चौपट हो जाएगा क्योंकि हम वैसे ही चोरी का काम करते हैं और वे तुरंत वहाँ से भाग गए। जैसे ही वे अपने अड्डे पर पहुँचे तोते ने तुरन्त पूछा- महात्माजी मिले थे? मेरा प्रश्न पूछा या नहीं?

चोर बोले- भाई तोते! महात्माजी तो मिले थे और हमने तुम्हारा प्रश्न भी पूछा था, लेकिन जैसे ही हमने तुम्हारा प्रश्न पूछा- महात्माजी तुरंत मूर्छित होकर नीचे गिर गए और हो न हो हमें तो ऐसा लगा जैसे वे मर गए। यह सुनकर तोते ने कुछ सोचा और वह भी श्वास-क्रिया को रोककर पिंजरे में लुढ़क गया।

चोर बड़े परेशान हुए कि आज हो क्या रहा है? उन्होंने तोते को पिंजरे से बाहर निकाला और फेंक दिया। तोता तो चाहता ही यही था और उड़ते ही बोला- मिल गया मुक्ति का उपाय। इस संदर्भ में कहा भी जाता है कि- **झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः।** अर्थात् चतुर लोग झट से दूसरे के अभिप्राय को समझ लेते हैं।

६९. स्वयं से बातचीत

व्यक्ति का जब से जन्म होता है तभी से उसमें कुछ न कुछ चिन्तन प्रारंभ हो जाता है। धीरे-धीरे जैसे ही उसकी आयु में वृद्धि होती जाती है वह इस संसार के रिश्ते-नातों के बारे में खूब आनन्द मनाता है, सांसारिक वस्तु को अपनी समझकर उसमे आसक्त हो जाता है। इन सबके अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता है। इसी असक्ति के कारण वह अपने वास्तविक भले-बुरे को भी नहीं समझता और वास्तविकता से कोसों दूर हो जाता है। लेकिन स्वयं के वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं करता और जन्म-जन्मांतर तक इस संसार-सागर में भ्रमण करता रहता है। जब भी कभी जीवन में कोई संकट आ जाता है तो भगवान को कोसना आरम्भ कर देता है कि- हे भगवान! तुमने यह संकट मुझे क्यों दे दिया और खूब दुःखी होता है। लेकिन उस संकट के मूल को समझने का प्रयास नहीं करता। अगर व्यक्ति कभी समय निकाल कर स्वयं से बातचीत करने का प्रयास करे तो उसे सभी संकटों का हल अपने-आप स्वयं से मिल जाए।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि अपने-आप से बात कैसे की जाए? उक्त प्रश्न का समाधान बहुत ही आसान है। इसके लिए सर्वप्रथम तो भेद-विज्ञान होना बहुत आवश्यक है। भेद-विज्ञान अर्थात् यह शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह दोनों बिल्कुल भिन्न वस्तु हैं। जैसे- रेल का इंजन और रेल के डिब्बे। और जब यह भेद-विज्ञान हो जाए तब इस प्रकार से चिंतन प्रारंभ करें-

अरे आत्मन्! मैं क्या हूँ? विचार करुँ। मैं ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मा हूँ, मेरा इस जगत् की वस्तुओं से यथार्थ में कोई संबंध नहीं है।

मैं एक ज्ञान-दर्शनमय आत्मा हूँ, स्वयं हूँ, इसलिए अनादि से हूँ, न मेरा कभी जन्म हुआ है और न कभी मेरा मरण होगा। इस मनुष्य जन्म से पहले भी मैं था। क्या था? अनन्तकाल तक तो निगोदिया जीव रहा, एक सेकेण्ड में सोलह बार पैदा हुआ और मरा। जीभ, नाक, कान, आँख और मन तो था नहीं, था तो केवल शरीर। ज्ञान की ओर से देखो तो जड़। बहुत बुरी दशा। कर्मोदय का सुयोग मिला तो उस दुर्दशा से निकला। पृथ्वीकायिक हुआ तो फावड़ों से खोदा गया, कूटा गया, तोड़ा गया, सुरंग से फोड़ा गया। जलकायिक हुआ तो औटाया गया, विलोरा गया, गर्म आग पर डाला गया। अग्निकायिक हुआ तो पानी से राख से, धुल से बुझाया गया, लोहे के सलाखों से खुदेरा गया। वायुकायिक हुआ तो पंखों से, बिजलियों से तोड़ा गया, रबर आदि में रोका गया। वनस्पतिकायिक हुआ तो काटा, छेदा, भूना और सुखाया गया।

कीड़ा भी मैं ही बना। मच्छर, मक्खी, बिच्छू आदि भी मैं ही बना। बताओ उस समय कौन मेरी रक्षा कर सका? रक्षा तो बहुत दूर की बात, दवाईयां डाल-डाल कर मारा गया, पत्थरों से जूतों से, खुरों से दबोचा एवं मारा गया। बैल, घोड़ा, कुत्ता आदि मैं ही बना। कैसे-कैसे दु:ख भोगे? भुखा-प्यासा रहा, सर्दी-गर्मी को सहन किया, चाबुक की मार खाई। नाना प्रकार के दु:खों को सहन किया।

उक्त सारी कथा किसी और की नहीं अपितु मेरी स्वयं की है यह दशा क्यों हुई? क्योंकि मैने मोह को बढ़ाया, खूब कषाय की, खाने, पीने और विषय सेवन में अत्यन्त तीव्र लालसा रखी, तृष्णाओं को खूब बढ़ाया, नाना कर्म बाँधे, मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य सेवन किए। बड़ी कठिनाई और कर्मोदय के संयोग से यह मनुष्य जन्म मिला लेकिन यहाँ भी मोह-राग-द्वेष और कषायों में ही लिप्त रहा। अत: मनुष्य होना न होना बराबर रहा। कभी ऐसा, भी सुयोग हुआ कि मैंने देव होकर या राजा, सम्राट और धनपति होकर अनेक प्रकार की सम्पतियों को प्राप्त किया लेकिन वहाँ भी क्लेश का अनुभव किया क्योंकि वे सभी संपतियाँ भी तो थी नश्वर ही थी, एक न एक दिन तो उन्हें छोड़ना ही पड़ा। अत: आत्मन्! तू ऐसा चिंतन कर कि मै स्वयं से ज्ञान-दर्शनमय हूँ, प्रभु हूँ,

स्वतंत्र हूँ, सिद्ध परमात्मा की जाति का हूँ।

क्या कर रहा हूँ मैं? उठूँ, चलूँ, और अपने स्वभाव में विराजमान हो जाऊँ। मैं अकेला हूँ अकेला ही पुण्य-पाप करता हूँ अकेला ही पुण्य-पाप भोगता हूँ, अकेला ही अपने शुद्ध स्वरूप की भावना कर सकता हूँ और अकेला ही मुक्त हो सकता हूँ। मैं सचेत हो जाऊँ कि- पर पर ही है, पर में निजबुद्धि करना ही दुःख है; स्वयं में आत्मबुद्धि करना सुख है, हित है, परम अमृत है। वह मैं ही तो स्वयं हूँ। पर की आशा छोड़ूँ, अपने में मग्न होने की धुन रखूँ। सोचूँ तो यही सोचूँ परमात्मा का स्वरूप। उसकी भक्ति में लीन रहूँ। प्राणियों की सोचूँ तो यही सोचूँ कि उनका हित किस प्रकार से हो। लोगों से बोलूँ तो हित, मित, प्रिय वचन बोलूँ। करूँ तो ऐसा करूँ जिससे किसी भी प्राणी का अहित न हो, घात न हो।

७०. मानसिक प्रदूषण

पर्यावरण आज न केवल भारत की अपितु विश्व की एक विशालतम समस्या बन चुकी है। सम्पूर्ण विश्व के बड़े-बड़े मूर्धन्य मनीषी इससे अत्यन्त चिन्तित हैं और शीघ्र ही कोई ठोस हल ढूँढ़ लेना चाहते हैं। वे इतने चिन्तित हैं कि यदि पर्यावरण प्रदूषण की इस समस्या का कोई हल नहीं निकला तो शीघ्र ही पृथ्वी पर जीवन मुश्किल ही नहीं असम्भव हो जाएगा।

वर्तमान वैज्ञानिक पर्यावरण प्रदूषण को मुख्यतया तीन प्रकार का बतलाते हैं-जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण। किन्तु हम समझते हैं कि उक्त प्रदूषणों में मानसिक प्रदूषण को भी जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि लगभग उक्त तीनों प्रकारों में मानसिक प्रदूषण ही मूल कारण सिद्ध होता है। जैसा कि अनेक धार्मिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तकों का मत भी है। मन की मलिनता अज्ञान एवं राग-द्वेष आदि भावों से निर्मित होती है और यह सुस्पष्ट है कि उक्त तीनों प्रकार के प्रदूषणों के प्रचार-प्रसार में मन की ऐसी मलिनता की ही अहम् भूमिका सिद्ध होती है यदि मनुष्य अज्ञानी न हो और अपने राग-द्वेष में अत्यधिक

आसक्त न हो तो वह कदापि प्रदूषण की वृद्धि में किंचित् भी योगदान नहीं कर सकता। जब भी कोई मनुष्य हमारे पर्यावरण को प्रदूषित करने की ओर कदम बढ़ाता है तो हम समझते हैं कि इसके पीछे या तो उसका अज्ञान उत्तरदायी होता है। अथवा उसके राग-द्वेष। ध्यान रहे राग-द्वेष के अन्तर्गत मन के सभी विकारी भाव यथा-क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, ईर्ष्यादि समाहित हो जाते हैं। अतः प्रदूषणों की संख्या में मानसिक प्रदूषण की गणना करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। मानसिक प्रदूषण को केवल एक कोटि का नहीं बल्कि सर्वप्रथम कोटि का प्रदूषण मानना चाहिए ऐसा हमारा विनम्र मत है।

७१. जीने की कला

'वर्तमान' (जो अभी चल रहा है) में जीना भी एक विशिष्ट कला है, लेकिन बहुत कम लोग इस कला को जानते हैं। हममें से अनेक लोग ऐसे हैं जो एक घण्टे में से उनसठ (59) मिनिट अतीत (जो बीत गया है) की ही सोचते रहते हैं। इस दौरान हम अपने खोये हुए अवसरों का ही शोक मनाते रहते हैं या फिर भविष्य के बारे में सोचते रहते हैं जो कि अभी आया भी नहीं है और उसके बारे में अच्छा या बुरा होने के संशय को अपने गले में बाँधे रहते हैं।

बहुत से लोग अतीत में हुई अपनी असफलताओं का भार तथा आने वाले भविष्य की कल्पना में ही अपने आपको बर्बाद कर लेते हैं। हमें वर्तमान कार्य करते हुए भविष्य के प्रति चिन्तित नहीं होना चाहिए, क्योंकि भविष्य की डोर हमारे हाथ में होती ही नहीं और न ही अतीत के सम्बन्ध में सोचकर पश्चाताप ही करना चाहिए क्योंकि जो बीत गया सो बीत गया उसे तो वापस लाया नहीं जो सकता। हाँ इतना अवश्य करना चाहिए कि जिस भी कार्य के कारण हमें पश्चाताप हो रहा है वह कार्य भविष्य में कभी घटित नहीं हो- ऐसा प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

हमें सच्चाई का आँचल पकड़कर आगे बढ़ना चाहिए तथा कभी भी यह नहीं भूलना चाहिए कि आज का समय ही हमारे पास ऐसा समय है जिसे हम सम्भव तौर पर जी सकते हैं, जिसका आनन्द उठा सकते

हैं, आइये, हम शारीरिक और मानसिक नरक के भागीदार न बनें तथा अतीत में हुई भूलों पर व्यर्थ ही पश्चाताप न करते रहें। आज में जीने के लिए अपने आपको केन्द्रित करके सुनहरे भविष्य की कामना करें। किसी लेखक ने ठीक ही लिखा है कि-

*** शानदार भूत था, भविष्य भी महान् है।**
अगर हम सम्हाल लें, जो कि वर्तमान है॥

***भूतकाल सपना, भविष्यकाल कल्पना, वर्तमानकाल अपना।**

इसीलिए हमें भूत और भविष्य की चिन्ता न करते हुए वर्तमान में जीना चाहिए।

७२. जो होता है, अच्छा होता है

कुछ समय पहले की बात है। राजस्थान में एक राजा राज्य करता था। वह सर्वगुण सम्पन्न था। उसका एक अत्यंत योग्य, चतुर एवं विश्वसनीय मंत्री था। वह राज-काज के सभी कार्यों में निपुण था, इस लिए राजा उसका बहुत सम्मान भी करता था।

एक दिन राजा कुछ काम कर रहे थे तो उनके हाथ की एक अंगुली कट गयी। राजा बहुत दुःखी हुआ। मंत्री भी वहीं बैठा था और देखकर कहने लगा- जो हुआ अच्छा ही हुआ। राजा को यह सुनकर गुस्सा तो बहुत आया लेकिन कहा कुछ भी नहीं, शांत रहा।

चार-पाँच दिन बाद राजा विहार करते-करते जंगल में बहुत आगे निकल गया और अपने सिपाहियों से अलग हो गया। उसको वहाँ भीलों ने पकड़ लिया। भीलों को देवी माँ के समक्ष किसी सुंदर व्यक्ति की बलि चढ़ानी थी। राजा सुंदर एवं बलिष्ठ तो था ही, अतः भीलों ने कहा- इससे अच्छा व्यक्ति कहाँ मिलेगा, चलो ले चलो। राजा बहुत भयभीत हो गया, लेकिन अब करें तो क्या करे? चुपचाप उनके साथ चल दिया।

भीलों ने राजा को पुरोहित के सामने पेश करके कहा- लीजिए पुरोहित जी! बलि के लिए व्यक्ति उपस्थित है। पुरोहित ने कहा- बलि से पहले जाँच की जाएगी कि इनके शरीर का कोई अंग खराब तो नहीं है। जब जाँच हुई तो उनकी अँगुली कटी हुई थी। यह देखकर पुरोहित ने कहा कि इनकी बलि नहीं दी जा सकती क्योंकि ऐसा विधान है कि अंग-भंग व्यक्ति की बलि नहीं दी जा सकती। अब राजा की जान में जान आयी और उसने अपने मंत्री द्वारा कही गयी बात को मन ही मन याद किया कि उसने ठीक ही कहा था- जो होता है, वह अच्छा ही होता है।

७३. संयम

एक सेठ था। उसके यहाँ पुत्र की शादी का अवसर आया। उसने हलवाई को मिठाई आदि पकवान बनाने के लिए बुलाया। हलवाई ने सोचा कि सेठ जी के यहाँ बहुत से लोग आएंगे, पता नहीं बाद में मुझे कुछ खाने को या न मिले इसलिए वह एक लड्डू बनाकर थाली में रखता और दूसरा अपने मुँह में रखता। इस प्रकार न जाने वह कितने लड्डू पेट में डाल गया। जब उसका पेट खूब भर गया तो धड़ाम से नीचे गिर गया।

वहाँ उपस्थित लोगों ने तुरन्त वैद्य को बुलाया कि कहीं कोई अनहोनी घटना न घट जाए। वैद्य आया, बोला- घबराने की कोई बात नहीं, एक सरसों के दाने के बराबर एक गोली बना दी और उस हलवाई से कहा कि इसे खा जाओ, ठीक हो जाओगे। इस पर वह हँसने लगा। वैद्य बोला- क्यो हँस रहे हो? वह बोला, 'यदि इतनी जगह मेरे पेट में बची होती तो मैं और एक लड्डू खा जाता।'

देखिए इस व्यक्ति को- मरने जा रहा है फिर भी लड्डू खाने की इच्छा हो रही है।

७४. तुम मुझे नक्कटा कहते!

प्राचीन समय की बात है। दक्षिण भारत के एक गाँव में एक बहुत बड़े महलनुमा घर में एक सेठ-सेठानी रहते थे। एक दिन रात के

समय जब वे दोनों सोने की तैयारी कर रहे थे तो चार चोरों ने उनके घर में घुसने के लिए दीवार तोड़नी शुरु की। तभी पत्नी ने पति से कहा- चोर दीवार तोड़कर घर में घुसने का प्रयत्न कर रहे हैं, आप जल्दी से कोई उपाय करो, वरना वे अंदर आ जाएंगे। पति ने कहा- रुको, मुझे कुछ सोचने दो। पत्नी ने कहा- जब तक आप सोचेंगे तब तक तो वे अंदर घुस आएंगे। पति ने कहा- अच्छा ऐसा करो, मुझे सब्जी काटने वाला चाकू दे दो। पत्नी ने चाकू दे दिया और पति उस दीवार के पीछे छुपकर खड़ा हो गया जिस दीवार को चोर तोड़ रहे थे।

जैसे ही पहले चोर ने दीवार के टूटे हुए भाग में से सिर अंदर दिया तो सेठने चाकू से उस चोर की नाक काट दी। नाक कटते ही चोर ने अपने नाक पर हाथ रखकर अपना सिर बाहर निकाला और बोला छी-छी! अंदर तो बहुत बदबू आ रही है। दूसरा चोर तुरंत बोला- हट पीछे इतने मालदार घर में से तुझे बदबू आ रही है, मैं घुसता हूँ। जैसे ही चोर ने सिर अंदर किया तो सेठ ने उसका भी नाक काट दिया। चोर ने तुरंत अपने नाक वाले हिस्से पर हाथ रखा और सिर को बाहर निकाला और बोला- हाँ भाई, अंदर तो बहुत बदबू आ रही है अब तीसरे चोर ने अपना सिर अंदर किया तो सेठने उसका भी नाक काट दिया और उसने भी वही कहा जो पहले वाले दोनों चोरों ने कहा था।

अब चौथा चोर जोश में आकर कहने लगा कि तुम तीनों मूर्ख हो अंदर इतना माल भरा हुआ है और तुम कहते हो कि बदबू आ रही है, हटो पीछे, मैं जाता हूँ, और जैसे ही उसने अपना सिर अंदर किया उन्होंने उसकी भी नाक काट दी। उसने तुरंत अपना सिर बाहर निकाला और बोला? तुमने यह बात पहले क्यों नहीं बताई? पहला चोर बोला- अगर मैं बताता तो तुम तीनों मुझे जिंदगी भर नक्कटा कहते। यही बात दूसरे ने तथा तीसरे ने भी कही।

७५. बुद्धि का कमाल

बहुत समय पहले की बात है। किसी गांव में एक सेठ और सेठानी रात को अपने घर में सो रहे थे। तभी सेठानी को कुछ खटपट

की आवाज सुनाई दी। सेठानी ने अनुमान लगा लिया कि घर में चोर घुस आए हैं। उसने फटाफट सेठजी को आवाज लगाई– अजी! सुनते हो, घर में चोर घुस आए हैं, जल्दी से कोई उपाय करो। सेठ जी को सुनाई तो दे गया था, लेकिन उत्तर दिया कि अरे भाग्यवान्! जरा जोर से बोलो क्या कह रही हो, मुझे सुनाई नहीं दिया। सेठानी ने जोर से कहा कि घर में चोर घुस आए है, जल्दी से कोई उपाय करो।

इसके बाद सेठजी ने ऊँची आवाज में उत्तर दिया कि– अरे भाग्यवान्! चोर घुस आए हैं तो घुस आने दो, यहाँ पर रखा ही क्या है, जो वे चोर चुरा कर ले जाएंगे? घर में कुछ है ही नहीं, घर में जितनी भी पूँजी और गहने थे वे तो मैंने पहले ही तुम्हारी काली चूनरी में बाँधकर बाहर जो पेड़ है उसकी डाल पर बाँध दिए हैं। ढूँढ़ने दो घर में कुछ नहीं है। तुम भी आराम से सो जाओ और मैं भी सोता हूँ।

चोरों की संख्या चार थी। वे सब ये सारी बातें सुन रहे थे। तब एक चोर बोला– अरे मूर्खों, अब यहाँ खड़े होकर क्या कर रहे हो? चलो बाहर पेड़ पर। अंदर कुछ नहीं है।

जब वे बाहर आये तो उन्होंने पेड़ की डालों को देखा। उन्हें पेड़ की एक डाल पर कुछ काली-काली पोटली जैसी वस्तु दिखाई दी। वे कहने लगे अरे वह रही गठरी। एक कहने लगा– मैं उतारुँगा, दूसरा बोला– मैं, तीसरा बोला– मैं, और चौथा बोला– मैं। अब वे चारों ही एक साथ पेड़ पर चढ़ गए और जैसे ही चारों ने गठरी पर हाथ मारा उनको नानी याद आ गयी; क्योंकि वह गठरी नहीं थी मधुमक्खियों का छत्ता था।

७६. जेब कटने की पार्टी

कुछ समय पहले की बात है। दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के बंगलोर शहर में एक व्यक्ति रहता था। एक दिन उसने अपने घर पर एक शानदार पार्टी का आयोजन किया तथा अपने आस-पास के पड़ोसियों तथा रिस्तेदारों को आमंत्रित किया।

पार्टी चल रही थी। लोग गा रहे थे, नाच रहे थे तथा खाने-पीने में खूब मस्त थे तभी कुछ लोगों ने उस व्यक्ति से पूछा कि भाई साहब! यह तो बतलाइए की पार्टी किस उपलक्ष में दी जा रही है। तो उनका उत्तर सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए, उन्होंने कहा- मेरी जेब कट गयी है इसीलिए पार्टी का आयोजन किया जा रहा है। तब लोगों ने उनसे कहा अरे- 'यह तो दुःख की बात है और आप पार्टी का आयोजन कर रहे हो! तब उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि आप लोगो की बात भी ठीक है, लेकिन मेरे लिए यह प्रसन्नता का क्षण है प्रसन्नता का कारण यह है कि मेरी पैंट में दो जेबें थीं। एक जेब में पचास रूपये थे और दूसरी जेब में पचास हजार। मेरी पचास रूपये वाली ही जेब कटी है तथा पचास हजार वाली जेब बच गयी है, इसीलिए मैंने प्रसन्न होकर इस पार्टी का आयोजन किया है। इसीलिए कहा भी जाता है कि-

नजर को बदलिए नजारे बदल जाएंगे,
सोच को बदलिए सितारे बदल जाएंगे।
किश्तियाँ बदलने से कोई फायदा नहीं,
दिशा बदलिए किनारे बदल जाएंगे।।

७७. कान दो क्यों होते हैं?

एक बार की बात है। दो बच्चे आपस में बात कर रहे थे। वे जानने की कोशिश कर रहे थे कि हमारे कान दो क्यों होते हैं? एक बोला- 'एक कान सुनने के लिए होता है और दूसरा सुनी हुई बात को बाहर निकालने के लिए होता है।' दूसरा बच्चा कहने लगा- 'नहीं, दोनों कान सुनने के लिए होते हैं बड़ी ही सावधानी से।' इसी बात को लेकर दोनों में झगड़ा हो गया। पहला अपनी बात पर अड़ गया और दूसरा अपनी बात पर। तभी एक सज्जन व्यक्ति आए। उन्होंने उनके झगड़े को सुना तो कहने लगा- 'तुम दोनों की ही बात ठीक है।'

बच्चे सुनकर आश्चर्यचकित हो गए और पूछने लगे- ऐसा कैसे हो सकता है? तब उस सज्जन ने कहा- 'देखो, मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो! जब कोई बुरी बात बताई जा रही हो तो उसे एक कान से सुनो

और दूसरे से बाहर निकाल दो। तथा जब कोई अच्छी लाभकारी अथवा गुणवर्धक बात बतायी जा रही हो तो मन लगाकर दोनों कानों से वह बात सुननी चाहिए। और उसको अपने मन में बैठा लेना चाहिए, इसीलिए तुम दोनों की बात ठीक है।' बच्चे बहुत खुश हो गए।

७८. पढ़ने का चश्मा

एक गाँव में एक किसान रहता था। एक दिन सुबह-सुबह वह अपनी जमीन के जरुरी कागजात ले करके वकील साहब के पास गया। वकील साहब सुबह की सैर करके आए थे। किसान ने वकील साहब को नमस्कार किया और बोला- 'साहब, यह कागज मुझे पढ़कर सुना दो वकील न अपने मुनीम (मुंशी) से कहा कि पढ़ने वाला चश्मा ले आओ वह चश्मा ले आया और वकील चश्मा लगाकर के उन कागजों को पढ़ने लगा। इसी समय किसान ने सोचा कि मैं जितने पैसे वकील को कागज पढ़वाने को दूँगा, उतने पैसे में तो मैं स्वयं ही पढ़ने वाला चश्मा खरीद लूँगा। उसने तुरंत वकील साहब से कहा- आप मेरे कागज वापस कर दो, अभी मुझे कागज नहीं पढ़वाने हैं वकील ने चुपचाप कागज वापस कर दिए।

अब वह किसान एक चश्मे वाली दुकान पर गया और बोला- भाई साहब! मुझे एक पढ़ने वाला चश्मा बना कर दो। दुकानदार ने एक फ्रेम में लेंस लगाकर किसान को दे दिया तथा साथ में एक पुस्तक देते हुए कहा कि लो इसको पढ़ो। किसान ने चश्मा लगाया और पढ़ने की कोशिश करने लगा, लेकिन थोड़ी देर बाद कहने लगा कि इससे तो नहीं पढ़ा जा रहा। दुकानदार ने और दो चार चश्में दिए वह किसी से नहीं पढ़ पा रहा था। आखिरकार दुकानदार ने सोचा इसको हिंदी पढ़ने नहीं आती होगी। तो उसने उर्दू की पुस्तक दी और पूछा अब पढ़ने में आ रहा है? तो किसान बोला नहीं आ रहा है। दुकानदार ने सोचा शायद अंग्रेजी आती होगी, तो उसने अंग्रेजी की पुस्तक दी और पूछा कि अब पढ़ने में आ रहा है। फिर, किसान ने कहा नहीं आ रहा है तब दुकानदार ने झुंझुलाकर पूछा कि महाराज! कितनी क्लास पढ़े हो? किसान बोला एक भी नहीं।

७९. लॉटरी निकलने का दुःख

एक शहर में एक धनी व्यक्ति रहता था। एक दिन उसने पाँच-पाँच रूपये के लॉटरी के दो टिकट खरीदे। दो-तीन दिन के बाद लॉटरी का रिजल्ट निकला तो उसकी एक टिकट पर दस लाख रूपये का ईनाम लग गया। जैसे ही इस बात की खबर आस-पास में रहने वाले पड़ोसियों को मिली तो वे सब मिलकर उसको बधाई देने और मुँह मीठा करने के उददेश्य से उसके घर पर पहुँचे, लेकिन जैसे ही वे वहाँ पहुँचे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। जिस व्यक्ति को खुशी से झूमते हुए होना चाहिए था वह एकदम नितांत अकेला और उदास बैठा था। उन लोगों ने सोचा शायद अचानक कोई अनहोनी तो नहीं हो गयी। उनमें से एक-दो लोगों ने आखिर हिम्मत करके पूछ ही लिया भाई साहब! क्या बात हो गयी जो कि आप इतने दुःखी हो रहे हो? तब उसने उत्तर दिया कि उस लॉटरी के टिकट के साथ मैंने एक टिकट और भी खरीदा था, उस पर एक करोड़ का ईनाम था जो नहीं निकला इसी बात का मुझे गहरा दुःख है।

८०. बचपन के संस्कार

प्राचीन काल की बात है। एक आश्रम में पेड़ के नीचे एक गुरु जी अपने कुछ शिष्यों को पढ़ा रहे थे। उसी समय एक शिष्य आया जो कि प्रतिदिन देर से आता था और पढ़ाई में भी बहुत कमजोर था। उसे देखते ही गुरुजी बोले- अरे! न जाने कितने गधों को मैंने आदमी बना दिया, पर तू पता नहीं कब आदमी बनेगा?

उसी समय एक कुम्हार अपने गधों के साथ वहाँ से गुजर रहा था। जब उसने यह बात सुनी तो मन ही मन सोचने लगा कि मेरे पास गधे बहुत हैं, लेकिन दूसरा कोई आदमी नहीं है जो मेरे काम में हाथ बँटा सके। क्यों न मैं एक गधे को गुरुजी के पास छोड़ दूँ। कुछ दिनों में गुरुजी उसे आदमी बना ही देंगे।

ऐसा सोचकर वह कुम्हार गुरुजी के पास जाकर बोला- आप मेरे इस गधे को आदमी बना दो तो आपका बहुत ही उपकार हो। गुरुजी

ने सोचा यह उपहास (मजाक) कर रहा है, अतः कह दिया- छोड़ जाओ। कुम्हार गधे को छोड़कर चला गया और गुरुजी शिष्यों को पढ़ाने में व्यस्त हो गए। गधा इधर-उधर वन में निकल गया।

एक वर्ष बाद कुम्हार गुरुजी के पास आकर बोला- गुरुजी! अब तक तो मेरा गधा आदमी बन गया होगा, अतः अब आप मुझे उसे लौटा दें।

गुरु जी बोले- अरे! वह गधा तो बहुत बड़ा वकील बन गया और कचहरी के केबिन नं. 10 में बैठा है। तथा अब उसका नाम हीरालाल है।

कुम्हार तुरंत कचहरी के केबिन नं. 10 पर पहुँच गया। वहाँ बाहर वकील साहब का सेवक बैठा था। उसने कुम्हार को अंदर जाने से रोका तो कुम्हार कहने लगा- अरे! तू जानता नहीं मैं कौन हूँ, मैं इसका मालिक हूँ, ये मेरा गधा है। सेवक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अंदर जाकर वकील साहब को सारी बात बतलाई। वकील साहब बोले- उसको अंदर भेजो।

कुम्हार जैसे ही अंदर घुसा, उसने घुसते ही वकील साहब को अपनी बाँहों में भर लिया और कहने लगा- अरे मेरे गधे! तू तो बहुत बड़ा आदमी बन गया है। मुझे पहचानता है कि नहीं? वकील साहब को आया गुस्सा, उन्होंने कुम्हार को जोर से लात मारी और दूर कर दिया।

यह देखकर कुम्हार कहने लगा- भाई हीरालाल! चाहे तू कितना ही बड़ा आदमी बन गया, लेकिन तेरी लात मारने की आदत अब भी नहीं गई।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्ति के बचपन के संस्कारों का छूटना बहुत ही कठिन काम है। जन्म-जन्मान्तरों के राग-द्वेष के संस्कारों का छूटना तो और भी कठिन है।

८१. उलटवासी

विद्युत के आविष्कार ने विश्व के विकास में हमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, हम सभी के जीवन में उसकी असाधारण भूमिका है-

इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु क्या यह भी सच नहीं है कि आज अनेक समस्याओं की गिरफ्त में हम सिर्फ बिजली की ही वजह से आये हैं। यदि बिजली नहीं होती तो इतनी कन्याभ्रूण हत्याएँ हो पाती और लड़का-लड़की का अनुपात बिगड़ने की भयंकर समस्या खड़ी हो पाती। इसी प्रकार यदि बिजली नहीं होती तो वैश्विक तापवृद्धि (Global Warming) का ऐसा संकट देखने को मिलता ?

माना कि इन संकटों के पीछे मानव की दुरुपयोग करने की वृत्ति ही है, पर सबको सुधारना भी तो सम्भव नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि-

धन्यवाद है उस वैज्ञानिक को
जिसने बिजली का आविष्कार किया।
परन्तु धिक्कार है हमको जो हमने
सदुपयोग करना नहीं सीखा।।

८२. आकांक्षा और शांति

एक बार एक धर्मोपदेशक किसी गांव से निकले। एक चतुर व्यक्ति ने उनकी परीक्षा लेने की ठानी। वह उनके पास आकर बोला कि आप इतने वर्षों से जगह-जगह घूमकर लोगों को शांति का उपदेश देते हैं, क्या आप बता सकते हैं कि अब तक कितने लोगों को जीवन में शांति की अनुभूति हुई, कितने लोग हैं जो वास्तव में शांत हो गए हैं?

उस व्यक्ति ने अपने प्रश्न से उस धर्मोपदेशक को परेशानी में डालने की कोशिश की थी। धर्मोपदेशक को भी इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं था। वास्तव में उन्होंने कभी इस प्रकार की गणना तो नहीं की थी कि कितने लोग उपदेशों से शांत हो चुके हैं, या हो रहे हैं।

धर्मोपदेशक ने मन ही मन विचार किया तथा उस व्यक्ति को उसी के अन्दाज में उत्तर देने की कोशिश की। उन्होंने कहा- अब तक तो मैंने इस प्रकार की गणना नहीं की है लेकिन सायंकाल तक गणना करने की कोशिश करता हूँ। परन्तु इस बीच तुम्हें एक छोटा-सा काम

करना होगा।

उस व्यक्ति ने तुरंत कहा– कोई समस्या नहीं। आप मुझे बताइए कि मुझे करना क्या है, मैं दिनभर में उसे पूरा कर लूँगा, तब तक आप भी दिनभर में मेरे प्रश्न का उत्तर खोज कर बता दें। इस पर धर्मोपदेशक ने कहा– तुम्हें केवल इतना काम करना है कि अपने गाँव के लोगों से उनकी इच्छाएं, आकाक्षाएँ पूछकर, एक सादे कागज पर लिख लेना है, बस।

उस व्यक्ति के लिए यह काम ज्यादा कठिन नहीं था। गाँव में कुल मिलाकर 100 परिवार ही रहते थे, सायंकाल तक उसने सभी की आकांक्षाएँ पूछकर एक कागज पर लिख ली। लेकिन धर्मोपदेशक के पास लौटने से पहले उसने अपने कागज पर नजर डाली तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ लोगों की बड़ी अजीब किस्म की इच्छाओं से वह सादा पेपर भरा हुआ था। किसी ने पुत्र की कामना की थी तो किसी ने धन की। किसी ने रोग-निवारण की तो किसी ने अपने पड़ोसी के अनिष्ट की किसी-किसी ने अपने दुष्ट स्वभाव वाली पत्नी से छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त की तो किसी ने पति से। बहुत ढूँढ़ने पर भी उस व्यक्ति को किसी की ऐसी इच्छा दिखलायी नहीं दी जिसमें वह शांति पाने की कामना करता हो।

उस व्यक्ति को गहरा झटका लगा। उसे ऐसा आभास हो गया कि धर्मोपदेशक ने उसके प्रश्न का उत्तर युक्तिपूर्वक दे दिया है। फिर भी वह उस पेपर को लेकर धर्मोपदेशक के पास आया। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि हो सकता है तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा, लेकिन अब मुझे स्वयं तुमसे ही यह पूछना है कि क्या तुम्हें स्वयं को भी शांति की चाह है?... क्या तुम शांति चाहते हो?

अब उस व्यक्ति की दशा देखने लायक हो गयी। वह असमंजस में पड़ गया और कहने लगा– हे महात्मन्! अभी तो मैं जवान हूँ, अभी मुझे विवाह करना है, मकान बनाना है, बच्चों को पढ़ाना-लिखाना है, अभी मुझे जीवन में अनेक योजनाओं को पूरा करना है। समय आने पर

देखूँगा–सोचूँगा।

हममें से भी अधिकांश लोगों की यही स्थिति है। हम लोग अपने जीवन में शांति को कितना महत्त्व देते हैं?... शांति हमें सब प्रकार की आकांक्षाओं के अंत में ग्राह्य होती है तथा वास्तविकता यह है कि जब तक इच्छाएँ और आकांक्षाएँ होंगी, तब तक शांति उपलब्ध नहीं होगी।

८३. सुख कहाँ और कैसे

संसार में दुःख है या यह कहें कि संसार दुःखमय है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। इसी दुःख से छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक प्राणी लालायित है और सुख के लिए रात–दिन प्रयत्न करते हैं। यह किसी से छिपा नहीं है। जिन्हें पेट भरने के लिए न मुट्ठी–भर अन्न मिलता है। और न तन ढ़कने के लिए वस्त्र, उनकी बात तो जाने दीजिए। जो सम्पत्तिशाली हैं, उन्हें भी हम किसी न किसी दुःख से पीड़ित देखते हैं। निर्धन धन के लिए दुःखी है और धनवानों को धन की तृष्णा चैन नहीं लेने देती। निःसंतान संतान के लिए रोते हैं तो संतान वाले संतान के भरण–पोषण के लिए चिंतित हैं। किसी का पुत्र मर जाता है तो किसी की पुत्री विधवा हो जाती है। कोई पत्नी के बिना दुखी है तो कोई कुल्टा पत्नी के कारण दुःखी है। निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी दुःख से दुःखी है और अपनी–अपनी समझ या सामर्थ्य के अनुसार उसे दूर करने की चेष्टा करता है, किंतु फिर भी दुःखों से छुटकारा नहीं होता। सुख की इच्छा को पूरा करने के लिए पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है किंतु किसी की इच्छा पूरी नहीं होती।

सुख के साधन शास्त्रों में तीन बताये गये हैं– धर्म, अर्थ और काम। इनमें भी धर्म ही सुख का मुख्य साधन है और बाकी के दोनों गौण हैं, क्योंकि शुभाचरण रूप धर्म के बिना प्रथम तो अर्थ और काम की प्राप्ति ही असंभव है। शुभाचरण के बिना अगर काम और अर्थ की प्राप्ति मान भी लीया जाए तो अधर्मपूर्ण साधनों से उपार्जन किया हुआ अर्थ और काम कभी सुख का कारण हो नहीं सकता, बल्कि दुःख का ही कारण

होता है, और कभी भी संतोष की प्राप्ति नहीं होती। यर्थाथ में अर्थ और काम से तभी सुख हो सकता है जब उसमें संतोष हो, संतोष के बिना धन कमाने से धन की तृष्णा बढ़ती जाती है और तृष्णा की आग में जलते हुए मनुष्य को नाम मात्र भी सुख नहीं मिल सकता।

इसी प्रकार जो काम भोग की तृष्णा में पड़कर काम भोग के साधन शरीर इंद्रिय वगैरह को जर्जर कर लेते हैं वे क्या कभी सुखी हो सकते है? फिर अर्थ और काम सदा ठहरने वाले नहीं हैं, उनका तो स्वभाव ही नश्वर है, किंतु मनुष्य ने उन्हें ही सुख का साधन मान रखा है। अतः कहा जा सकता है कि धर्म के द्वारा अर्थ काम की मर्यादा रखी जाए तो वे सुख के साधन हो सकते हैं। परंतु धर्म की मर्यादा के बिना वे सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक उत्पन्न करते हैं। अतः सुख के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध सिद्ध होता है और सुख के साधन में धर्म ही प्रधान प्रतीत होता है। और हाँ यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह सुख भी स्थायी नहीं होता।

विभिन्न जैन शास्त्रों में भी सुख के विषय में चिंतन किया गया है। शास्त्रों में सुख का स्वभाव बतलाया गया है और वह सुख दो प्रकार का है- लौकिक सुख व अलौकिक सुख। लौकिक सुख विषय जनित होने से सर्व परिचित है पर अलौकिक सुख इन्द्रियातीत होने से केवल विरागीजनों को ही होता है। उसके समक्ष लौकिक सुख-दुःख रूप ही अवभासित होता है। जैन दर्शन में ऐसा माना जाता है कि मोक्ष में विकल्पात्मक ज्ञान व इंद्रियों का अभाव हो जाने के कारण यद्यपि सुख के भी अभाव की आशंका होती है, परन्तु केवलज्ञान द्वारा लोकालोक को युगपत् जानने रूप परमज्ञाता दृष्टाभाव रहने से वहाँ सुख की सत्ता स्वीकरणीय है, क्योंकि निर्विकल्पक ज्ञान ही वास्तव में सुख है।

लौकिक सुख से जो सुख होता है। वो वास्तव में सुख नहीं है, किंतु शारीरिक और मानसिक रोगों का प्रतिकार मात्र है। भ्रम से लोगों ने उसे सुख मान लिया है और सब उसी की प्राप्ति के उपायों में लगे रहते हैं तथा न्याय और अन्याय का विचार भी नहीं करते। हमारी लौकिक

सुख की इच्छा ही स्वयं अपनी और दूसरों के दुःख का कारण बनी हुई है। लौकिक सुखों से प्राप्त होने वाला सुख स्थायी नहीं होता। कहा भी जाता है कि- **तत्सुखं यत्र नासुखम्।** अर्थात् सुख वही है जिसमें दुःख न हो।

शास्त्रों में पुरुषार्थ चार कहे गये हैं। यथा-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्य पुरुषार्थ प्रधान है इसलिए वह लौकिक एवं अलौकिक सभी क्षेत्रों में पुरुषार्थ से रिक्त नहीं हो सकता। इनमें से अर्थ व काम पुरुषार्थ को सभी जीव रुचिपूर्वक ग्रहण करते हैं, परंतु धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ को प्रत्येक जीव ग्रहण नहीं करता यही सबसे बड़ा दुःख का कारण है।

यद्यपि इन दोनों पुरुषार्थों में धर्म पूर्ण रूप होने से मुख्यतः लौकिक सुख को देने वाला है और मोक्ष पुरुषार्थ साक्षात् परम सुख को देने वाला है।

जैन दर्शन में मोक्ष के मुख्य रूप से दो भेद किये गए हैं- द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष। शुद्ध रत्नत्रय की साधना से अष्टकर्मों की आत्यंतिकी निवृत्ति द्रव्य मोक्ष है और सभी विकारी अथवा प्रमादी भावों की निवृत्ति भाव मोक्ष है। आयु के अंत में यह जीव स्वाभाविक उर्ध्व गमन होने के कारण लोक के शिखर पर चला जाता है, वहाँ वह अनंत काल तक अनंत अतींद्रिय सुख को भोगता है। पुनः शरीर धारण करके जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ता। जिस प्रकार दुध में से घी निकालने पर दुबारा नहीं मिलाया जा सकता, गेहूँ के दाने का भूनकर बोया नहीं जा सकता, तिल में से तेल निकालने के बाद दोबारा नहीं मिलाया जा सकता, स्वर्ण-पाषाण में से एक बार सोना निकालने के बाद नहीं मिलाया जा सकता, उसी प्रकार जो जीव एक बार मुक्त हो जाता है, वह पुनः शरीर धारण नही करता। जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष ही परम सुख है।

८४. स्वावलम्बन का पाठ

कुछ समय पुरानी बात है। एक दिन पश्चिम बंगाल के एक छोटे रेलवे स्टेशन पर सूटेड-बूटेड युवक उतरा और कुली-कुली कहकर

चिल्लाने लगा परन्तु उस छोटे से स्टेशन पर कुली कहाँ से आता, क्योंकि वहाँ दिन में एक रेल आती थी और सवारी तो कभी-कभार ही उतरती थी।

बार-बार पुकारने के बाद भी जब कोई नहीं आया तो युवक ने झुझलाते हुए अपना सामान उतार कर प्लेटफार्म पर रख लिया। सामान के नाम पर उसके पास कुछ अधिक नहीं था, एक बैग और एक सूटकेस मात्र था। जिनमें अधिक भार भी नहीं था।

संयोगवश उसी समय पता नहीं कहाँ से एक स्वच्छ एवं सादा धोती-कुर्ता पहने अधेड़ आयु का व्यक्ति उस युवक के सामने आ खड़ा हुआ। युवक ने उसे कुली समझकर डाँटना-फटकारना शुरू कर दिया, 'पता नहीं कैसे आदमी हो तुम, कब से साँड की तरह चिल्ला रहा हूँ मैं, कहाँ मर गए थे? अब खड़े-खड़े मेरी शक्ल क्या देख रहे हो आरती उतारोगे क्या मेरी, सामान उठाओ और जल्दी चलो। मुझे पहले ही बहुत देर हो रही है।'

उस अधेड़ व्यक्ति ने बिना कुछ बोले चुपचाप उसका सामान उठा लिया और उस युवक के पीछे-पीछे चलने लगा। घर पहुँचकर युवक बोला- 'वहाँ सामने बने कमरे में रख दो और बताओ कितने पैसे दूँ तुम्हें।' सामान रखते हुए वह अधेड़ व्यक्ति बोला- मुझे कोई पैसा नहीं चाहिए और पीछे हटते हुए बोला- 'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद!'

यह सुनकर युवक आश्चर्यचकित हो गया और मन ही मन सोचने लगा कि यह कैसा कुली है, जो सामान ढोने के पैसे लेने के बजाय धन्यवाद कर रहा है। या तो ये कोई मूर्ख है या पागल है। वरना, आज के जमाने में भला ऐसा आदमी कहीं मिलता है। वह यह सब सोच ही रहा था कि उसी समय युवक का बड़ा भाई घर में से निकला और सामने खड़े अधेड़ व्यक्ति को देखकर तुरन्त उनका चरण स्पर्श किया और उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा- 'आप यहाँ।'

यह देखते ही युवक सकपकाते हुए बोला- भाईसाहब! क्या आप इन्हें जानते हैं? ' अरे! इन्हें कौन नहीं जानता तुम तो यहाँ रहते नहीं हो ना इसलिए तुम क्या जानो? जिन्हें तुमने मामूली-सा कुली समझा है

वे बंगाल के प्रसिद्ध महापुरुष एवं प्रकांड विद्वान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं।' इतना सुनते ही युवक उनके चरणों पर गिर पड़ा और बार-बार क्षमा-याचना करने लगा।

ईश्वरचन्द्रजी ने उसे उठाया और गले लगाते हुए कहा- 'इसमें क्षमा माँगने की कोई बात नहीं है। हम सब भारतवासी है। हमारा देश अभी गरीब है। अतः हम सबको अपना काम स्वयं करते हुए स्वावलंबी बनना चाहिए तथा अपना काम करने में शर्म नहीं करनी चाहिए।'

८५. दानवीर कर्ण

द्वापर युग में महाभारत के समय में एक भाट दुर्योधन के द्वार पर जाकर उनका यशोगान करने लगा। दुर्योधन ने सुवर्णादि अमूल्य वस्तुएँ देते हुए उसका यथोचित आदर सत्कार किया और बोला- 'तुमने कर्ण की दानवीरता के किस्से बहुत सुने होंगे। लेकिन, तुम्हे मालूम है कि मैं कर्ण से भी बड़ा दानवीर हूँ, और हाँ तुम्हें नहीं पता तो आज से यह बात अच्छी तरह से समझ लो, आज से मेरा ही गुणगान किया करो।'

जब यह बात भगवान् विष्णु को मालूम हुई तो उन्होंने मन ही मन सोचा कि क्यो न दुर्योधन की परीक्षा ले ली जाए उन्होंने एक बुढ़े ब्राह्मण का वेश धारण किया और दुर्योधन के द्वार पर पहुँच गए दान माँगने। दुर्योधन ने मान-सम्मान पूर्वक ब्राह्मण को आसन पर बिठाते हुए हाथ जोड़कर विनम्रता पूर्वक कहा- 'बताइए ब्राह्मण देवता! कैसे आना हुआ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

यह सुनकर ब्राह्मण देवता बोले- हे राजन्! न मुझे अन्न चाहिए, न जल चाहिए, न सोना-चाँदी चाहिए, बस मैं तो अपने माता-पिता का क्रियाकर्म करने द्वारका जाना चाहता हूँ जिससे उन्हें सद्गति मिले। लेकिन, वृद्धावस्था और शरीर की दुर्बलता के कारण मैं चलने-फिरने में असमर्थ हूँ। इसलिए यदि आप मेरा बुढ़ापा लेकर अपना यौवन (जवानी) दे सको, तो इस ब्राह्मण पर बड़ा उपकार हो, और हाँ जैसे ही मैं अपने माता-पिता का क्रियाकर्म करके लौटूँगा उसी क्षण मैं आपको आपका

यौवन लौटा दूँगा। हो सकता है उस काल में ऐसी व्यवस्था संभव हो कि जवानी और बुढ़ापे का आदान-प्रदान हो जाता हो। क्योंकि इस सृष्टि में कुछ भी सम्भव है। यह अद्भुत माँग सुनकर दुर्योधन आश्चर्य चकित होते हुए बोला- 'हे विप्रश्रेष्ठ! आप यौवन के स्थान पर और कुछ भी माँगिए, मैं सहर्ष देने को तैयार हूँ।'

यह सुनकर ब्राह्मण देवता बोले- 'और कुछ की मुझे आवश्यकता ही नहीं है। यह तो मैं पहले ही आपसे निवेदन कर चुका हूँ, मुझे तो बस यौवन की ही आवश्यकता है।' यह सुनकर दुर्योधन बोला- 'तब आप ठहरिये मैं Head of the Department अर्थात् अपनी पत्नी से पूछकर आता हूँ। वह अन्तु:पुर में गया और श्रीमती को सारी बात बताई। यह सुनकर पत्नी बोली- 'अरे! ये आप क्या कह रहे हैं? जब आप में जवानी ही नहीं रहेगी तो भला, आप किस काम के रहेंगे, कौन आपकी देखभाल करेगा। मैं तो दिनरात आपकी सेवा कदापि नहीं कर सकती। और हाँ क्या भरोसा उस ब्राह्मण देवता का कि वो आपका यौवन लौटाये भी या नहीं। अत: मैं आपको कभी इसकी अनुमति (Permisson) नहीं दूँगी।'

दुर्योधन बाहर आकर बोला- 'हे विद्याश्रेष्ठ! मेरी पत्नी ने यौवन देने से मना कर दिया है, अत: मैं आपकी कोई मदद इस संदर्भ में नहीं कर सकता।

विप्रदेवता मन ही मन उसे धिक्कारते हुए कर्ण के पास गए। कर्ण ने भी उसी प्रकार उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और पधारने का कारण पूछा। ब्राह्मण देवता ने अपनी इच्छा बता दी।

यह सुनते ही कर्ण गद्गद् होकर बोला- 'विप्रदेवता! यह भी कोई बड़ी बात है! यदि आप मेरा सारा शरीर भी सदा के लिए माँगे तो मैं खुशी-खुशी आपको दे दूँगा। मेरा तो जीवन ही सार्थक हो जाएगा। अतिथि सेवा के लिए तो पशु-पक्षी तक इस नश्वर शरीर का बलिदान कर देते हैं। फिर आप तो कुछ ही दिन के लिए मेरा यौवन माँग रहे हैं।'

यह सुनकर ब्राह्मण देवता बोले- 'वह सब तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे यौवन पर तो तुम्हारी पत्नी का अधिकार है, इसलिए उनकी

स्वीकृति आवश्यक है। कुछ ही क्षण पहले एक युवराज की पत्नी ने उसे यौवन दान करने से मना कर दिया है। अतः पहले जाओ, उनकी अनुमति ले आओ।'

यह सुनकर कर्ण बोला– हे विप्रवर ! ऐसा कुछ नहीं है। मेरी बात मेरी पत्नी कभी नहीं टालती। मुझे पक्का विश्वास है कि वे इस महान् पुण्यकार्य के लिए कभी मना नहीं करेंगी। यह सुनकर ब्राह्मण देवता बोले– 'नहीं, कुछ भी हो। उनकी अनुमति आवश्यक है।'

जब ब्राह्मण देवता नहीं माने तो कर्ण अपनी पत्नी के पास गए और सारी बात उन्हें बता दी। इतना सुनते ही वह बोली– 'स्वामी यह जीवन क्षणभंगुर है, न जाने कब इसका अंत हो जाए। यदि जीते-जी नश्वर शरीर से किसी की भलाई हो जाए तो इसे देने मे तनिक भी देर नहीं करनी चाहिए। कहा भी जाता है–

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्, को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं, यो जीवति स जीवति॥

परोपकारशून्यस्य धिङ्, मनुजस्य जीवितम्।
धन्यास्ते पशवो येषां, चर्माप्युपकरोति वै॥

पशवोऽपि हि जीवन्ति, केवलं सोदरम्भराः।
तस्यैव जीवितं श्लाघ्यं, यः परार्थे हि जीवति॥

रविश्चन्द्रो घना वृक्षाः, नदी गावश्च सज्जनाः।
एते परोपकाराय, समुत्पन्ना स्वयम्भुवि॥

जो दूसरों की भलाई के लिए जीता है, वास्तव में जीना उसी का सफल है।

जो मनुष्य परोपकार नहीं करता उसके जीवन को धिक्कार है। ऐसे मनुष्य से तो पशु भी श्रेष्ठ हैं, जिनका चमड़ा भी परोपकार करता है।

केवल अपना पेट भरने के लिए तो पशु भी जीते हैं, किन्तु जीवन उसी का प्रशंसनीय है, जो दूसरों की भलाई के लिए जीता है।

सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, पेड़, नदी, गायें तथा सज्जन ये सब पृथ्वी पर परोपकार के लिए स्वयं उत्पन्न हुए हैं।

अतः आप मेरी अनुमति के लिए व्यर्थ ही आए आपको तो सीधे ही स्वीकार कर लेना चाहिए था। और हाँ मैं तो जैसे आपकी सेवा यौवन में करती हूँ वैसे ही वृद्धावस्था में भी करूँगी। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।'

तत्पश्चात् कर्ण ने आकर सारी बात ब्राह्मण देवता को बतलाई और कहा कि- 'मुझे न केवल अनुमति अपितु, परोपकार करने की महान् शिक्षा भी प्राप्त हुई है। अतः मैं आपको अपना यौवन देने को तैयार हूँ।'

इतना सुनते ही ब्राह्मण वेशधारी भगवान् विष्णु ने अपना वास्तविक रूप प्रकट करते हुए कहा कि- 'वे तो उसकी परीक्षा ले रहे थे, जिसमें वह उत्तीर्ण हो गया है।

८६. सेवा मन का पवित्र भाव

एक बार एक साधु किसी गाँव मे प्रवचन कर रहे थे। वे प्रवचन में अच्छी-अच्छी बातें बता रहें थे। यही सब बातें बताते-बताते उन्होंने कहा कि- 'मुझे लोगों के प्रति इतनी सहानुभूति है कि मैं उनके उपकार के लिए नरक में भी जाने को तैयार रहता हूँ।' प्रवचन समाप्त होने पर एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला- हे मुनिवर! मेरे पास कपड़े नहीं है अतः तन ढ़कने के लिए मुझे कपड़ों की आवश्यकता है'। इतना सुनते ही साधु ने तुरन्त अपने वस्त्र उतार कर उस व्यक्ति का दे दिए।

संयोगवश उस प्रवचन सभा में एक गृहस्थ ऐसे भी मौजूद थे जो प्रवचन की गहराईयों को समझते थे। वे तुरन्त साधु के पास जाकर बोले- 'आप झूठ बोलते हो और झूठ बोलने वाले का इस प्रवचन की गद्दी पर बैठने का कोई हक नहीं है। अतः आप इससे नीचे उतर जाओ।'

यह सुनकर साधु आश्चर्यचकित होते हुए बोला- 'मुझसे ऐसी क्या भूल हो गई? जो आप मुझे ऐसा कह रहे हैं।'

गृहस्थ बोला– 'आप तो अभी थोड़ी देर पहले कह रहे थे कि मुझे लोगों के प्रति इतनी सहानुभूति है कि मैं उनके लिए नरक में भी जाने को तैयार रहता हूँ। फिर आपने जरूरतमंद की जरूरत पूरी करने के लिए पहल क्यों की? जबकि होना यह चाहिए था कि आप पहले दूसरों को मौका देते। जिससे वे उसकी माँगों को पूरा करते और पुण्य के अधिकारी बनते। अगर वे ऐसा नहीं करते तो एक बार सोचा जा सकता था कि वह काम आप स्वयं करें।

इतना सुनते ही साधु को सारी बात समझ में आ गई और उन्होंने उस गृहस्थ से क्षमा माँगते हुए विनम्रतापूर्वक कहा– 'धन्य हैं आप और आपका ज्ञान। मैं साधु होते हुए भी जिस बात को आज तक समझ नहीं सका, वह बात आपने मुझको चुटकियों मे समझा दी।' इसीलिए कहा भी जाता है कि–

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥

८७. जैसी करनी वैसी भरनी

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात् सभी धर्मों के सार को सुनो और उसको अपने जीवन में धारण करो कि सभी धर्मों का सार यह है कि जो बात या क्रिया आपको अपने लिए अच्छी नहीं लगती वह आप दूसरों के लिए मत करिए। जैसे आप नहीं चाहते कि कोई आपको गाली बके, मारे, दुर्व्यवहार करे तो आप भी किसी से ऐसा व्यवहार न करें।

उक्त श्लोक की दूसरी पंक्ति अत्यंत ही मार्मिक एवं जीवन जीने की कला सिखाने वाली है जिसे हम सबको अपने जीवन में उतारना चाहिए। कहा भी जाता है कि–

महादुःख पाता है वह, जो औरों को दुःख देता है।
महासुख पाता है वह, जो औरों को सुख देता है।

इसी संदर्भ में मैने एक कहानी सुनी थी। यहाँ मैं उसे ही लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

किसी गाँव मे एक गरीब आदमी रहता था। एक दिन उसे जोरों की भूख लगी तो वह गाँव में घरों की ओर चल दिया। एक घर के दरवाजे पर पहुँचकर उसने आवाज लगाई– 'कोई भूखे का रोटी दे दो।'

उसकी करुणामयी आवाज सुनकर अन्दर से एक आदमी निकला और बोला– देख भाई! मैं एक कवि हूँ, कविता गढ़ना और काव्य पाठ सुनाना ही मेरा काम है। अतः मै तुम्हें भी एक कविता सुना देता हूँ। यह सुनकर वह बोला– 'हे काव्य शिरोमणि! कविता भी तभी अच्छी लगती है जब पेट में कुछ हो।' कहा भी गया है कि– **भूखे पेट भजन नहीं होय।** अतः आप तो पहले मुझे रूखी–सूखी ही सही लेकिन दो रोटी दे दो। लेकिन, कवि कहाँ सुनने वाला था वह तो लगा अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने, करने लगा काव्यपाठ। वह आदमी अपने पेट को मलता हुआ आगे बढ़ गया। उसे जाते देखकर कवि महोदय मन ही मन बड़बड़ाए– देखो तो सही कितना बुरा जमाना आ गया है! भिखारी में भी इतनी अकड़ है! मैं दूसरे को हजार रूपये लेकर कविता सुनाता हूँ, इसे फ्री–फंड में सुना रहा था। तो भी इसने नहीं सुनी। मुझे लगता है यह कोई मूर्ख है। वर्ना, हजारों रूपये की कविता छोड़कर दो आने की रोटी माँगता।

तत्पश्चात् वह गरीब आदमी दूसरे दरवाजे पर पहुँचा। यह एक वैद्य जी का घर था। उसकी फरियाद सुनकर वैद्य जी बोले– देखो भाई साहब, मैं तो वैद्य हूँ मेरा काम है दवाई देना। लो, एक काम करो, एक खुराक दवाई तुम भी पी लो। यह सुनकर वह आदमी बोला– 'वैद्य जी! दवाई भी तभी अच्छी लगती है जब शरीर में कोई बीमारी हो या अधिक खाने से पेट में अजीर्ण हुआ हो, लेकिन, मुझे तो भूख का दर्द है। आपकी खुराक से मेरी भूख शांत नहीं होगी। हो सके तो आप तो मुझे रूखी–सूखी दो रोटी दे दो। वैद्य जी बोले अरे पगले! एक रोगी को देखने मात्र की फीस 500 रूपये ले लेता हूँ। हजारों की दवाई अलग से देता

हूँ। तुझे भिखारी समझकर मैं मुफ्त में दवाई दे रहा हूँ, इसलिए तू मेरी और मेरी दवाई की कीमत नहीं जान रहा है।

वह दीन-हीन गरीब आदमी अपने पिचके हुए पेट को मलते हुए आगे बढ़ गया। संयोगवश तीसरा घर एक चित्रकार का था। उसने उसके दरवाजे पर जाकर वही याचना की। चित्रकार बाहर आकर बोला- देख भाई, मैं एक चित्रकार हूँ। अच्छे-अच्छे ऐतिहासिक चित्र बनाना मेरा काम है। बड़े-बड़े मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक मेरे चित्रों को Entry Fees (प्रवेश शुल्क) देकर देखने आते है। अतः तू एक काम कर मेरे सारे चित्र मुफ्त में ही देख ले।

यह सुनकर वह बोला- 'हे चित्रकारों के सरताज! चित्र देखना तभी अच्छा लगता है जब पेट में चूहे ना दौड़ रहे हो। अगर आप इन लाखों के चित्रों को दिखाने के बजाए मुझे रूखी-सूखी दो रोटी दे दें तो मुझ पर महान् उपकार हो जाए।'

यह सुनकर चित्रकार महाशय बोले- तू तो महामूर्ख है। और यह कहकर उसने अपने घर का दरवाजा बंद कर लिया।

असहाय-सा वह गरीब आदमी पेट मलता हुआ इधर-उधर देखने लगा। अभी तक वह तीन दरवाजों पर दस्तक दे चुका था। तीनों पर उसे सिवाय अपमान और हँसी के और कुछ नहीं मिला था। उसकी मदद करने की बात तो दूर रही अपितु, लोगों ने उसकी खिल्ली उड़ाई थी। दयालु मनुष्यों के स्थान पर पत्थर दिल मूर्तियों के दर्शन हुए थे। अतः वह बहुत निराश हो गया और मन ही मन सोचने लगा कि ये सारा गाँव ही राक्षसों का है। अतः इनसे दया धर्म की आशा करना निरर्थक है। यह सोचकर वह किसी दूसरे गाँव में जाने की सोचने लगा संयोगवश जहाँ वह खड़ा था उसके ठीक सामने ही एक पहलवान का घर था। पहलवान घर की छत पर खड़ा-खड़ा यह तमाशा देख रहा था। उसे अपने तीनों पड़ोसियों कवि, वैद्य और चित्रकार पर बहुत ही गुस्सा आ रहा था, लेकिन उस समय वह चुप हो गया। उसने उस गरीब आदमी को बुलाया। भरपेट भोजन कराया और कुछ भोजन सामग्री अलग से भी

देकर खुशी-खुशी विदा किया। तत्पश्चात् वह मन ही मन सोचने लगा कि इन तीनों को सबक सिखाना चाहिए। ताकि ये दोबारा किसी गरीब का मजाक न उड़ा सके। और मन ही मन एक योजना बना ली।

अगले दिन पहलवान ने अपने तीनो पड़ोसियों को भोजन के लिए निमंत्रण-पत्र भेजा, निमंत्रण-पत्र प्राप्त कर तीनों अति प्रसन्न हो गए और यथा समय पहुँच गए पहलवान के घर।

पहलवान ने उन्हें स्नेहपूर्वक आसन ग्रहण करने को कहा। जैसे ही वे तीनों आसन पर विराजमान हुए उनके सामने परोसी हुई थालियाँ आ गई, थालियाँ थालपोशों (रूमालों) से ढ़की हुई थी सर्वप्रथम कवि महाशय ने थाली से थालपोश हटाया। वे यह देखकर चकित हो गए कि थाली में न खीर थी, न लड्डू थे, न सब्जी थी, न रायता था, न पूड़ी थी, न पुलाव, न अचार, न चटनी। अपितु थाली में रखी थी उन्हीं की कविताओं की एक किताब। यह देखकर कवि महाशय के जैसे प्राण ही उड़ गए हों। इसका एक कारण यह भी था कि निमंत्रण के चक्कर में श्रीमान् ने सुबह से ही कुछ नहीं खाया था। अतः पेट में चूहे कबड्डी खेल रहे थे।

इसी प्रकार वैद्य जी की थाली में परोसी गई थी- दवाई की गोलियाँ, कुनेन का घोल और कुछ अन्य दवाइयाँ, और चित्रकार महानुभाव की थाली में परोसे गए थ आलीशान चित्र ही चित्र।

तीनों के पेट में चूहे धमाचौकड़ी कर रहे थे, पर खाएँ तो क्या खाएँ। तीनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और खिसयानी हँसी हँसकर बोले- 'ही-ही-ही-ही! पहलवान साहब! बहुत हँसी-मजाक हो गया। अब कुछ खाना-वाना लाइए।'

पहलवान तो जैसे इसी अवसर की तलाश में था। वह बोला- 'हे कविहृदय! कल मैंने देखा था कि आप एक भूखे आदमी को रोटी के बदले कविता खिला रहे थे। अब आप भी कविता खाकर भूख क्यों नहीं मिटा लेते? क्या उस व्यक्ति की भूख अलग थी और आपकी भूख अलग है?'

फिर वह वैद्य जी की ओर घुमकर बोला– 'हे प्राणरक्षक! आप भी दवाई पीकर या खाकर अपनी भूख क्यों नहीं शांत कर लेते?'

फिर वह चित्रकार से बोला– 'आप भी बढ़िया से बढ़िया चित्र खाइए और अपनी उदर वेदना को शांत कीजिए। देर किस बात की।'

ये सब बातें सुनकर तीनों अतिथि स्वयं को अपमानित हुआ जानकर क्रोधित होते हुए बोले– 'तुम्हारे घर में जो भी कुछ थोड़ा–बहुत बना हो वह खिलाना है तो खिला दो। वरना, हम जा रहें हैं और हाँ सुनो, तुमने हमारे साथ अच्छा नहीं किया।

इतना सुनना था कि पहलवान ने आव देखा न ताँव लगा एक–एक को पकड़कर पटकनी देने। तीनों धरती पर लुढ़कते थे और चिल्लाते जाते थे। 'अब इसकी क्या जरूरत थी।'

पहलवान कहता जाता था– 'मैं पहलवान हूँ। मेरा काम कुश्ती लड़ना और पटकनियाँ देना है। मैं दूसरों से कुश्ती लड़ने के हजारों रुपये लेता हूँ। लेकिन, तुम्हें अपना पड़ोसी समझकर फ्री–फण्ड में ही पटकनियाँ दे रहा हूँ। इसलिए तुम मेरी पटकियों की कीमत नहीं जानते। लगता है, तुम तीनों महामूर्ख हो। हजारों रूपये की पटकियाँ छोड़कर दस–बीस रूपए का भोजन माँग रहे हो।

पहलवान के शिष्य पीछे खड़े यह सब तमाशा देखकर हँसते–हँसते लोट–पोट हो रहे थे।

जब अच्छी खासी पटकियाँ खा ली तो तीनों को कुछ होश आया और अपनी गलती का अहसास भी हो गया। तीनों कहने लगे– हमसे बहुत बड़ी भूल हो गयी।

'हमने दूसरे के दु:ख को अपने दु:ख जैसा नहीं समझा।'

'हमने अपने और पराये में भेद समझा।'

'हमने उस गरीब आदमी से अच्छा बर्ताव नहीं किया।'

यह सुनकर पहलवान बोला– हम सबको दूसरे प्राणियों के साथ अपनापन बर्तना चाहिए। जैसा कष्ट हमें होता है, वैसा ही कष्ट उन्हें भी

होता है। इसीलिए कहा जाता है कि–

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

अर्थात जो आचरण हमें खुद के लिए बुरा लगता है वह दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् सचमुच की थलियाँ लगी उन सब ने उदर वेदना को शांत किया और उन्होंने प्रतिज्ञा भी की अब वे जीवन में कभी भी इस प्रकार का आचरण नहीं करेंगे।

तभी उन्होंने देखा कि एक चौथा व्यक्ति भी वहीं भोजन कर रहा था– यह वही आदमी था जो कल रोटी माँग रहा था।

उसे देखकर कवि बोला– अब तक मैं सपनों की कविता लिखता था। आज से मैं प्राणी मात्र की हितैषी कहानियाँ लिखूगाँ।

वैद्य जी बोले– आज से मैं गरीबों का निःशुक्ल उपचार करूँगा।

चित्रकार बोला– आज से मैं अपनी कमाई का दसवाँ भाग गरीबों को दान दिया करूँगा।

८८. गुरुनिष्ठा

हमारे देश में प्राचीन काल से यह कहा जाता है कि जब से इस सृष्टि की रचना हुई है तभी से मनुष्य के जीवन में गुरु का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्हें भवगान् से भी ऊँचा स्थान दिया जाता है। और दिया भी क्यों न जाएं? क्योंकि माता–पिता के पश्चात् अगर किसी व्यक्ति के जीवन में सर्वोच्च स्थान है तो वह गुरु का ही है। और मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जो यथार्थ ज्ञान है वह व्यक्ति को गुरु से ही प्राप्त होता हैं क्योंकि, माता–पिता तो मोहवश या स्वार्थवश उस परममार्ग पर अग्रसर होने के लिए शायद प्रेरित न भी करें। लेकिन जो वास्तविक गुरु होते हैं, उनको न तो कोई मोह होता है और ने ही कोई स्वार्थ। वे तो निस्वार्थभाव से हर क्षण यही चिंतन करते रहते हैं कि येन–केन प्रकारेण शिष्य का हित हो। शायद इस लिए संत कबीर को कहना पड़ा–

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीष दिए जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जाना॥

कबीरदास के उक्त कथन से यह सुस्पष्ट होता है कि इस नश्वर शरीर की उपादेयता इसी में है कि इससे गुरु की सेवा-भक्ति करके वास्तविक ज्ञान को प्राप्त कर लिया जाए। तथा वह वास्तविक ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है। जब हम निःस्वार्थ भाव से गुरु के प्रति अपनी सत्यनिष्ठा रखें। इस संदर्भ में हमारे सामने अनेक ऐसे दृष्टांत है, जिनको हम अपने प्रेरणास्रोत बना सकते हैं। उन्हीं में से एक दृष्टांत है संत दादु और उनके शिष्य रज्जब का जो गुरु निष्ठा का एक जीवंत उदाहरण है।

एक बार संत दादू अपने शिष्य रज्जब तथा और भी बहुत सारे शिष्यों के साथ वन में परिभ्रमण कर रहे थे। चलते-चलते रास्ते में एक नदी आ गयी। नदी में पानी तो अधिक नहीं था, लेकिन पानी कम होने के कारण उसमें कीचड़ इतना अधिक जम गया था कि नदी पार करना बड़ा कठिन था। यह देखकर सभी शिष्य सलाह-मशवरा करने लगे कि क्या किया जाए? जिससे गुरुजी नदी को सुगमतापूर्वक पार कर लें। यह सोचते-सोचते उन्होंने देखा कि नदी से कुछ ही दूर पत्थर पड़े हुए हैं। अतः वे सब पत्थर उठा-उठाकर लाने लगे और नदी में डालने लगे।

यह सब देखकर रज्जब बोला- 'गुरुदेव! मैं नदी में लेट जाता हूँ और आप मेरे शरीर पर पैर रखकर नदी के उस पार चले जाइए', और वह सचमुच वहाँ लेट गया।

यह देखकर संत दादू ने कहा- 'अरे! तुम यह क्या कर रहे हो? चलो, जल्दी उठो।

यह सुनकर रज्जब बोला- 'आपके चरणकमलों से मेरा यह अपवित्र शरीर पावन हो जाएगा। मेरे शरीर की सार्थकता इसी में है कि वह निरंतर आपकी सेवा करता रहे।'

संत दादू रज्जब की गुरुनिष्ठा देखकर अभिभूत हो गए। उन्होंने उसे उठाया और गले लगाते हुए आत्मीय भाव से बोले– 'धन्य है रज्जब तुम्हारी गुरुनिष्ठा। इसीलिए कबीरदास को लिखना पड़ा–

सिख तो ऐसा चाहिए जो गुरु को सब कुछ दे।
लेकिन, गुरु भी ऐसा चाहिए जो सिख से कछु न ले॥

८९. मन ही राक्षस है

उत्तर भारत के किसी गाँव में एक किसान रहता था। उसके पास खेती की बहुत सारी जमीन थी। परिवार में केवल उसकी पत्नी और बेटी थी। बेटी अभी उम्र में बहुत छोटी थी और पत्नी घर के काम में व्यस्त रहती थी। अतः खेती का सारा काम किसान को ही करना पड़ता था। जिसके कारण वह बहुत व्यस्त रहता था। और काम की अधिकता के कारण कुछ परेशान भी रहता था। उसकी एक खासियत (अच्छाई) थी कि वह प्रभात और संध्या में भगवान् की पूजा अर्चना अवश्य करता था। यह उसका नित्य का नियम था। चाहे कुछ भी हो जाए, लेकिन, वह अपने इस नियम का पालन अवश्य करता था।

एक दिन भगवान् उसकी भक्ति से इतने अधिक प्रसन्न हो गए कि वे उसके सामने प्रकट हो गए और बोले– 'मैं तुम्हारी दृढ़ श्रद्धा भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूँ, बोलो, तुम्हें क्या चाहिए।'

यह सब देखकर वह किसान आश्‍चर्यचकित होते हुए बोला कि– 'हे भगवन् मेरे पास आपका दिया हुआ सब कुछ है, किसी चीज की कमी नहीं है। कमी है तो केवल एक कुशल कार्यकर्ता की। मुझसे अकेले सब काम नहीं होता, पत्नी घर के कामों मे व्यस्त रहती है, पुत्री अभी छोटी है। और बड़ी भी हो जाएगी तो वह तो ठहरी पराया धन उसे भी तो एक न एक दिन सामाजिक परंपरा का निर्वहण करते हुए विवाह के बंधन में बँधना ही है। अतः संभव हो तो मुझे एक ऐसा कुशल कार्यकर्ता दे दीजिए जो, मेरे काम में मेरा हाथ बँटा सके।

यह सुनते ही भगवान् बोले– 'तथास्तु! और अन्तर्धान हो गए। अब उनके स्थान पर वहाँ एक हट्ठा-कट्ठा 'जिन' खड़ा था। वह किसान से बोला– 'मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। आप जो भी काम कहेंगे मैं उसे अवश्य करूँगा। आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। लेकिन, मेरी एक शर्त है कि मैं खाली नहीं रह सकता। हाँ आप इस बात का ध्यान अवश्य रखना कि अगर, मैं खाली रहा, मुझे कोई भी काम नहीं मिला तो मैं तुम्हें ही खा जाऊँगा। बाकि मेरे लिए आपको कोई चिंता नहीं करनी कि क्या खाएगा, क्या पीएगा, कहाँ रहेगा, क्या पहनेगा? टाइप की।

उसकी ये सब बातें सुनकर किसान मन ही मन मुस्कराते हुए सोचने लगा कि मूर्ख है शायद, इसे पता ही नहीं है कि मेरे पास कितना काम है। इसे साँस लेने तक कि फुर्सत नहीं मिलेगी।

किसान ये सब सोच ही रहा था कि 'जिन' बोला– अब आप देर मत करिए और मुझे फटाफट मेरा काम बताइए। मेरी ड्यूटी शुरू हो गई है।

किसान अमिताभ स्टाइल में बोला– 'ठीक है आपका समय शुरू होता है अब।' सबसे पहले तुम जाओ और मेरे सारे खेतों के चारों ओर बाड़ लगाकर आओ जिससे खेतों मे जंगली जानवर न घुस सकें।

इतना सुनते ही 'जिन' बोला–'जैसी आपकी आज्ञा मेरे आका।' और चला गया खेतों की ओर। किसान सोचने लगा अब मुझे आराम मिलेगा। मैं सारे काम इस 'जिन' से करवाऊँगा और खुद चैन की बंसी बजाऊँगा। लेकिन, यह क्या 'जिन' तो पलभर में ही वापस आ गया। किसान सोचने लगा कि वैसे ही डींगे हाँक रहा था। इसके बस की नहीं हैं खेती का काम शायद भगवान् ने किसी गलत आदमी को भेज दिया है।

'जिन' बोला– 'आपकी आज्ञा का पालन हुआ मेरे आका। आप चाहे तो जाकर निरीक्षण कर सकते हैं। मैंने सारे खेतों में बाड़ लगा दी है। अब मुझे आप मेरा अगला काम बताओ वरना मैं आपको खा जाऊँगा।'

किसान घबराते बोला– 'अच्छा, अब तुम जाओ और खेतों के चारों ओर 100-100 फुट गहरे कुँए खोदो। जिससे खेतों में सिंचाई करने

में कोई परेशानी न हो, गर्मी के दिनों में पानी की बहुत परेशानी होती है।'

'जिन' बोला– 'जो हुक्म मेरे आका।' और वह कुछ ही मिनटों में वापस आकर बोला– 'हुक्म की तालीम हुई मेरे आका। अगला काम बताओ।'

किसान बोला– 'अच्छा, अब तुम जाओ और सारे खेतों को जोत कर आओ। जिससे उचित समय आने पर बीज बोया जा सके।'

'जिन' बोला– 'जैसी आपकी आज्ञा मेरे आका बस, आप तो गुलाम को काम बताते रहिए।' और वह चला गया। किसान को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि यह इतनी जल्दी इतना अधिक व कठिन काम कैसे कर के आ जाता है। वह सोचने लगा कही ये मुझे उल्लू तो नहीं बना रहा है? अतः जाकर एक बार देखना चाहिए। किसान खेतों की ओर गया तो देखकर स्तब्ध रह गया कि वास्तव में जो-जो काम उसे बताए थे, वे सब काम पूरे हो गए थे। अभी वह यह सब देख ही रहा था कि 'जिन' आकर बोला– 'काम पूरा हुआ मेरे मालिक अगला काम बताइए। वर्ना, मैं आपको ही खा जाऊँगा। यह मैंने पहले ही आपको बता दिया था। अतः विलम्ब न करें।' अब किसान बारी-बारी काम बताता जाता और वह कुछ ही क्षणों में उस काम को करके आ जाता और कहता काम बताओ वरना, तुम्हें खा जाऊँगा। धीरे-धीरे किसान के सब काम समाप्त हो गए, होते भी क्यों नहीं भला, वह ठहरा 'जिन' उसके लिए कोई भी काम कठिन नहीं था। लेकिन, अब किसान देवता मुसीबत में फँस गए कि क्या करे, अगर 'जिन' महाराज को काम नहीं मिला तो वह मुझे ही खा जाएगा। यही सोचकर किसान बेचारा दुःखी हो रहा था कि उसको याद आया कि अब तो भगवान् ही कोई उपाय बता या कर सकते हैं। जिससे मेरा काम भी होता रहे और मैं जीवित भी रह सकूँ। लेकिन, यह क्या वह सोच ही रहा था कि इतने में 'जिन' महाराज बोले– 'अगला काम बताइए।'

किसान मन ही मन बोला– 'आ जा बेटा! मैं तेरा ही जुगाड़ कर रहा हूँ। मैं ऐसा उपाय सोच रहा हूँ जिससे 'साँप भी मर जाए और लाठी

भी न टूटे' वाली उक्ति चरितार्थ हो जाए।'

किसान बोला- आओ, आओ मेरे सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी मैं तुम्हारे काम के विषय में ही सोच रहा था। अब तुम एक काम करो तुम अरब के देशों में जाओ और वहाँ बसेरे के मोती ढूँढ़ों वहाँ पर ये मोती बहुतायत में पाये जाते हैं। तुम वहाँ से दस बोरी मोती लाओ।

'जिन' बोला- 'जैसा आपका आदेश।' और चल दिया अरब देश की ओर।

अब किसान ने सोचा- फटाफट कोई ऐसा उपाय किया जाए, जिससे कि भगवान् पुनः प्रकट हो जाएँ। क्योंकि वे ही कोई उपाय बता सकते हैं। अतः वह लग गया भगवत भक्ति में। और भगवान् को तुरंत प्रकट होने की प्रार्थना करने लगा। और हुआ भी ऐसा ही। भगवान् प्रकट हो गये और बोले- 'बताओ, क्या बात है? इतनी जल्दी कैसे याद किया।' किसान बोला- भगवन्! आपका कार्यकर्ता तो बड़ा ही काम का है लेकिन, समस्या ये है कि वह महीनों के काम को पल भर में ही निपटा देता है और कहता है कि अगला काम बताओ वरना, मैं तुम्हें खा जाऊँगा। मेरे पास जितने भी काम थे वे सब उसने निपटा दिये हैं। अभी मैंने उसे एक लंबा काम दिया है। लेकिन, मुझे लगता है वह आने ही वाला है। अतः या तो आप अपना कर्मचारी वापस ले लीजिए। वरना, कोई युक्ति ऐसी बताइए, जिससे मेरी समस्या का समाधान हो सके।

यह सुनकर भगवान् बोले देख भाई किसान, दी हुई चीज तो मैं कभी वापस नहीं लेता। हाँ, इस समस्या का उपाय मैं तुम्हें बता सकता हूँ। और भगवान् ने उसे एक युक्ति समझा दी और अंतर्धान हो गये। किसान भगवान् के द्वारा बताई गयी युक्ति को सोचकर मन ही मन प्रसन्न होते हुए बोला- 'आ जा बेटा अब तू। अब, मैं करता हूँ तेरा इलाज अब खाइयो तु मुझे।'

इतने में ही 'जिन' महाराज 10 बोरी मोतियों के साथ प्रकट हो गया और बोला- ये लो, सम्भालों अपनी 10 बोरियाँ और मुझे अगला काम बताओ। वरना, मैं तुम्हे खा जाऊँगा।

किसान बोला– धन्यवाद। 'तुम तो वास्तव में एक कुशल कर्मचारी हो। अब तुम एक काम करो पहले शहर जाओ और एक हजार फिट लम्बी एक लोहे की चेन लाओ, फिर एक हजार फिट लोहे का खंभा लाओ। फिर उस खंभे को जमीन में गाडो। तत्पश्चात् चेन का एक सिरा खम्भे में बाँधो और दूसरा सिरा अपने गले में बाँधों और जब जक मैं तुम्हें न बुलाऊँ तब तक तुम उस खंभे पर चढ़ो-उतरो, चढ़ो-उतरो बस यही काम है तुम्हारा।' 'जिन' ने वैसा ही किया। अब जब भी किसान को कोई काम करवाना होता तो वह उससे करा लेता और बाकी समय में उसे फिर लगा देता खंभे पर चढ़ने-उतरने के लिए। अब किसान भी खुश और 'जिन' महाराज भी मस्त।

मित्रों! ये कहानी किसी और की नहीं अपितु, हम सबकी है। वह 'जिन' कोई और नहीं बल्कि हम सबका मन ही वह 'जिन' है, जो खाली होते ही उट-पटाँग करने की सोचने लगता है।

अतः हम सबको प्रयत्न करना चाहिए की जहाँ तक हो सके। अपने मन को अच्छे कामों में लगा कर रखना चाहिए वरना, यह हमको ही खाने लगता है। कहा भी जाता है कि– **'व्यस्त जीवन स्वस्थ जीवन।'** यह मन ही हमारा शत्रु होता है जब हम बुरे काम करते हैं और यह मन ही हमारा मित्र होता है, जब हम अच्छे काम करते हैं। और यह एक विचित्र संयोग है कि अच्छा भी यही कराता है और बुरा भी। और यह निर्भर करता है हमारी बुद्धि पर, हमारे विवेक पर कि हम अच्छा करें या बुरा करें। इसलिए स्पष्ट कहा जाता है कि– **मन एव कारणं मुनष्याणां बन्धमोक्षयोः।**

९०. तेरा साईं तुझमें

भगवान् की तलाश हम सबको रहती है। और उन्हें ढूँढ़ने का हर सम्भव प्रयास हम सभी करते हैं। उन्हें ढूँढ़ने हम मन्दिरों मे जाते हैं, मस्जिदों, गिरजाघरों में जाते हैं, गुरुद्वारों मे जाते हैं, अनेक तीर्थयात्राएं करते हैं। वहाँ जाते हैं जहाँ भगवान् का जन्म हुआ था, वहाँ जाते हैं जहाँ

भगवान् विश्राम करते थे। लेकिन बड़े ही आश्चर्य की बात है कि वहाँ जाने का कोई प्रयास नहीं करता या कोई विरला व्यक्ति ही करता है जहाँ साक्षात् भगवान् विराजमान हैं, वहाँ जाने के लिए शायद ही कोई विरला व्यक्ति तैयार भी हो पाता है। हमारा असली भगवान् तो हमारे अंदर ही मौजूद है, जो जड़ नहीं अपितु चेतन है। जीता-जागता है। उसको कही बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता ही नहीं है, वे तो हर पल हमारे साथ रहते हैं। अतः हम सबको उन भगवान् के दर्शन करने चाहिए जो प्रत्येक क्षण हमारे साथ मौजूद हैं। और वह भगवान् हैं- स्वयं की आत्मा अर्थात् निजात्मा। वह असली तीर्थ है। और वह तीर्थ हम सबके अंदर ही है। कहीं बाहर जाने की या ढूँढ़ने की जरूरत ही नहीं है। और बाहर भी जाओ इसका कोई निषेध नहीं है, जरूर जाओ। लेकिन कहीं ऐसा नहीं हो जाए कि इस बाहर के चक्कर मे अंदर को भूल जाओ। कहीं **'मूल की ही भूल'** न हो जाए। और यह तो हम सभी भली-भाँति जानते हैं कि 'मूल की भूल' का फल क्या होता है? और जब मूल ही हाथ नहीं आया तो सारा परिश्रम व्यर्थ है। अतः हम सबको अपने ज्ञानरूपी चक्षु को खोलना चाहिए और अपने अंदर झाँकने का प्रयत्न करना चाहिए। जिससे हमें अपने अंदर विराजमान् आत्मस्वरूप भगवान् के दर्शन हो सकें तथा परमानन्द की प्राप्ति हो सके। आत्मानुभव के बिना वास्तविकता का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। और यह भी एक वास्तविक सत्य है कि व्यक्ति हर जगह ढूँढ़ता है, लेकिन अपने अंदर नहीं ढूँढ़ता। कहा भी जाता है कि-

खुद को खुद ही में ढूँढ़, खुदी को तू दे निकाल।
फिर तू ही खुद कहेगा, खुदा हो गया हूँ मैं॥

९१. वास्तविक बल

महाभारत के समय में एक बड़ा वीर योद्धा था श्रुतायुध। उसके पिता का नाम वरुण था।

एक बार वृद्धावस्था आ जाने के बाद वरुण एक ऐसे असाध्य रोग की चपेट में आ गया कि उसके प्राण बचने मुश्किल थे। अतः अब

उसने सोच लिया कि उसका परलोक गमन निश्चित है उस समय उसने अपने पुत्र श्रुतायुध को अपने पास बुलाया और कहने लगे– 'बेटा, अब तुम बड़े हो गए हो और तुम जानते ही हो कि मैं एक सैनिक हूँ, मैंने अपना संपूर्ण जीवन शस्त्र विद्या सीखने तथा राष्ट्र की रक्षा करने के लिए युद्ध करते हुए बिता दिया है। अतः धन-संपत्ति के नाम पर तो कुछ विशेष नहीं है हाँ मेरे पास एक विशिष्ट गदा है जिसे मैंने वर्षो की तपस्या के बाद प्राप्त किया है। अतः मैं संपत्ति के रूप में वह गदा तुम्हें दे सकता हूँ। और हाँ, देखा जाए तो ये शस्त्र ही हमारी संपत्ति है, क्योंकि हमारा परिवार तो पीढ़ी दर पीढ़ी राष्ट्र की सुरक्षा करता आया है जो कि भविष्य में तुम्हें भी करनी है। इस गदा में विशिष्टता यह है कि इसका निशाना अचूक है और इसका प्रहार कभी व्यर्थ नहीं जाता। लेकिन, यह गदा अगर किसी निर्बल, निहत्थे या निर्दोष मनुष्य पर चलायी जाए तो यह उलटकर चलाने वाले को ही मार डालती है। अतः इसको चलाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना।'

इतना कहकर वरुण परलोक गमन कर गया।

अब श्रुतायुध में कुछ अहम्भाव उत्पन्न हो गया और वह स्वयं को सबसे बड़ा बलवान् और अजेय वीर योद्धा समझने लगा। समझे भी क्यों न? ऐसा अद्भूत हथियार जो उसके पास है।

उन्हीं दिनों कौरवों और पांडवों में युद्ध ठन गया और श्रुतायुध ने कौरवों के पक्ष में युद्ध करना स्वीकार किया।

युद्ध प्रारंभ होने के कई दिन बाद जब एक दिन अर्जुन और जयद्रथ के बीच भयंकर युद्ध चल रहा था। अर्जुन जयद्रथ को पराजित करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहा था तो अचानक कौरवों की सेना में हाहाकर मच गया। श्रुतायुध ने भी यह हाहाकार सुना। उसे तो पिता द्वारा प्रदान की गयी गदा पर घमंड था। अतः वह भिड़ गया अर्जुन से और मारने दौड़ा अर्जुन को। लेकिन वह प्रहार करता उससे पहले ही अर्जुन ने उस पर गाण्डीव से तीरों की बौछार कर दी और वह घायल होकर नीचे गिर गया। यह देखकर प्रसन्न होते हुए श्रीकृष्ण ने अपना

शंख बड़े जोर से बजा दिया। इससे श्रुतायुध चिढ़ गया और क्रोधवश बदला लेने के लिए उसने नीचे पड़ी हुई अपनी गदा श्रीकृष्ण के ऊपर फेंक दी।

क्रोध और अहंकार वश उस समय श्रुतायुध को अपने पिता की आधी बात याद रही– 'इसका निशाना अचूक है और इसका प्रहार कभी व्यर्थ नहीं जाता।' उसे पूरा विश्वास था कि गदा का प्रहार करके वह श्रीकृष्ण से अपना मजाक उड़ाने का बदला ले लेगा और श्रीकृष्ण को चकनाचूर कर देगा। किंतु उसे अपने पिता के वचन का शेष भाग स्मरण नहीं रहा जिसमें उन्होंने कहा था– 'लेकिन यदि किसी निर्बल निहत्थे या निर्दोष मनुष्य को मारा जाए तो वह उलट कर चलाने वाले को ही मार डालती है।'

इस युद्ध में श्रीकृष्ण तो केवल अर्जुन के सारथी थे और उन्होंने इस धर्म युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की हुई थी। अतः निहत्थे श्रीकृष्ण पर गदा चलाने का वही हस्र हुआ जो उसके पिता ने उससे कहा था। वह गदा लौटकर श्रुतायुध के सिर पर इतने जोर से गिरी कि वह वहीं पर ढेर हो गया।

यह कहानी हमें यह शिक्षा देती है कि हमें अपने बल और बुद्धि का प्रयोग असहाय और पीड़ितों की सहायता के लिए करना चाहिए न कि अपने अहंकार को पुष्ट करने के लिए और जो कोई भी निर्बल और असहायों को सताता है या मारता है प्रकृति का न्याय एक दिन उसी को नष्ट कर देता है। भले ही वह कुछ समय के लिए खुश क्यों न हो ले अर्थात् प्रकृति के न्याय से कोई बच नहीं सकता है।

यह कहानी केवल एक श्रुतायुध की नहीं है, अपितु करोड़ों–अरबों श्रुतायुधों की है। जिसमें हम सभी शामिल हैं। छोटे–छोटे अहंकारों अथवा आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए भला हम क्या– कुछ नहीं कर देते यह सोचने का विषय है। अतः वास्तविक बल वही होता है, जो असहाय और पीड़ितों के काम आए। कहा भी जाता है कि–

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु, दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरते ज्योत्स्नां, चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः॥

अर्थात् सज्जन लोग गुणहीनों पर भी दया करते हैं। जैसे चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर से अपनी चाँदनी को नहीं सिकोड़ता।

९२. संतोष और आनन्द का रहस्य

किसी गाँव में दो मित्र रहते थे। एक का नाम था विद्यानन्द तो दूसरे का नाम था धनपति। उनका बचपन एक साथ बीता, एक साथ खेले-कूदे, एक साथ पढ़े-लिखे। युवावस्था आने पर विद्यानन्द साधना के मार्ग पर अग्रसर होकर सन्त-महात्माओं के सम्पर्क में चला गया और धनपति ने अपना पैतृक व्यापार सम्भाल लिया। तथा अपनी घर-गृहस्थी बसा ली। एक सुन्दर सर्वगुण सम्पन्न धनी सेठ की पुत्री से उसका विवाह हुआ। कालक्रमानुसार उसके यहाँ पुत्र-पुत्रियों का जन्म हुआ धीरे-धीरे उन सबके भी विवाहादि सम्पन्न हुए। व्यापार भी खूब बढ़ा। कहने का मतलब यह है कि वह एक सम्पन्न और समृद्ध परिवार का मुखिया बन गया। लेकिन, वह था कि बडा अप्रसन्न-सा रहता ऐसा लगता जैसे यह बडा दुःखी है।

संयोगवश एक दिन गाँव मे एक संत का आगमन हुआ। सारा गाँव संत के दर्शन के लिए उमड़ पडा। सेठ धनपति भी संत के दर्शन के लिए गया। संत का बडा आदर-सत्कार हो रहा था। स्वागत गीत गाए जा रहे थे। धनपति बड़े गौर से संत को देखने लगा और मन ही मन कहने लगा कि 'हो न हो मैंने पहले भी इनको कहीं देखा है' जब उसने दिमाग पर जोर डाला तो उससे याद आ गया कि अरे! यह तो मेरा मित्र विद्यानन्द है। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। फिर क्या था धनपति की तो खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा। इतने वर्षों बाद मित्र को जो देखा और वो भी एक संत के रूप में।

विद्यानन्द अपने ज्ञानमार्ग में बहुत आगे बढ़ चुके थे। अतः सब समझ गये कि ऊपर से भले ही उसका मित्र खुश दिखाई दे रहा है,

लेकिन, अंतर्मन में यह दुःखी है। उस समय तो विद्यानन्द चुप्पी लगा गए। लेकिन, फिर शाम को जैसे ही उन्हें एकांत मिला तो उन्होंने धनपति से पूछ ही लिया क्या बात है? मित्र! बड़े व्यथित मालूम पड़ते हो।

इतना सुनते ही फूट पड़ा धनपति और कहने लगा- 'मित्र! आपसे क्या छिपाऊँ बड़े ही कष्ट में जीवन बीत रहा है। वैसे तो भगवान् का दिया हुआ सब कुछ है पत्नी बेटे-बेटियाँ, नाती-पोते, धन-संपदा सब है, कोई कमी नहीं हैं। लेकिन पता नहीं क्यों मुझे हमेशा चिन्ता, लोभ-लालच और क्रोध जलाते रहते हैं। मेरा स्वभाव अत्यंत चिड़चिड़ा हो गया है परिवार की किसी उपलब्धि से, या किसी के किसी भी काम से मुझे संतोष नहीं होता। बहुत परेशान हूँ चौबीसों घंटे बुरे-बुरे विचार मेरे मन में उत्पन्न होते रहते हैं। मेरा जीवन तो जैसे नर्क बन गया है लेकिन मित्र एक बात बताओ, जब मैं इतना सब पाकर भी दुःखी हूँ तब तुम इतने सुखी एवं प्रसन्नचित कैसे रह लेते हो? तुम्हारे पास तो कुछ भी नहीं हैं न दो जोड़ी कपड़े, न कल के खाने का ठिकाना, न सिर छिपाने के लिए घर फिर कहाँ से लाते हो इतना संतोष? कैसे रह लेते हो इतना निश्चिन्त और प्रसन्न?

यह सब सुनकर विद्यानन्द मंद-मंद मुस्कराते हुए बोले- 'मैंने साधना से जो प्राप्त किया है। वह कठिन जरूर है, लेकिन ऐसा नहीं है कि उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसके प्रयोग कष्टदायी हैं लेकिन अंत में सुखदायी हैं। बस, यही राज है मेरे प्रसन्न रहने का। तुम चाहो तो तुम भी इस मार्ग पर चल सकते हो।'

यह सुनकर धनपति बोला- 'क्या मैं अब इस उम्र में यह कठिन साधना कर सकता हूँ? मुझे तो यह संभव नहीं लगता।'

यह सुनकर विद्यानन्द ने कहा- 'हाँ, मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा है कि शायद ही तुम इस जन्म में यह सब कर पाओ। और हाँ, अब तुम्हारे पास समय ही कितना है? सातवें दिन तुम्हारे जीवन का अंत मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इस होनी को कोई एक दिन भी आगे-पीछे टाल नहीं सकेगा। एक दिन जो जैसा होगा, दूसरे दिन वैसे ही तुम्हें छोड़कर

जाना होगा। अब उचित यही है कि जीवन भर परिश्रम करके जो समेटा है उसी के बीच शांति से ये गिने–चुने दिन और व्यतीत कर लो, फिर जाना तो है ही। सातवें दिन प्रातः काल तुम्हारे प्रस्थान से पहले मैं आऊँगा तुमसे अंतिम भेंट करने।'

धनपति को संत विद्यानन्द की बात पर दृढ़ विश्वास हो गया। अपनी अंतिम वेला उन्हें सामने दिखाई देने लगी। मृत्यु उनके आँखों के सामने नृत्य करने लगी। पल भर के लिए भी उसे भूलना असंभव हो गया। अब उनके लिए घर परिवार पहले जैसा नहीं रह गया था। सब कुछ बदला–बदला लगने लगा। जीवन की धारा भी बदल गयी। कहाँ गया क्रोध, कहाँ गया लालच, कहाँ चली गयी मोह–ममता, वे स्वयं भी नहीं समझ पाये। सब कुछ नीरस दिखाई देने लगा। केवल व केवल एक ही बात याद रही कि– 'रविवार को जाना है।'

ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे समय पंख लगाकर उड़ रहा हो बहुत जल्दी रविवार भी आ गया। अभी धनपति स्नानादि नित्यकर्म निपटाकर भगवत् नाम की माला जप रहे थे कि इतने में संत विद्यानन्द उनके द्वार पर प्रकट हो गए। धनपति ने उनके चरणों पर गिरते हुए प्रणाम किया और कहने लगा– 'आप ने आने में देरी क्यों कर दी मैं तो सुबह से ही तैयार बैठा हूँ आपके दर्शन के लिए।'

संत विद्यानन्द वहाँ का माहौल देखकर बोले– 'अरे! ये कैसा चमत्कार? आप इतनी शांत मुद्रा में बैठे हैं। जो आपके सामने डरते थे वे आपको घेर कर बैठे हैं। घर का वातावरण एकदम शांत दिखाई दे रहा है। आपका क्रोध और चिड़चिड़ापन कहाँ चला गया।'

धनपति बोला– 'मित्र! जब से आपके पास से लौटा हूँ मुझे मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मन में बार–बार यही बात घूमती रही कि सबकुछ छोड़कर सातवें दिन जाना है। अब इतने थोड़े समय के लिए किस पर क्रोध करता? जब सब छोड़कर जाना ही है तो क्या समेटना? आपका महान् उपकार है कि आपने समय रहते मेरी आँखें खोल दी और मेरा अंत सुधार दिया।'

विद्यानन्द ने प्यार से मुस्कराते हुए, अपने मित्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा– 'आज ही जाना होगा ऐसा कुछ निश्चित नहीं है किसे कब जाना है यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता। मैंने तो तुम्हारी समस्या के निदान हेतु एक प्रयोग मात्र किया था।'

'तुम्हें एक आशंका हो गयी थी कि सातवें दिन मृत्यु आ सकती है। मात्र इतने से ही तुम्हारे मन के आवेग शांत हो गए। वासनाएं मंद पड़ गयी और जीवन के प्रति तुम्हारा नजरिया ही बदल गया।'

'हमने जब से साधना प्रारंभ की है तब से हर क्षण मृत्यु की संभावना हमारी दृष्टि में उपस्थित रहती है। लगता है जो साँस बीती जा रही है वह लौट कर आयेगी या नहीं, कोई गारंटी नहीं मृत्यु जीवन का अटल सत्य और परिणाम है। यदि हम सब इस बात को ध्यान में रखें तो हमारी जीवन–यात्रा शांति एवं सद्भावना पूर्वक पूर्ण हो सकती है। और यही हमारे संतोष और आनन्द का रहस्य है।' और हाँ एक बात और कहनी है मित्र! 'मैंने तुमसे जो कहा था वह बिल्कुल असत्य भी नहीं है सोमवार से लेकर रविवार तक दिन तो कुल सात ही होते हैं। सभी के जीवन का अंत इन्हीं में से किसी एक दिन होता है। किसी के लिए आठवाँ कोई दिन है ही नहीं। इसलिए जाते–जाते यह और कहना है कि किसके लिए कौन–सा दिन अंतिम दिन होगा यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अतः अपने कर्तव्य का पालन करो और हर दिन जीवन का अंतिम दिन मानकर सावधानी और विवेकपूर्ण जीना सीखो। वासनाओं का मकड़जाल खुद ब खुद टूटता चला जाएगा। पल–पल हर्ष और आनन्द से भर जाएगा।

९३. विचित्र प्रयोग

बहुत समय पहले की बात हैं कुछ मित्र गंगा किनारे पिकनिक मनाते हुए मौज–मस्ती कर रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि सामने एक वृक्ष के नीचे एक संन्यासी उपलों की आँच पर रोटियाँ सेंक रहा था। उसने कुल तीन रोटियाँ बनायीं शायद उसके पास आटा इतना ही था। लेकिन, यह क्या? उसने देखते ही देखते तीनों रोटियों के छोटे–छोटे टुकड़े किए

और उन्हें गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। तथा उपलों की आग से बनी दो मुट्‌टी राख पानी में घोली और पी गया। यह सब देखकर सभी मित्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ इतने में ही संन्यासी ने अपनी पोटली उठायी और चल दिया अपने गन्तव्य की ओर।

तभी मित्र-मंडली में से एक मित्र ने हिम्मत करके संन्यासी को रोकते हुए कहा हे महात्मन्! आपने यह क्या किया? हम सब देख रहे थे कि आपने इतने परिश्रम से रोटियाँ बनाई और फिर उनको जल में प्रवाहित कर दिया खाई भी नहीं। जब खानी ही नहीं थी तो इतना परिश्रम करके बनाई ही क्यों? आपका उक्त व्यवहार बड़ा ही रहस्यात्मक लगता है और हमारे कौतूहल का विषय बन गया है। अतः आप से विनम्र अनुरोध है कि आप हमें इस बात को समझा कर जाइए।'

यह सुनकर संन्यासी बोला- 'अरे! छोड़िए वो सब कोई खास बात नहीं है। आप तो अपनी पिकनिक का आनन्द लीजिए। हम संन्यासी तो ऐसी उट-पटाँग हरकतें करते रहते हैं।' लेकिन मित्र मंडली नहीं मानी तो संन्यासी बोला- 'ठीक है आप लोग नहीं मानते हो तो सुनो' मैं गंगा मइया की परिक्रमा करने के लिए निकला हूँ। मैंने भिक्षाटन से जो भी रूखा-सूखा मिल जाए उसी से पेट भरने का संकल्प लिया है। जो कि मुझे पर्याप्त मात्रा में मिल भी जाता है। मेरी यात्रा अब समाप्ति पर ही है। लेकिन, मेरा मन पिछले तीन दिन से एक ही रट लगाए हुए है कि इसे रोटी चाहिए। पुनः उसी का स्मरण, उसी का कीर्तन। और कल तो इसने हद ही कर दी। कल शाम को मैं संध्या कालीन गंगा मैया की आरती में इतना तल्लीन हो गया था कि मैं आपको बता नहीं सकता। लेकिन, यह वहाँ भी भटकता रहा, मुझे चैन नहीं लेने दिया, मुझे भटका ही दिया आरती से। क्योंकि इसे रोटी चाहिए थी।

इसलिए आज मैंने अपना संकल्प तोड़ते हुए आटा माँगा, नमक माँगा। उपले एकत्रित किए, माचिस माँगी, आग जलाई, पत्थर पर आटा गुथा और तवा माँग कर लाया और फिर रोटियाँ सेंकी। फिर खाने से पहले पानी लेने गया।

भरी दोपहरी की चिलचिलाती धूप में गंगा माई की चमकती लहरों ने आँखों को मोहित कर लिया। बड़ी ही प्रसन्नता और शीतलता की अनुभूति हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैं साक्षात् स्वर्ग में विचरण कर रहा हूँ, लेकिन यह भूखमरा मन रोटियों में घूसा हुआ था। बार-बार कह रहा था जल्दी चल, कहीं कुत्ता रोटी न उठा ले जाए, कहीं कौवा न उठा ले जाए। और एक बार तो इस पापी ने यह भी शंका कर ली की कहीं आप लोग ही न उठा लें इसका छप्पन भोग।'

अब आप ही बताइए भला, जो परिक्रमा भी ने करने दे, भगवद्-भजन में लीन न होने दे, प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द भी ने लेने दे उसे आप मित्र कहेंगे या शत्रु। बस, इसलिए आज मैंने भी सोच लिया कि इस भाई साहब को मजा चखाना चाहिए। रोटियाँ खिला दी जलचरों को इसे पिला दी उपलों की राख जिन पर रोटियाँ सेंकीं थी। अब कल निर्जला एकादशी है, निर्जल रहूँगा। ऐसे ही मानेगा यह यही है इसका इलाज।'

मित्रों! यह कहानी केवल उस संन्यासी की नहीं है अपितु, हम सबकी भी कमोबेश यही स्थिति है। हम कोई भी अच्छा काम करने लगे यह हमारा मन हमें भटकाता जरूर है। अब अगर उस समय इसे काबू में कर लिया जाए तो हम सफल हो जाते हैं। और काबू नहीं कर पायें तो गई भैंस पानी में वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है। और हाँ इसके लिए हमें विवेक और बुद्धि का प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है। इस पर अंकुश लगाने के लिए इन दोनों की महती आवश्यकता होती है। क्योंकि ये भाई साहब केवल बुरे काम ही नहीं कराते अपितु, अच्छे काम भी यही कराते हैं। इस लिए कहा जाता है कि-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
गुणेषु सक्तं बंधाय रतं या पुंस मुक्त्ये॥

९४. सुनो सबकी करो मन की

पूर्वी भारत के किसी गाँव में एक कुम्हार-कुम्हारी रहते थे। वे दोनों मिल-झुलकर मिट्टी के बर्तन बनाने का काम करते थे। जिससे

उनके जीवन का निर्वाह होता था। सवारी के नाम पर उनके पास एक गधा था। एक दिन उन दोनों का बाजार जाने का प्रोग्राम बना। आज कल की भाषा में कह सकते है कि माल में शॉपिंग करने का प्रोग्राम बना। कुम्हार बोला– 'हम गधे को भी अपने साथ ले चलते हैं वापसी में सामान इसकी पीठ पर लाद देंगे। जिससे हमें आराम रहेगा।'

यह सुनकर कुम्हारी बोली– 'ठीक है, यह तो बहुत ही अच्छी बात है इसी बहाने ये बेचारा भी बाजार घूम आएगा। इससे इसे भी प्रसन्नता मिलेगी और वे दोनों गधे को साथ लेकर चल दिए बाजार की ओर।

अभी वे कुछ ही दूर गये थे कि रास्ते में पाँच–छः आदमी निठल्ले टाइप के बैठे ताश खेल रहे थे, जैसे ही इन सज्जनों की दृष्टि इन लोगों पर पड़ी तो कहने लगे– 'अरे! देखो कितने मूर्ख हैं सवारी साथ में है, और पैदल जा रहें हैं।'

यह बात उन दोनों के कानों तक पहुँची। कुम्हार सोचने लगा– बात तो ठीक है अतः वह गधे पर बैठ गया। और वे आगे चलने लगे। लेकिन, अभी मुश्किल से वह आधा किलोमीटर भी नहीं चले कि रास्ते में फिर कुछ सज्जन बैठे हुए थे। जब उन्होंने उनको देखा तो बोले– 'अरे देखों भाई! क्या जमाना आ गया है, यह औरत बेचारी कितनी कमजोर है, शायद बीमार भी है, दवाई लेने जा रही है। एक ने तो अल्ट्रासाउड तक कर दिया बोला– 'अरे! हो न हो बेचारी गर्भ से हो और इस मुस्टंडे को देखो अच्छा भला हट्टा–कट्टा है। फिर भी खुद गधे पर बैठ कर जा रहा है और इस बेचारी को पैदल दौड़ा रहा है।'

कुम्हार ने ये सारी बातें सुनी तो उसे लगा कि यह लोग ठीक ही तो कह रहे हैं। अतः तुरंत नीचे उतरा और कुम्हारी से बोला– 'तुम गधे पर बैठ जाओ।' कुम्हारी बोली– 'आप कैसी बात करते हो मैं भला कैसे बैठ सकती हूँ। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे?' लेकिन, कुम्हार ने उसकी एक न सुनी और बैठा दिया गधे पर और चल दिया अपने गन्तव्य की ओर।

अभी वे कुछ ही दूर और गये होंगे कि फिर वही स्थिति, बैठे थे पाँच-सात समाज सुधारक और उनको देखते ही बोले- 'अरे देखो! क्या जमाना आ गया है, अभी तक सुना ही था औरतों का जमाना आ गया है, आज देख भी लिया। देखो औरत तो ठुमक-ठुमक कर गधे की सवारी कर रही है और बेचारा आदमी पैदल चल रहा है। यह तो इसके लिए डूब मरने की बात है।'

कुम्हार-कुम्हारी ने भी यह सारी बात सुनी। कुम्हारी बोली- 'मैं तो आप से पहले ही कह रही थी। लेकिन, आप ही नहीं मानते अब सुनो लोगों की बातें। कुछ सोचकर कुम्हारी बोली- 'मेरे दिमाग में एक आइडिया है क्यों न हम दोनों ही गधे पर सवार हो जाएँ। फिर तो लोगों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'

कुम्हार को भी कुम्हारी का आइडिया जँच गया। और वे दोनों हो गये सवार गधे पर तथा बढ़ने लगे अपने गन्तव्य की ओर। लेकिन, वे क्या जाने इस संसार की मनो-दशा को। उन्हें नहीं पता की यह भी लोगों को मंजूर नहीं होगा। और हुआ भी यही अभी वे कुछ ही दूर गये होंगे कि फिर वही स्थिति। बैठे थे पाँच-सात समाज के कर्णधार। और जैसे ही वे उनके पास से गुजरे सभी बोल उठे एक स्वर में। देखों भाई! कैसा कलयुग आया है, प्रकृति का सबसे निरीह प्राणी है बेचारा गधा। और इनको देखों दोनों साँड-साँडनी जैसे अस्सी-अस्सी किलो से कम नहीं होंगे, लदे जा रहें है इस बेचारे पर। शर्म भी नहीं आती इनको। क्या मुँह दिखाएंगे भगवान् के घर जाकर। अरे, प्राणियों पर दया करनी चाहिए। संयोगवश उन सबमें एक पंडित जी भी उपस्थित थे उन्होंने कहा गधे से तो हमें शिक्षा लेनी चाहिए वह तो गुरु के समान है। यथा-

अविश्रामं वहेत् भारं, शीतोष्णं च न विन्दति।
ससन्तोषस्तथा नित्यं, त्रीणि शिक्षेत् गर्दभात्।।

अर्थात् कितनी भी गर्मी-सर्दी हो बिना विश्राम किए भार ढोता है तथा रूखा-सूखा मिल जाए उसी में संतोष कर लेता है। हमें गधे से ये तीन शिक्षाएँ लेनी चाहिए।

इस प्रकार और भी कई बातें उन लोगों ने कही। यह सब सुनते-सुनते कुम्हार जब काफी परेशान हो गया तो वह गुस्से से बोला- बस, चुप करो तुम सब बहुत हो गया। अब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूँगा। जो मेरे मन में आएगा मैं वही करूँगा। और वह दोनों गधे के साथ पैदल-पैदल चल दिए बाजार की ओर।

मित्रों! वास्तव में यही दशा है संसार की। नहीं करोगे तो लोग कहेंगे कुछ करता नहीं है करोगे तो कहेंगे क्यों करता हैं? इसलिए कहा जाता है कि 'सुनो सबकी करो मन की।' मैं यहाँ यह भी कहना चाहता हूँ कि मन की भी करो लेकिन, बुद्धि पूर्वक, विवेक पूर्वक क्योंकि सबसे बड़ा संसार तो यह मन ही है। यह मंजिल पर पहुँचाता भी है और भटकाता भी है। इसका अनुभव हम सभी करते हैं।

९५. संतोष ही सुख का मूल है

एक बार जंगल में एक कोयल का बच्चा जोर-जोर से रो रहा था। उसके रोने का कारण यह था कि अभी कुछ समय पहले उसने मोर के बच्चे के सुन्दर एवं सतरंगी पंख देखे थे। इसलिए उसे अपने काले-कलूटे पंखों से बड़ी चिढ़ हो रही थी। उसे भी मोर के बच्चे जैसे पंख चाहिए थे।

कोयल ने जब अपने बच्चे को रोते हुए देखा तो उसका हृदय व्यथित हो गया और उसने बच्चे से रोने का कारण पूछा। कारण जानकर माता ने अपने नन्हे-मुन्ने को समझाने का खूब प्रयास किया। लेकिन, बच्चा था कि माना ही नहीं थक हारकर कोयल मन ही मन कुछ सोच कर बोली- 'अच्छा! तुम मेरे साथ चलो मयूरी के पास।' उसने सोचा अवश्य ही वहाँ पर कुछ मयूर पंख पड़े होंगे। शायद उन्हें प्राप्त कर बच्चे का मन बहल जाए और वह रोना बंद कर दे। दोनों चले गये मयूरी के पास। लेकिन, वहाँ पर पहुँच कर कोयल के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा वहाँ दूसरा ही तमाशा हो रहा था। मयूरी का बच्चा मचल-मचल कर रो रहा था। वह अपनी माँ से कह रहा था मुझे अपनी भौण्डी एवं डरावनी आवाज बिल्कुल पसंद नहीं है। मुझे कोयल जैसी मीठी एवं सुरीली आवाज चाहिए। मयूरी उसे बार-बार समझाने का प्रयास कर रही थी कि प्रकृति ने हमें जो दिया है हमें उसी में खुश रहना चाहिए। लेकिन,

वह था कि मानता ही नहीं था।

मित्रों! हम सब को यह चिंतन करना चाहिए कि कहीं हम भी तो ऐसा ही नहीं कर रहे हैं। जिसके पास जो है, उसमें उसे कोई सुख, कोई संतोष नहीं मिल रहा है परंतु, जो हमारे पास नहीं है और दूसरों के पास है, उसका अभाव हमें निरंतर दु:खी कर रहा है। संसार की किसी भी वस्तु, किसी भी उपलब्धि पर अगर हम विचार करें तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि जो हमें प्राप्त नहीं हैं उसे पाने के लिए हम दु:खी हैं। लेकिन, जिसे वह वस्तु अथवा उपलब्धि प्राप्त है, वह भी सुखी नहीं है। कारण, वह किसी दूसरी वस्तु के लिए, दूसरी उपलब्धि के लिए लालायित है। उसी लालसा में दिन-रात दु:खी हो रहा है। जो कि एक अंतहीन अतृप्ति है और कुछ नहीं। और इसका समाधान एक ही है कि- जो हमें प्राप्त है उसमें संतोष करना। इसलिए कहा भी जाता है कि-

***वह पराधीन है सबसे बड़ा भिखारी है।**
जिसमें अनन्त अभिलाषा है, संतोष नहीं।।

***गो धन गज धन बाजि-धन और रतन धन खान।**
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

९६. धर्म का सहारा

किसी शहर में एक मेला लगा हुआ था। एक बालक अपने पिता की अंगुली पकड़ कर घूम रहा था। वह मेले में लगी दुकानों, रंग-बिरंगे झूलों व अन्य सभी वस्तुओं को देख-देखकर अत्यन्त आनन्दित व हर्षित हो रहा था। तभी अचानक मेले में भगदड़ मच गई और बालक से पिता की अंगुली छूट गई। थोड़ी ही देर मे भगदड. शान्त हो गई। लेकिन, खूब ढूँढ़ने पर भी बालक को पिता नहीं मिले। बालक पूरे मेले में घबराया हुआ, रोता हुआ घूमता रहा। उसका सारा आनन्द रफू-चक्कर हो गया। उसके चेहरे से मानो हँसी कोसों दूर चली गई हो। यद्यपि मेले में वे सारी वस्तुएं मौजूद थीं, जिन्हें देख-देखकर कुछ क्षण पहले बालक हर्षित हो रहा था, लेकिन, अब पिता की अंगूली छूटने मात्र से वह बहुत दु:खी हो रहा था। वे सभी वस्तुएँ भी उसे प्रसन्न नहीं कर पा रहीं थी। संयोगवशात् कुछ ही देर बाद बालक को पिता मिल गये और वह बालक

पिता को पाकर पुनः उसी तरह आनंदित हो गया। और मेले का आनंद लेने लगा।

इसी प्रकार, हम सब के जीवन में वैभवादि होते हुए भी यदि धर्म का सहारा, धर्म का आश्रय, धर्म की पकड़ छूट जाए तो कोई सुखी नहीं रह सकता उन वैभवादि की वस्तुओं में कोई सुख नहीं मिलेगा। जो वैभव पहले धर्म का सहारा लेने से सुख का कारण बना हुआ था, वही दुःख का कारण बन जाएगा। इसलिए हम सबको धर्म का आश्रय लेकर प्रतिदिन धर्म का चिंतन करना चाहिए कि चार पुरुषार्थों में धर्म को ही पहले क्यों रखा गया? अर्थ को क्यों नहीं रखा गया? काम को क्यों नहीं रखा गया? उत्तर स्वयं मिल जाएगा। अतः हम सबको यह अंतर आत्मचिंतन अवश्य करना चाहिए कि कहीं हमसे धर्म रूपी अंगुली तो नहीं छुट गयी। जिसके कारण आज हमारे जीवन में इतनी समस्या उत्पन्न हो गयी हो। जिनको सोच-सोचकर हम दिन-रात कुढ़ते रहते हैं। और हाँ, यहाँ एक बात और कि धर्म के नाम पर धर्म ही होना चाहिए, आडंबर नहीं। धर्म और आडंबर में जमीन-आसमान का अंतर होता है। कहीं ऐसा न हो जाए कि हम धर्म के नाम पर आडंबर का सहारा न ले लें।

९७. मूर्ख कौन

बहुत समय पहले की बात है। राजस्थान प्रांत की जयपुर रियासत के एक राजा थे। उनके मंत्रिमंडल में विद्वान्, कवि, वैद्य, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, खाद्यमंत्री, वित्तमंत्री आदि सभी थे। एक दिन राजा को पता नहीं क्या सूझी कि उन्होंने आदेश दे दिया कि मंत्रिमंडल में एक मूर्ख की नियुक्ति की जाए। जिस भी सभासद ने यह बात सुनी तो वे सब बड़े आश्चर्य चकित हुए और आपस में काना-फूसी करने लगे कि ये राजा को क्या हो गया है? कहीं राजा का दिमाग तो नहीं चल गया है इस प्रकार की और भी बहुत सारी बातें वे आपस में करने लगे। लेकिन, इतनी हिम्मत किसी में नहीं थी कि वे राजा के आदेश के विपरीत बोल सकें। अतः पूरी रियासत में ढ़िढोरा पिटवा दिया गया कि राज दरबार में मूर्ख की एक नई पोस्ट सृजित की गयी है। इच्छुक व्यक्ति आवेदन करके इस पद को प्राप्त कर सकता है।

सभासदों ने सोचा भला इस पद के लिए कौन आवेदन करेगा? ये सब बेकार की बात है लेकिन, दो-तीन दिन के अंतराल में ही कई आवेदन आ गये। राजा ने साक्षात्कार का दिन और समय निश्चित कर दिया। और राजा ने विधिपूर्वक सब काम करके एक व्यक्ति नव सृजित पद पर नियुक्त कर दिया सभा में उसकी एक कुर्सी लग गई। कार्यालय की ओर से उसे 'मूर्ख' का परिचय-पत्र भी मिल गया। अब वह भी अपने परिचय-पत्र को गले में लटका कर अपनी कुर्सी पर बैठा रहता। काम कोई उसे था नहीं बस, बीच-बीच में वह अपनी मूर्खता पूर्ण बातों से सभासदों को हँसा देता। और वे सब भी खूब खिलखिलाकर हँस देते और कहते चलो, और कुछ न सही पर यह मूर्ख सभी का मनोरंजन तो करा ही देता है। संयोगवश एक दिन राजा किसी असाध्य बीमारी के चपेट में आ गये। दूर-दूर से वैद्य बुलाये गये लेकिन कोई भी वैद्य उनका इलाज करने में सफल नहीं हो सका और अंत में सभी ने कह दिया कि अब राजा मरणासन्न हैं। यह सुनकर लोगों ने उन्हें पलंग से उतार कर नीचे जमीन पर लिटा दिया। जब यह समाचार रियासत में फैला तो सभी उनके अंतिम दर्शन करने के लिए राजमहल में आने लगे। मूर्ख ने भी यह बात सुनी और वह भी आया। और उसने राजा को देखते ही कहा- 'अरे! यह क्या महाराज? आप नीचे फर्श पर क्यों लेटे हुए हैं। आपको तो पलंग पर लेटना चाहिए। राजा बोला- 'अरे! शायद तुम्हें पता नहीं है। अब, मेरा परलोक गमन का समय आ गया है। ऐसी अवस्था आने पर जमीन पर ही लेटना पड़ता है।

यह सुनकर मूर्ख बोला- 'अच्छा! तो आप कहीं जा रहें हैं? फिर तो आपको यात्रा के लिए बहुत सारी चीजों की आवश्यकता होगी। वो सब तैयारी हुई कि नहीं?

राजा बोला- 'जहाँ मैं जा रहा हूँ वहाँ किसी चीज की जरूरत नहीं पड़ती।' और वहाँ अकेले ही जाना पड़ता है। अतः मुझे कुछ नहीं चाहिए।

मूर्ख बोला- अरे! यह कैसी बात कह रहें हैं आप? भला, वहाँ अकेले आपका मन कैसे लगेगा? आप एक काम कीजिए मैं आपकी सबसे प्रिय प्राणों से भी प्यारी रानी को बुलवा देता हूँ। आप उन्हें साथ ले जाएं। वहाँ कोई तो चाहिए आपकी सेवा-सत्कार के लिए, मन

बहलाने के लिए।

राजा बोला– मैंने तुम्हें कहा न वहाँ कुछ नहीं ले जा सकते अपने साथ और तुम हो कि रानी को ले जाने की बात कर रहे हो। अतः तुम यहाँ से जाओ और मुझे शांति से जाने दो।

मूर्ख बोला– अच्छा! आप एक बात बताओ जहाँ आप जा रहे हो क्या वहाँ आपका कोई परिचित, नाते-रिश्तेदार भी है कि नहीं? और नहीं है तो आप किसी अपने एक पुत्र को ही साथ ले जाओ वह वहाँ आपका ख्याल रखेगा।

अब राजा को गुस्सा आ गया और झुंझलाकर बोला– 'तुम्हारी समझ में बात क्यों नहीं आती जब मैंने एक बार कह दिया कि वहाँ कोई कुछ नहीं ले जा सकता तो मैं कैसे ले जा सकता हूँ?'

मूर्ख बोला– 'अच्छा! छोड़ो, एक काम करो मैं थोड़े से हीरे-मोती आपके साथ रखवा देता हूँ वहाँ वे बहुत काम आयेगें नई-नई जगह है वहाँ आपको सब कुछ व्यवस्थित करने में कुछ समय तो लगेगा और उसके लिए धन की भी आवश्यकता पड़ेगी वहाँ किससे माँगोगे। अतः आप मेरा इतना कहना तो मान ही लो।

अब राजा आग-बबूला हो गया और उसने कहा– सैनिकों इसे पकड़ो और धक्के मार कर बाहर निकालो। न जाने किस मनहूस घड़ी में मैंने इस मूर्ख को राजदरबार में रखने की सोची। जल्दी करो, वरना, यह मेरा मरना भी दूभर कर देगा।'

इतना सुनते ही सैनिक दौड़े मूर्ख को पकड़ने। लेकिन जब तक वे उसे पकड़ते उससे पहले ही वह राजा से बोला– 'हे राजन्! आपने मेरी इतनी सारी मूर्खतापूर्ण बातें सुनी हैं। बस एक बात और सुन लीजिए। फिर मैं अपने-आप यहाँ से चला जाऊँगा सैनिकों को पकड़ने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। बस आप इतना बता दीजिए कि क्या आप को पहले से ही पता था कि अंत समय में कुछ भी साथ नहीं जाएगा?'

राजा बोला– 'हाँ यह सब तो मुझे पहले से ही मालूम था।' मूर्ख बोला– मैं तो मूर्ख ही था लेकिन, आप तो महामूर्ख हैं। और उसने अपना परिचय-पत्र गले से उतार कर राजा को पहना दिया। और बोला– जब

आपको यह सब पहले से ही पता था तो क्यों जीवन भर हिंसा करते रहे? क्यों लोगो को सताते रहे? अतः मूर्ख मैं नहीं आप हैं।'

यह सुनकर राजा की आँखें खुल गयी और उन्होंने उसके पैर पकड़ लिए लेकिन अब क्या फायदा था।

मित्रों! यह कहानी बस एक उस राजा की नहीं है अपितु हम सब राजाओं की भी कहानी इससे मिलती-जुलती है। हम भी जीवन भर उचित-अनुचित का विचार करे बिना ही लगे रहते हैं अपना भंडार भरने। अतः हम सबको समय रहते इस पर विचार करना चाहिए और उक्त किसी ऐसे मूर्ख की तलाश करनी चाहिए जो समय रहते हमारी आँखें खोल दे। व्यक्ति की इच्छाएं अंतहीन होती हैं लेकिन, यह जीवन जो हमें इस मनुष्य पर्याय में मिला है यह अंतसहित होता है। कहा भी जाता है कि-

इच्छति शती सहस्रं, सहस्री लक्षमीहते।
लक्षाधिपस्तथा राज्यं, राज्यस्थः स्वर्गमीहते॥

जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः, दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीर्येत् चक्षुषी श्रोत्रे, तृष्णैका तरुणायते॥

अर्थात् जिसके पास सौ है, वह हजार की चाह करता है। जिसके पास हजार है, वह लाख की चाह करता है। जिसके पास लाख है, वह करोड़ की राज्य की चाह करता है और जिसके पास राज्य है वह स्वर्ग की चाह करता है।

बूढ़ा होने पर बाल पक जाते हैं, दाँत भी गिर जाते हैं, कान और आँख बाधित हो जाते हैं, परंतु उसकी तृष्णा सदा तरुण रहती है, कभी नष्ट नहीं होती।

९८. नारी का सम्मान

महाभारत काल की घटना है। एक बार भीम को ज्ञात हुआ कि धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रौपदी के पैर दबाए हैं। यह जानकर उसे बहुत ग्लानि हुई वह मन ही मन सोचने लगा कि अब तो उल्टी गंगा बहने लगी। जहाँ पत्नी को पति की सेवा करनी चाहिए, वहाँ पति पत्नी की सेवा करने लगा है। और वह भी धर्मराज युधिष्ठिर ऐसा कर रहे हैं बड़े

आश्चर्य की बात है। उनके स्थान पर अगर मैं होता तो ऐसा विकट से विकट स्थिति आने पर भी नहीं करता।

किसी तरह यह बात नारायण श्रीकृष्ण को ज्ञात हुई। वे भीम के पास आये और बोले- आज रात्रि को राजमहल के सामने वाले वटवृक्ष पर छिपकर बैठना और जो कुछ दिखायी दे उसे मौनपूर्वक देखते रहना, लेकिन, घबराना बिल्कुल नहीं, डरना नहीं।'

यह सुनकर भीम बोला- हे वासुदेव! 'आप कैसी बात कर रहे हो? आप मुझ जैसे महापराक्रमी को जिसके नाम के श्रवण मात्र से कौरवों की विशाल सेना में हा-हाकार मच जाता है, उससे डरने की बात कर रहे हो! भीम की ये अहंकार भरी बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए वहाँ से चले गए।

रात्रि को भीम वटवृक्ष पर जा बैठा। मध्य रात्रि के बाद उसे वहाँ विचित्र एवं नए-नए चमत्कार दिखायी देने लगे। एक तेजस्वी व्यक्ति आया और उसने सामने की भूमि को स्वच्छ किया। फिर वरुणदेव ने उस पर जल छिड़का। विश्वकर्मा के कारीगरों ने आकर मण्डप और सिंहासनों की व्यवस्था कर उन्हें सुसज्जित किया। धीरे-धीरे करके एक-एक द्वारपाल उपस्थित हुए फिर शुक्र, वामदेव, व्यास, नारद, इन्द्रादि देवों का आगमन हुआ और वे सब यथाक्रम अपने-अपने आसन पर विराजमान हो गये। इतने में ही उसे चारों पाण्डव भी वहाँ आते हुए दिखाई दिए और उन्होंने भी वहाँ आसन ग्रहण किया। भीम यह देखकर चकित हुआ कि इन सबके आसन ग्रहण करने के पश्चात् राजसिंहासन अब भी खाली है और इतने में ही उसे एक तेजस्वी नारी आती दिखाई दी। उसे देखते ही सारे देवता, ऋषि-मुनि और वहाँ उपस्थित सभी लोग उसके सम्मान में खड़े हो गये। उस स्त्री के केश खुले हुए थे और भूमि को स्पर्श कर रहे थे। उसके हाथों में त्रिशुल, फरसा, तलवार आदि शस्त्र थे और उसने सिर पर मुकुट धारण किया था उसके सिंहासन पर बैठते ही वहाँ उपस्थित सभी ने जय-जयकार किया। भीम ने मन ही मन सोचा कि शायद यह स्त्री महामाया है। लेकिन, जब उसने सूक्ष्मता से निरीक्षण किया तो उसे स्पष्ट ज्ञात हो गया कि वह स्त्री और कोई नहीं, वरन द्रौपदी ही है।

द्रौपदी ने उपस्थित सभी देवताओं से कुशलक्षेम पूछा और फिर यम से पूछा कि आज कितने घड़े भर कर लाये हो?

यह सुनकर यम बोला– 'देवी सात घड़ों में से छः तो असुरों के रक्त से भरे हैं, लेकिन एक घड़ा खाली है।'

'वह क्यों नहीं भरा? पूछे जाने पर यम ने उत्तर दिया, अभी कौरवों पाडवों का युद्ध चल रहा है। उसमें भीम के रक्त से यह घड़ा भरा जाएगा।

द्रौपदी ने पुनः प्रश्न किया? 'इसे भीम के रक्त से क्यों भरना है? यम बोला– 'क्योंकि उसे अपनी शक्ति का बड़ा अहंकार है।' 'तब तो इस कार्य में देर नहीं लगनी चाहिए, द्रौपदी ने आदेश दिया, 'युद्ध के लिए न रुककर इसे अभी भरा जाए।' यह सुनकर यम बोला– 'भीम अभी कहीं दिखाई नहीं देता, शायद वह कहीं छिपा हुआ है।' इतने में नारद जी खड़े हुए और बोले– 'भीम सामने के उस वटवृक्ष पर बैठा है।' यह सुनते ही भीम की सिट्टी-पिट्टी गुम वह मारे भय के कारण काँपने लगा उसका शरीर पसीने से तर हो गया। उसने सोचा, इस विपदा से द्रौपदी ही उसे बचा सकती है, उसी के शरण में जाना चाहिए। वह वृक्ष से कूद पड़ा और उसने द्रौपदी के चरण पकड़ लिए। इतने में उसे श्रीकृष्ण के शब्द सुनाई पड़े, 'अरे भीम, इतने पराक्रमी होकर भी तुम अपनी पत्नी के पैर पकड़े हुए हो?' इस पर भीम ने उत्तर दिया, 'हे वासुदेव! द्रौपदी सामान्य स्त्री नहीं, प्रत्युत साक्षात् महामाया है।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण हँस पड़े और तब भीम के सामने का सारा दृश्य ओझल हो गया न तो वहाँ सिंहासन था न द्रौपदी और न देवता-मुनि सामने केवल श्रीकृष्ण मुस्करा रहे थे। इसलिए कहा भी जाता है कि–

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवाः।'

९९. मूल स्वभाव को समझना जरूरी

एक बार भगवान शिव और माता पार्वती किसी विवाह समारोह में शामिल होने के लिए आकाश मार्ग से विमान में बैठे जा रहे थे। तभी माता पार्वती की दृष्टि नीचे पड़ी तो उन्होंने देखा कि एक सुअर कीचड़ में फँसा हुआ है और बार-बार निकलने का प्रयास कर रहा है। माता

का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने तुरन्त विमान-चालक को आदेश दे दिया कि विमान को नीचे उतारो! विमान-चालक आना-कानी करते हुए बोला-'माताजी! यहाँ लैडिंग करना सम्भव नहीं हैं। खामखाह (बेकार) में कोई दुर्घटना हो जाएगी।'

लेकिन, माता तो आखिर माता होती है। वह भला किसी भी प्राणी के बालक को कैसे दुःखी देख सकती है। शिव भगवान् अपने अंतर्ध्यान में मगन सब लीला देख रहे थे। माता पार्वती ने तुरंत उन्हें झकझोरते हुए कहा- आप तो अन्तर्यामी हैं। सब देख रहे होंगे। पृथ्वी का एक प्राणी बड़े ही संकट में है, हमें तुरंत उसकी सहायता करनी चाहिए। अतः तुरंत इस चालक को आदेश दीजिए कि यह विमान को नीचे उतारे।

शिव भगवान् ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा- 'आप व्यर्थ में चिन्तित हो रहीं हैं। वह प्राणी कष्ट में नहीं है। बल्कि, वह तो अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार आनन्द कर रहा है। उसे उस कार्य में बड़ी सुखानुभूति हो रही है। हम बेकार में ही उसकी सुखानुभूति में बाधक बनेंगे। अतः आप उसकी चिंता छोड़िए।'

लेकिन, माता कहाँ मानने वाली थीं। वे अपनी दयालु प्रवृत्ति के साथ-साथ हठी भी थीं। जो कि स्त्रियों के स्वभाव में पुरुषों से कुछ अधिक होती है। अड़ गईं वे अपनी बात पर। नारी-हठ के आगे बड़े-बड़े योद्धा परास्त हो जाते हैं। भगवान् शिव ने उन्हें समझाने का बहुत प्रयास किया। लेकिन, वे नहीं मानी और कहने लगी अगर, आपने मेरी बात नहीं मानी तो मैं इसी समय अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी। बस, फिर क्या था। तुरंत आपातकालीन लैंडिग करवानी पड़ी भगवान् शिव को। कराते भी क्यों नहीं पत्नी की जिद जो थी। और जैसे ही भगवान् शिव विमान से नीचे उतरे माता पार्वती बोली- 'एक काम करिए इसे इस कीचड़ से निकालिए और अपने साथ ही ले चलिए। यह वहाँ स्वर्गलोक की शादी देखेगा, अच्छे-अच्छे पकवान खाएगा, अप्सराओं का डांस देखेगा तो इसे बड़ा मजा आएगा।

भगवान् शिव मन ही मन कह रहे थे मैं जानता हूँ कि इसे कहाँ मजा आएगा। व्यर्थ ही हमारा समय खराब होगा और कुछ नहीं। लेकिन, क्या कर सकते थे। मजबूर थे बेचारे भगवान् अतः वे गए सुअर के पास

और जाकर बोले– 'नमस्कार सुअर महाराज! जरा एक मिनट के लिए मेरी बात सुनेंगे।'

सुअर ने कहा– नमस्कार! थोड़ा ठहरो मुझे बड़ा मजा आ रहा है' और वह कीचड़ में इधर–उधर पलटी मारने लगा।

भगवान् शिव खड़े–खड़े बड़े व्यथित हो रहे थे। काफी देर हो गई तो उन्होंने फिर कहा– 'भाईसाहब! जरा सुनोगे मेरी बात।'

सुअर अपना मुँह ऊपर उठाते हुए बोला– 'कितना मजा आ रहा है। मुझे यह आप क्या जानो? न जाने आप कहाँ से आ गए मेरा मजा किरकिरा करने। अच्छा चलो बोलो, क्या कहना चाहते हो?'

भगवान् बोले– 'भैया, हम विमान से स्वर्गलोक जा रहे थे। मेरी श्रीमती जी चाहती हैं कि आप भी हमारे साथ चलो। वहाँ पर एक देव के विवाह का समारोह है। तुम्हें वहाँ बड़ा मजा आएगा।'

यह सुनकर सुअर बोला– 'अच्छा, यह बात है। आप थोड़ा ठहरो तब तक मैं सोच भी लेता हूँ और पाँच–सात उलटा–पलटी भी लगा लेता हूँ।' और वह लग गया अपने काम में। जब उसे काफी देर हो गयी तो भगवान् ने पार्वती के पास जाकर कहा– 'देखिए, मैं आपको पहले ही कह रहा था कि वह हमारे साथ नहीं चलेगा। उसे यहीं मजा आ रहा है और आप हैं कि मानती ही नहीं। अब चलिए बहुत समय खराब हो गया।' पार्वती बोलीं– 'अरे! नहीं–नहीं आप एक बार और प्रयास कीजिए। वह अवश्य ही चलेगा। स्वर्ग जैसी जगह जाने के लिए तो सभी प्राणी आतुर रहते हैं। मनुष्य तो स्वर्ग के चक्कर में न जाने क्या–क्या प्रपञ्च करते हैं दान–पुण्यादि। इसे तो बिना कुछ किए ही स्वर्ग जाना नसीब हो रहा है।'

शिव भगवान् को फिर जाना पड़ा क्या करते बेचारे? मजबूर जो थे। वहाँ जाकर वे बोले– महाराज! आपकी पाँच–सात उलटा–पलटी हो गईं हो तो अब चलें। हमें देर हो रही है।

यह सुनकर सुअर महाराज बोले– बस, पाँच मिनट और अभी चलता हूँ। इसी प्रकार भगवान् ने उससे कई बार पूछा। और वह यही कहता रहा बस पाँच मिनट और बस दो मिनट और। अंत में शिव भगवान् बोले– 'अच्छा, भाई सुअर महाराज ये जोड़े दो हाथ हम चले।'

मुझे तो पहले ही पता था कि तुम नहीं चलने वाले। व्यर्थ में ही इतना समय बर्बाद कर दिया।'

सुअर बोला– 'सुनो, मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ। लेकिन आप मुझे यह बताइए कि ये जो आप मुझे ले जा रहे हैं न स्वर्ग–वर्ग में क्या वहाँ पर यह व्यवस्था है जिसमें मैं लोट–पोट हो रहा हूँ।'

भगवान् बोले– 'वहाँ पर स्वीमिंग पुल है, नहाने के लिए सुगंधित फौवारे लगे हुए हैं। एक से एक बढ़िया शैम्पू है। रंग–बिरंगे नहाने के हमाम, लिरिल, डब, लक्स, पतञ्जलि के नीम, चंदन, एलोविरा आदि साबुन है। लेकिन यह गंदगी व कीचड़ वहाँ नहीं है, अब बोलो जल्दी चलना है कि नहीं।'

इतना सुनते ही सुअर बोला– 'तब तो आपका स्वर्ग आपको मुबारक, मुझे नहीं जाना वहाँ। मैं तो यहीं मस्त हूँ।'

मित्रों! यह वास्तविक सत्य है कि हरेक प्राणी को अपने स्वभाव में ही आनन्द आता है। लेकिन, हमें अपने वास्तविक स्वभाव को समझना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि जो हमारा स्वभाव है ही नहीं और हमने जबरदस्ती उसे अपना स्वभाव बना लिया हो, ओढ़ लिया हो, जिससे हमारा मूल स्वभाव ढक गया हो। और यह बहुत ही दुःखदायी और भयावह स्थिति हो जाती है। एक शराब पीने वाले व्यक्ति को शराब पीने में ही मजा आता है और वह कहने लगता है कि यह तो मेरा स्वभाव है, लेकिन अगर वह गहराई से चिंतन करे तो उसे स्पष्ट मालूम हो जाएगा कि यह उसका मूल स्वभाव नहीं है, बल्कि ओढ़ा हुआ स्वभाव है जिसे छोड़ा जा सकता है। कहा भी जाता है कि–

'वत्थु सहाओ धम्मो।' वस्तु का स्वभाव धर्म है।
'अत्ता चेव अहिंसा॥' आत्मा का मूल स्वभाव तो अहिंसा ही है।

१००. मनुष्य की अद्भुत श्रेणी

एक दिन प्रभात वेला में परमहंस देव अपनी शिष्य मंडली के साथ समुद्र के किनारे पर टहल रहे थे। तभी उनकी दृष्टि कुछ मछुआरों पर पड़ी। जो समुद्र में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ रहे थे। टहलते–टहलते परमहंस देव एक मछुआरे के पास रुक गए और अपने शिष्यों से कहने

लगे– 'इस जाल में फँसी हुई मछलियों की गतिविधियाँ तुम सब ध्यान से देखो। शिष्यों ने देखा कि कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो जाल में प्राणहीन –सी निश्चल पड़ी हैं वे जाल से घूटने का कोई प्रयत्न ही नहीं कर रही हैं, जबकि कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो निकलने का भरसक प्रयत्न कर रहीं हैं, लेकिन, वे जाल से निकलने में सफल नहीं हो पा रही हैं। और कुछ ऐसी मछलियाँ है जो जाल से मुक्त होकर पुनः जल में खेलने में मग्न हैं। शिष्य मछलियों का यह अद्‌भुत नजारा देखते–देखते काफी आगे निकल गए, लेकिन, परमहंस वहीं खड़े रहे और देखते रहे मछलियों की गतिविधियों को। कुछ ही देर बाद जब उन्हें शिष्यों का ध्यान आया तो उन्होंने जोर से आवाज लगाकर उन सबको अपने पास बुला लिया।

जब शिष्य आ गए तो उन्होंने कहा– 'जिस प्रकार तुम्हें यहाँ मछलियाँ तीन प्रकार की दिखाई दे रही हैं, वैसे ही अधिकतर मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं।'

एक श्रेणी उन मनुष्यों की होती है, जिनकी आत्मा ने बंधन को स्वीकार कर लिया है। अब वे भवसागर रूपी जाल से पार होने की बात ही नहीं सोचते। दूसरी श्रेणी ऐसे व्यक्तियों की है जो वीरों की तरह प्रयत्न तो करते हैं, पर मुक्ति से वंचित रहते हैं। तीसरी श्रेणी उन लोगों की है जो प्रयत्न द्वारा एक–न–एक दिन मुक्ति पा ही लेते हैं। लेकिन इन दोनों में एक श्रेणी और होती है जो स्वयं को बचाये रहती है।

तभी एक शिष्य ने प्रश्न किया, 'गुरुदेव वह श्रेणी कैसी होती है? परमहंस देव बोले– 'हाँ, वह बड़ी महत्त्वपूर्ण श्रेणी होती है। इस श्रेणी के मनुष्य जल में कमल की तरह उन मछलियों जैसे होते हैं जो जाल के पास आती ही नहीं। और जब वे पास ही नहीं आती, तो फँसने का प्रश्न ही नहीं उठता।

परमहंस देव की बात सुनकर सभी शिष्य गदगद हो गये और खुशी–खुशी गुरुजी के साथ आश्रम की ओर लौट गए।